

काश्मीर
और
उसके लोग

ओमप्रकाश

काश्मीर
और
उसके लोग

लेखक :

ओमप्रकाश 'मंत्री'

लाला रुख प्रकाशन
श्रीनगर (काश्मीर)

फरवरी, १९५६

मूल्य २।)

डी. पी. सिनहा द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, आसफ अली रोड, नई दिल्ली से
मुद्रित तथा लाला रुख प्रकाशन द्वारा श्रीनगर (काश्मीर) से प्रकाशित ।

एक शब्द

प्राचीन काल से ही काश्मीर अपनी प्राकृतिक छटा और अपनी अनोखी संस्कृति के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। सदियों से यहां की उन्नत कला व दस्तकारी दुनिया का ध्यान अपनी तरफ़ आकर्षित करती रही है। इस देश के पहाड़ों, जंगलों, चश्मों व नदी-नालों के अद्‌भुत दृश्यों से प्रभावित होकर संसार के देशों ने काश्मीर को भूस्वर्ग की पदवी दी है। हजारों की संख्या में देश-विदेश से लोग यहां भ्रमण को आते हैं और काश्मीर की प्राकृतिक सुन्दरता से आनन्द उठाते हैं।



अंग्रेज़ी भाषा में काश्मीर के इतिहास और संस्कृति के बारे में देश-विदेश के लेखकों ने काफ़ी लिखा है। लेकिन हमारे देश को ठीक-ठीक जानने के लिए विभिन्न भाषाओं में लिखी पुस्तकों की कमी है। हिन्दी में तो अभी तक काश्मीर पर इन सब विषयों की पूरी सूचना देने वाली पुस्तकें बहुत कम हैं। मुझे आशा है कि यह पुस्तक इस कमी को बहुत हद तक पूरा करेगी।

बख्शी गुलाम मोहम्मद

प्रधान मंत्री

जम्मू व काश्मीर।

पाठकों से

काश्मीर में लगभग छः महीने के भ्रमण के बाद काश्मीर के निवासियों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक हालत को संक्षिप्त रूप में आम लोगों के सामने रखने के उद्देश्य से ही मैंने इस किताब को लिखा है। काश्मीर की कला व दस्तकारी, संस्कृति व साहित्य, प्राचीन स्मारक चिन्ह तथा राष्ट्रीय आंदोलन आदि प्रत्येक विषय पर अलग-अलग किताब लिखी जा सकती है। इसलिए इस छोटी सी पुस्तक में काश्मीर के सभी विषयों का विस्तृत रूप से विवरण देना मेरे लिए कठिन ही नहीं, किन्तु असम्भव था। फिर भी, मैंने काश्मीर के लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों का संक्षिप्त रूप में वर्णन करने का प्रयत्न किया है और साथ ही टूरिस्टों की सुविधा के लिए भी एक अध्याय जोड़ दिया है।

मैंने भाषा को बहुत सरल और सुबोध रखने की कोशिश की है।

इस किताब को लिखने में मैंने निम्नलिखित पुस्तकों से सहायता ली :

"राजतरंगिनी" (कल्हण), "वैली आफ़ काश्मीर" (सर वाल्टर लारेंस), "काश्मीर इन सनलाइट एण्ड शेड" (टैन्डल बिस्को), "जम्मू एण्ड काश्मीर टैरीटरीज़" (ड्रियू), "वेयर थ्री एमपायर्स मीट" (नाइट), "जम्मू एण्ड काश्मीर स्टेट" (पं० आनन्द कौल), "ऐंग्लो अमेरीकन प्लाट अगेन्स्ट काश्मीर" (विजय कुमार), "दिस इज़ काश्मीर" (पीयर्स गरविस), "इनसाइड काश्मीर" (बजाज) तथा काश्मीर सरकार के सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित "कीज़ टु काश्मीर" व अन्य पैम्फलेट आदि।

इन पुस्तकों के अलावा डा० के० एम० अशरफ़, प्रो० जियालाल 'नाज़िर', मशहूर कवि व साहित्यिक श्री दीनानाथ 'नादिम', तथा ओमकार काचरू व श्री शंभुनाथ भट्ट आदि को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने मुझे किताब को पूरा कराने में हर प्रकार की सहायता दी। इनके अलावा ग्रामों के अपने दोस्त

अब्दुल्लगनी तथा पं० पृथ्वीनाथ आदि का भी मैं सदा आभारी रहूंगा, जिनकी सहायता से मैं ग्राम-जीवन का अध्ययन कर पाया।

इन व्यक्तियों के अलावा जम्मू व काश्मीर राज्य के सूचना-विभाग के अधिकारी भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने बहुत सी किताबें व पैम्फेलट आदि देकर मेरी सहायता की।

अन्त में, मैं काश्मीर के प्रधान मंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद का भी अत्यधिक आभारी हूं, जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय निकाल कर इस पुस्तक के आरम्भ में चन्द शब्द लिखे हैं और मेरा उत्साह बढ़ाया है।

ओमप्रकाश

विषय-सूची

प्रस्तावना

यह उस देश और उसके लोगों की कहानी है जिसे अनेकों लेखकों ने उसके अद्भुत सौंदर्य को देख कर, स्वर्ग की घाटी के नाम से पुकारा है। यह वह स्थान है, जहां प्रकृति ने अपना चमत्कार दिखाया है। यहां की ज़मीन इतनी अच्छी है कि उससे काफी पैदावार हो सकती है। यहां सबसे बेहतरीन सिल्क और ऊन से बड़ी तादाद में बढ़िया कपड़े तैयार होते हैं। यहां के निवासी बहुत मज़बूत काठी के, मेहनती और आज़ादी पसंद हैं।

प्राचीन काल से ही काश्मीर, देश-विदेश की संस्कृतियों का केन्द्र रहा है। एशिया के भिन्न-भिन्न हिस्सों से समय-समय पर प्रसिद्ध विद्वान व लेखक यहां आते रहे हैं। शताब्दियों तक अपनी कला व दस्तकारी के लिए यह प्रसिद्ध रहा है। यहां के कारीगरों ने मिट्टी, लकड़ी, चांदी, रेशम और पशमीना आदि से तरह-तरह की बेहतरीन चीजें तैयार की हैं, जिससे वे विश्व में हर जगह प्रसिद्ध हो गये हैं।

काश्मीर को यदि हम खूबसूरती और आकर्षक दृश्यों का ही देश कहें तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। इसके बर्फ़ से ढके पहाड़ों, हरे-भरे मैदानों, स्वच्छ जलपूर्ण झीलों, जंगल व नदी-नालों तथा हर तरह की बीमारी को दूर करनेवाले अद्भुत चश्मों को देख कर कौन सा ऐसा यात्री या सैलानी होगा, जिसकी आंखें यहां के दृश्यों को देखती न रह जायें। इतना ही नहीं, वसंत के मौसम में फलों के उगने से पहले, सेब, अंगूर, नाशपाती, चैरी और अखरोट आदि फलों के पेड़ों पर तरह-तरह के रंगों से युक्त फूलों के सौंदर्य का वर्णन मनुष्य की सामर्थ के बाहर की बात है। मुगल बादशाह गर्मी के मौसम में यहीं आनन्द मनाते थे। जहांगीर तो काश्मीर की सुन्दरता से इतने आकर्षित हुए थे कि वह प्रति वर्ष गर्मियों में यहां आये बिना नहीं रह सकते थे। एक समय गर्मी के मौसम में जब

वह काश्मीर से दूर बीमार पड़े हुए थे तो उन्होंने काश्मीर के प्रति यह कहकर अपने दिल की बात प्रकट कर दी

"खुर्द गन्दुम अज़ जन्नत कशीदन्दश बिरूं
मन के खुरदम आशे जौ यारब व कश्मीरम रसां"

[आदम ने जन्नत में गेहूँ खाये और उसे जन्नत से बाहर निकाला गया। ऐ खुदा, मैंने तो जौ का पानी पिया तो इसी कारण मुझे काश्मीर पहुँचा दो।]

जम्मू और काश्मीर राज्य भारत के उत्तर में स्थित है और इसका क्षेत्रफल ८४,४७१ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ४० लाख से कुछ ऊपर है। इसकी सीमाएं उत्तर में रूसी व चीनी तुर्किस्तान से, पूर्व में तिब्बत से तथा उत्तर-पश्चिम में उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश (पाकिस्तान) और अफ़गानिस्तान से मिलती हैं।

काश्मीर की इस भौगोलिक स्थिति का लाभ उठाने के लिए साम्राजियों ने इसे हड़पने के लिए लगातार साजिशें की हैं। इतिहास इसका साक्षी है। अतः जहां एक तरफ़ हम काश्मीर को 'खूबसूरती की रानी' कहते हैं, वहां हम यहां के लोगों की बहादुरी को भी नहीं भुला सकते, जिन्होंने लगातार साम्राजी षड़यंत्रों व सामन्तशाही के विरुद्ध टक्कर ली है। सामन्तवादी शासन को तो उन्होंने अपने संघर्ष से समाप्त कर दिया; परन्तु साम्राजी साजिशों के विरुद्ध वे अभी तक लड़ रहे हैं।

इन्हीं बहादुर, साहसी और परिश्रमी व्यक्तियों की और उनके देश की यह कहानी है। यह कहानी यहां के लोगों को समझने तथा उनके प्रति विश्वास और उनकी उन मुसीबतों के प्रति हमदर्दी के लिए लिखी गयी है, जो वे खुशी से सहन करते हुए आगे बढ़ रहे हैं (और साम्राज के विरुद्ध टक्कर लेने के लिए सतर्क हैं)।

★

प्राचीन इतिहास

काश्मीर दुनिया में सबसे बड़ी पर्वतीय घाटी मानी जाती है। प्राचीन काल में इसे एक बड़ी पहाड़ी झील 'सतीसर' के नाम से पुकारा जाता था। कुछ प्राचीन इतिहासकारों का विचार है कि इसका नाम कश्यप ऋषि के नाम पर 'कश्यपमर' रहा होगा जो बाद में बिगड़ कर काश्मीर बना होगा। पुराणों में इसे 'गिरिक' नाम से पुकारा गया है। प्राचीन यूनानी ग्रन्थों में इसे 'कसपीरिया' कहा गया है। कहा जाता है कि कुछ समय के बाद काश्मीरियों के प्रयोग द्वारा बदलते-बदलते इसका नाम 'कशीर' पड़ गया। तिब्बत के निवासी इसे 'खच्चल' (बर्फ़ीला पहाड़) नाम से और दर्दिस्तान के निवासी इसे 'काशरत' के नाम से पुकारते हैं।

प्राचीन काल में इसका नाम जो भी रहा हो, किन्तु आज यह खूबसूरत देश, जिसके सुन्दर दृश्यों को देखने के लिए प्रति वर्ष गर्मियों में हजारों की संख्या में दूर-दूर से यात्री यहां आते हैं, विश्व में काश्मीर के नाम से ही प्रसिद्ध है।

प्रारम्भिक काल

काश्मीर के इतिहास क्रम पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि लगभग चार हज़ार वर्ष तक हिन्दू राजाओं ने काश्मीर पर शासन किया। इतिहास की इस लम्बी अवधि में इक्कीस राजवंशों ने यहां शासन किया। २१८० ई० पू० में राजा दयाकरन इन राजाओं में सबसे पहला राजा था। कल्हण की लिखी 'राजतरंगिनी' से ऐसे अनेकों राजाओं का पता चलता है, जिन्होंने हिन्दू काल के आरम्भ में यहां शासन किया था। किन्तु उनकी तारीखों का हमें ठीक-ठीक पता नहीं चलता।

हिन्दू शासकों के प्रारम्भिक काल के राजाओं में हम सम्राट अशोक को भी पाते हैं, जिन्होंने २५० ई० पू० में काश्मीर पर विजय प्राप्त की और बौद्ध धर्म का प्रचार किया। 'राजतरंगिनी' से ऐसा मालूम पड़ता है कि अशोक के समय में हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म शांतिपूर्वक साथ-साथ कायम रहे। पूरे प्रदेश में उस समय शांति थी। लोग एक दूसरे के धर्म को आदर की दृष्टि से देखते थे।

अशोक ने सबसे पहला नगर श्रीनगरी बसाया जो आज की राजधानी श्रीनगर से तीन मील दूर, शंकराचार्य के निकट, एक गांव के रूप में स्थित है।

अशोक के बाद २०० ई० पू० के बाद लगभग, हम जलौक नाम के राजा को पाते हैं। कहा जाता है कि जलौक ने ही शंकराचार्य मंदिर को बनवाया था।

जलौक के बाद दामोदर नामक राजा का शासन हुआ। कहा जाता है कि श्रीनगर का हवाई अड्डा जो 'दामोदर वुडर' पर स्थित है इसी राजा के नाम पर रखा गया था।

इसके बाद हविष्क, जुश्क और कनिष्क तीन राजा हुए। इस काल में काश्मीर कुशान साम्राज्य का ही एक भाग था। बौद्ध धर्म की परम्परा के अनुसार कनिष्क ने काश्मीर में बौद्ध धर्म की तीसरी महासभा बुलाई थी। इन तीनों राजाओं के समय में बौद्ध धर्म का खूब प्रचार हुआ। पूरे प्रदेश में बौद्ध विहारों का निर्माण किया गया। फिर भी बौद्ध धर्म के साथ-साथ शैव मत फलता-फूलता रहा।

इतिहास की एक दीर्घ अवधि, अर्थात् पांच शताब्दियों के पश्चात्, हमें पता चलता है कि बौद्ध धर्म दिन प्रति-दिन अवनत होता गया और ऐसा समय भी आया जबकि काश्मीर में बौद्ध मत का कोई भी अनुयायी न रहा। चीनी यात्रा ह्वान सांग ने ६३१–६३३ ई० के लगभग जब काश्मीर का भ्रमण किया तो उन्होंने भारी संख्या में यहां शैव मत के मानने वालों को पाया। ह्वान सांग ने बौद्ध धर्म के कुछ विहारों और मठों को खंडहरों के रूप में पाया था। इससे पता चलता है कि काश्मीरी शुरू से ही शैव धर्म के मानने वाले थे। बौद्ध धर्म की अवनति का एक कारण यह भी हो सकता है कि राजा अभिमन्यु के काल में काश्मीर में बौद्ध धर्म के विरुद्ध जोरों का प्रचार रहा, और हो सकता है कि अभिमन्यु ने भी उनका साथ दिया हो।

कनिष्क, हविष्क और जुष्क के राज्य-काल में नागार्जुन और अश्वघोष नामक दो प्रसिद्ध बौद्ध लेखक हुए हैं। इसी काल में आज के कानिसपुर, उष्कुर

ग्रौर जुकुर नाम के कस्बों की कनिष्कपुर, हुष्कपुर ग्रौर जुष्कपुर के नाम से नींव डाली गयी थी।

हूणों का काल

छठी शताब्दी में काश्मीर में हूणों का शासन-काल ग्रारम्भ होता है। इस काल का प्रसिद्ध राजा मिहिरकुल था जिसने विक्रमादित्य से पराजित होकर काश्मीर में शरण ली थी ग्रौर जो बाद में ५२५ ई० के लगभग काश्मीर का शासक बन बैठा था। कहा जाता है कि मिहिरकुल बहुत ही कठोर ग्रौर निर्दयी राजा था। उसकी मृत्यु ग्रात्म-हत्या द्वारा हुई।

मिहिरकुल के पश्चात् उसका लड़का बक गद्दी पर बैठा। परन्तु हूण राजवंश में राजा मिहिरकुल के बाद एक ग्रौर मशहूर राजा गोपादित्य हुग्रा है। गोपादित्य ने ग्रपने शासन-काल में ब्राह्मणों का जीवन स्तर ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया। संस्कृत साहित्य तथा हिन्दू धर्म की उन्नति में उसने पर्याप्त योग दिया।

हिन्दू राजवंश

प्रारम्भिक काल के हिन्दू शासकों में मेघवाहन (१-३५ ई०) ग्रौर उसके बाद एक प्रसिद्ध राजा विनयादित्य (४०७-५४० ई०) का विवरण मिलता है। विनयादित्य साधु की तरह रहने वाला हिन्दू शासक था, जिसे हम दार्शनिक राजा भी कह सकते हैं। गद्दी पर बैठने से पहले राजा विनयादित्य को एक साधु ने शिक्षा दी थी ग्रौर यही कारण था कि गद्दी पर बैठते समय उसने ग्रपनी प्रजा से यह प्रतिज्ञा कराई थी कि कोई झूठ न बोले, कोई किसी को कत्ल न करे ग्रौर ग्रपने देशवासियों को कभी धोखा न दे। वह ग्रपना जीवन भी बहुत सादगी से व्यतीत करता था। ग्रपने रहने के लिए उसने शंकराचार्य के पास एक छोटा-सा घर बनवा लिया था। साधारण किसान की तरह ज़मीन के एक टुकड़े की ग्रामदनी पर ही जीवन व्यतीत करता था।

५८० ई० के लगभग एक ग्रौर मशहूर हिन्दू शासक प्रवर्सेन द्वितीय ने काश्मीर पर शासन किया था। इस राजा ने ग्रपनी राजधानी हरि पर्वत से लेकर शंकराचार्य की पहाड़ी तक उसी जगह बनवाई जहां कि ग्राज की राजधानी श्रीनगर स्थित है। उस शहर का नाम प्रवर्सेनपुर या परवरपुर था। चीनी यात्री ह्वान सांग ने इस नगर को देखा था क्योंकि उसने ग्रपने यात्रावर्णन में इस नगर का उल्लेख किया है। इसके बाद कारकोट वंश के प्रथम शासक दुर्लभवर्धन ने

६०० से ६३६ ई० तक शासन किया। इसी राजा के काल में चीनी यात्री ह्वान सांग ने काश्मीर की यात्रा की थी।

इस वंश का एक और मशहूर हिन्दू शासक ललितादित्य था, जिसने ६९९ से लेकर ७३६ ई० तक काश्मीर पर शासन किया। इसे मुक्तपीड़ के नाम से भी पुकारा जाता था। ललितादित्य के शासन संभालने से पहले काश्मीर की हालत बहुत खराब थी। पूरा शासन अनियमित ढंग से चल रहा था। सबसे पहले उसने अपने देश में शांति स्थापित की। उसके बाद उसने उत्तरी हिन्दुस्तान के अधिकांश राजाओं को अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार कन्नौज तक उसके राज्य का विस्तार हुआ। इतने से ही उसे सन्तोष नहीं हुआ। वह हिन्दुस्तान की सीमाओं को लांघ करके अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक गया। मध्य एशिया का कुछ भाग और तुर्किस्तान अपने अधीन करके वह तिब्बत के रास्ते बारह वर्ष के बाद काश्मीर लौट आया। एक मशहूर मुसलमान अरब यात्री अलबेरूनी ने लिखा है कि ललितादित्य के शासन-काल में काश्मीरी प्रजा हर साल शासक की जीतों के उपलक्ष में एक विजय उत्सव मनाती थी। मुक्तपीड़ ने तीन नगरों पर्णोत्स (पूंछ), परिहासपुरा (परसपुर) तथा ललितापुर (लेतपोर) की नींव डाली।

अपनी जीतों के समय में वह अन्य देशों से अपने साथ अच्छे अच्छे कारीगरों को भी लाया होगा जिनकी सहायता से उसने बहुत से भव्य मंदिरों को बनवाया। कहा जाता है कि मार्तण्ड के प्रसिद्ध मन्दिर को, जो आज अनन्तनाग से चार मील की दूरी पर खंडहरों के रूप में है, ललितादित्य ने ही बनवाया था। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि इन मन्दिरों को राजा रामदेव (३००५-२४३६ ई० पू०) ने बनवाया था और ललितादित्य ने उनका पुनः निर्माण किया था। मुक्तपीड़ ने अपने शासन-काल में उडरों (table lands) तक जल पहुंचाने के लिए नहरें भी खुदवाईं थीं।

ललितादित्य के शासन काल में देश में शान्ति थी। राज्य व्यवस्था को इसी तरह कायम रखने के लिए उसने अपनी प्रजा को यह शिक्षा दी थी कि वह एकता के सूत्र में बंधी रहे और गृहयुद्ध के चंगुल में न फंसे। किसानों के पास आवश्यकता से अधिक अनाज, जानवर तथा अन्य वस्तुएं रखने के वह विरुद्ध था, इसलिए कि वे अनुशासन में बंधे रहें। इससे उसका यह भी अर्थ था कि किसानों के रहन-सहन का स्तर शहर में रहने वालों से नीचा होना चाहिए।

ललितादित्य के पश्चात् उसका सबसे बड़ा लड़का कुवलयपीड़ ७३६ ई०

में गद्दी पर बैठा। उसने एक साल तक काश्मीर पर शासन किया और बाद में साधु हो गया। इसके बाद ललितादित्य की दूसरी रानी का लड़का बाप्पियक राजा बना और उसने सात वर्ष तक शासन किया। परन्तु इसके काल में शासन-व्यवस्था ठीक नहीं रही।

७५१ ई० में ललितादित्य के पोते जयपीड़ ने काश्मीर की गद्दी को संभाला।

जयपीड़ ने भी अपने बाबा ललितादित्य की तरह दूसरे देशों पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से कन्नौज के राजा पर आक्रमण किया और उसे परास्त किया। परन्तु कुछ समय के पश्चात ही उसे काश्मीर वापिस आना पड़ा, क्योंकि उसे अपने देश काश्मीर की राजगद्दी छिन जाने का खतरा हो गया था। जयपीड़ ने बड़े-बड़े विद्वानों और कवियों का उत्साह बढ़ाने के लिए हर तरह की सहायता दी। उसने बहुत से शहरों को भी बसाया।

जयपीड़ के लड़के ललितपीड़ ने ७८२ ई० से ७९४ ई० तक काश्मीर में शासन किया और उसके पश्चात् उसका भाई संग्रामपीड़ ७९४ ई० से ८०१ ई० तक काश्मीर की राजगद्दी पर रहा। ८०१ ई० से ८१३ ई० तक ललितपीड़ के लड़के बृहस्पति ने राज्य किया। बृहस्पति नाबालिग था। इसलिए राज्य की बागडोर उसके मामाओं उत्पल तथा उसके चार भाइयों के हाथों में रही। ८१३ ई० में वज्रादित्य का नाती अजितपीड़ गद्दी पर बैठा। इसके बारे में यह कहा जाता है कि बृहस्पति की मृत्यु के बाद उसके मामा उत्पल ने सशस्त्र युद्ध के द्वारा अजितपीड़ को गद्दी दिलवाई। उसने लगभग ३७ साल तक शासन किया। इसके काल में असली सत्ता बृहस्पति के दूसरे मामा मम्म के हाथ में थी। इसी का लाभ उठाकर मम्म ने अपने दूसरे भाई उत्पल को हराकर संग्रामपीड़ द्वितीय के लड़के अनंगपीड़ को ८५० ई० में राज्य-गद्दी दी। जिसने तीन वर्ष अर्थात् ८५३ ई० तक राज्य किया। इसके बाद अजितपीड़ के पुत्र उत्पलपीड़ को सुखवर्मन ने गद्दी पर बैठाया। उसने दो साल ८५५ ई० तक राज्य किया। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि ललितादित्य के बाद जितने भी राजा हुए, वे अधिकतर बच्चे थे, जिससे काश्मीर की शासन-व्यवस्था दिन-प्रति-दिन कमजोर होती गयी।

ललितादित्य के बाद अगर काश्मीर में राज्य की सुव्यवस्था करने तथा शांति स्थापित करने का श्रेय किसी शासक को मिला तो वह था अवन्तीवर्मन, जिसने ८५५ ई० से ८८३ ई० तक काश्मीर पर शासन किया। अवन्तीवर्मन

विष्णु की पूजा करता था और इसीलिए उसने अवन्तीपुर में विष्णु मन्दिर बनवाए। अवन्तीवर्मन के काल में एक मशहूर इंजीनियर सुय्य का वर्णन महत्वपूर्ण है। वह नीच जाति में पैदा हुआ था। परन्तु अपनी कोशिशों से एक महान इंजीनियर बन गया। उसने झेलम नदी को इस प्रकार काबू किया कि सदियों तक काश्मीर बड़े-बड़े सैलाबों (बाढ़ों) से बच गया। आज का सोपुर पहले सुय्य के नाम पर सुय्यपुर कहलाता था। अवन्तीवर्मन ने अपने देश में कला व साहित्य की प्रगति में भी सहयोग दिया। उसने अवन्तीपुर नामक शहर बसाया, जहां आजकल भी अवन्तीस्वामी के मन्दरों के अवशेष उपलब्ध हैं।

८८३ ई० में अवन्तीवर्मन के पुत्र शंकरवर्मन ने काश्मीर के शासन को अपने हाथ में ले लिया। शंकर वर्मन की भी अन्य देशों पर विजय प्राप्त करने की अभिलाषा थी। कहा जाता है कि उसकी सेना अपार थी और इस सेना से उसने अनेक देशों को जीता। त्रिगर्त के शासक पृथ्वीचन्द तथा गुर्जर (वर्तमान पश्चिमी पंजाब का गुजरात) के राजा अलखान को भी इसकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। कहा जाता है कि शंकरवर्मन का आचरण अच्छा नहीं था। प्रजा से अधिक कर प्राप्त किया जाता था और बेगार जोरों पर थी।

इसके बाद काश्मीर के इतिहास में लम्बे समय तक राजाओं, उनके भाइयों और चाचाओं वगैरा में आपस में राज्य के लिए संघर्ष होते रहे। राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बट गया।

९५० ई० के लगभग क्षेमगुप्त नामक नाबालिग लड़का गद्दी पर बैठा। वह एक बुद्धिमान राजा था। उसने उदभंद के राजा भीमसाही की पोती राजकुमारी दिद्धा से शादी की। दिद्धा एक बहुत ही बहादुर स्त्री थी और अपने पति के शासन काल में ही उसने राज्य में काफी प्रभाव पैदा कर लिया था।

९५८ ई० में अपने पति की मृत्यु के बाद महारानी दिद्धा ने अपने लड़के अभिमन्यु को राज्य-गद्दी दी। लेकिन वास्तव में वह स्वयं ही शासन करती थी। रानी दिद्धा के विषय में कहा जाता है कि वह एक निर्दयी, कठोर तथा चालबाज़ स्त्री थी। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि अपने लड़के की मृत्यु में इसका भी हाथ था। उसने अपने सभी शत्रुओं को मरवा दिया और उनकी स्त्रियों और बच्चों को देश से निकाल दिया। यह भी कहा जाता है कि रानी दिद्धा का एक लोहार वंश के पुरुष से प्रेम हो गया जो एक हरकारे का काम करता था। दिद्धा ने उसे अपना मंत्री बना लिया और उसी की सहायता से महमूद गजनवी को काश्मीर में पैर नहीं जमाने दिये। महमूद गजनवी ने काश्मीर पर दो बार

हमला किया परन्तु असफल रहा। कुछ समय बाद दिद्धा रानी ने अपने भतीजे संग्रामराज को गोद लिया और गद्दी पर बैठाया। इससे पता चलता है कि वह समय अराजकतावाद का रहा होगा।

इस अव्यवस्था और अराजकता का अंत राजा हर्ष के काल में हुआ।

हर्ष ने १०८९ ई० में काश्मीर के राज्य की बागडोर संभाली और ११०१ ई० तक अर्थात् बारह साल राज किया। वह बहुत बहादुर तथा काबिल था और कला एवं संगीत का प्रेमी था। वह विद्वानों, संगीतकारों तथा कवियों को अपने दरबार में दावत देता था और उन्हें उत्साहित करता था। लेकिन जनता पर टैक्सों का बोझ बढ़ा दिया गया था। दुर्भाग्यवश इसी के काल में काश्मीर में कुछ बीमारियां फैलीं और इन बीमारियों के साथ-साथ एक भयानक सैलाब भी चढ़ आया। इसका लाभ उठाने के लिए कुछ डाकू लुटेरों ने जनता को लूटना शुरू कर दिया। इन हालात में सताई हुई जनता अपने राजा के विरुद्ध उठ खड़ी हुई और उसे समाप्त करके ही छोड़ा।

हर्ष के बाद उच्छल राजा बना। उसका पूरा समय देश के अन्दरूनी झगड़ों को दबाने में ही बीता। यहां तक कि अन्त में वह भी क़त्ल करा दिया गया। उसके बाद उसके छोटे भाई सुस्सल ने कुछ महीनों शासन किया। यह समय भी अराजकतावाद का था।

सुस्सल के बाद जयसिंह को भी बड़े बड़े सामन्तों से टक्कर लेनी पड़ी। ये सामन्त अकसर डामर कहलाते थे। परन्तु जयसिंह ने सब पर सफलता प्राप्त की और ११२८ ई० से ११५५ ई० तक काश्मीर पर शासन किया।

सवा सौ साल के एक लम्बे समय के पश्चात १२८६ ई० में राजासिंहदेव का शासन-काल आता है। उसके बाद सुहदेव या सहदेव, जो सिंहदेव का भाई था, काश्मीर का शासक बना। अपने शासन-काल में इसने तीन विदेशियों का स्वागत किया। पहला था तिब्बत का शाहजादा रिंचन, जिसे उसके चाचा ने अपने देश से निकाल दिया था। दूसरा था दर्दिस्तान का शासक लंकरचक और तीसरा था शाहमीर। इन तीनों को राजा ने शरण दी।

१३२० ई० के लगभग मंगोलों के नेता ज़ुल्क़दखान (डुल्चू) ने काश्मीर पर आक्रमण किया। राजा सहदेव किस्तवाड़ की तरफ़ भाग गया। कुछ महीनों की लूटमार के बाद जब डुल्चू अपने देश लौट रहा था तो वह सेना सहित रास्ते में ही बर्फ में दबकर मर गया। यह जानकर सहदेव वापिस आ गये। लेकिन शीघ्र ही रिंचन ने शाहमीर की सहायता से प्रधान मंत्री रामचन्द्र को

मरवा डाला और स्वयं काश्मीर का राजा बन बैठा। उसने रामचन्द्र की बेटी कोटा रानी से विवाह किया। बाद में उसने इसलाम धर्म को अपना लिया तथा अपना नाम सदरुद्दीन रख लिया। लगभग ढाई वर्ष तक शासन करने के बाद १३२३ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

राजा सहदेव का भाई उदयन देव भी किस्तवाड़ भाग गया था। वह रिंचन अर्थात् सदरुद्दीन की मृत्यु के फ़ौरन बाद ही काश्मीर आ गया और आते ही उसने विधवा कोटा रानी से विवाह किया। इतिहास के इस काल में अचल ने काश्मीर पर आक्रमण किया। नया राजा उदयन देव अपने भाई की तरह भाग गया। उसकी पत्नी ने बहादुरी के साथ पूरी सेना को एकत्रित करके, शाहमीर की संरक्षकता में तुर्कों के विरुद्ध भेज दिया। तुर्कों को हराकर भगा दिया गया। इसे सुनकर राजा उदयन देव फिर वापिस आ गया और पन्दह वर्ष अर्थात १३३८ ई० तक काश्मीर पर शासन करता रहा। उसकी मृत्यु के बाद उसकी पत्नि कोटारानी ने शासन भार संभाला। परन्तु वह कुछ महीने ही शासन कर पायी थी कि शाहमीर ने जबरदस्ती राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली और अपने आपको काश्मीर का राजा घोषित कर दिया। उसने कोटारानी से विवाह करना चाहा, परन्तु रानी ने आत्म हत्या कर ली। कोटारानी की मृत्यु से काश्मीर के हिन्दू शासकों का काल समाप्त होता है। उसके बाद राजसत्ता मुललमान शासकों के हाथ में चली गई।

मुस्लिम काल

१३३९ ई० में शाहमीर शाह मिरजा शमसुद्दीन के नाम से पहला मुसलमान बादशाह बना।

सुल्तान शाहमीर के बारे में हम लिख चुके हैं कि किस तरह उसने कोटारानी से शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली।

सुल्तान शमसुद्दीन के पश्चात् १३४२ ई० से १३५४ ई० तक सुलतान अलाउद्दीन ने शासन किया। १३५४ ई० में सुल्तान शहाबुद्दीन काश्मीर का शासक बना। सुल्तान शहाबुद्दीन ने फ़ौजी संगठन मजबूत किया। तिब्बत, किस्तवाड़ तथा जम्मू को जीतकर काश्मीर में मिला लिया। पेशावर में अफ़गानों को हराया। काशगर, बदखशां और काबुल को अपने अधीन कर लिया। इसके राज्य में इसलाम धर्म की बहुत उन्नति हुई। इसने १३७३ ई० तक काश्मीर पर राज्य किया। इसके बाद सुल्तान कुतुबुद्दीन शासक बना जिसके राज्य काल में प्रसिद्ध मुस्लिम प्रचारक शाहहमदान काश्मीर आये थे।

सुल्तान कुतुबुद्दीन के बाद १३८९ ई० में सुल्तान सिकन्दर बुतशिकन काश्मीर का बादशाह बना। कुछ इतिहासकारों का कहना है कि इसका अन्य धर्मों के अनुयायियों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं था। यह इतिहास का वह समय था जब तैमूर ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया था। सिकन्दर ने १४१३ ई० तक पूरे २३ वर्ष काश्मीर पर शासन किया। उसके बाद सुल्तान अलीशाह ने १४१३ ई० से १४२० तक राज्य किया।

१४२० ई० में सुल्तान ज़ैनुल-आबदीन (बड़शाह) गद्दी पर बैठा। ज़ैनुल-आबदीन गुणवान, बहादुर और उदार हृदय था। उसने हिन्दुओं से जज़िया तथा अन्य टैक्स लेने बन्द कर दिये। मन्दिरों की मरम्मत कराई। अपने शासन काल में ज़ैनुल-आबदीन ने जहां संस्कृत का भी संरक्षण किया और उसे प्रोत्साहन दिया, वहां दरबार में फारसी विद्वानों को सम्मानित करके फारसी भाषा को भी प्रचलित कराया।

ज़ैनुल-आबदीन कला का प्रेमी था। उसने काश्मीर में पहली बार रेशम, कागज, शाल, बेल बूटे तथा बुततराशी (sculpture) आदि के उद्योग कायम किये और इनके लिए उसने ईरान, तुर्किस्तान तथा खुरासान से शिल्पकारों व दस्तकारों को बुलाया, जिससे इसके काल में कला व दस्तकारी की बहुत प्रगति हुई। इसके अलावा फलों के पेड़ भी लगवाये गये। इसी काल में शेख नूरुद्दीन (नुन्दरिशि) जैसे दार्शनिक कवि भी हुए। इनके अलावा जोनाराज, श्री भट्ट तथा श्रीवा आदि प्रसिद्ध साहित्यिक भी बड़शाह के दरबारी रहे।

ज़ैनुल-आबदीन ने यात्रियों के लिए आराम घर भी बनवाये। जमीन की उपज बढ़ाने तथा देश को सैलाबों से बचाने के लिए उन्होंने शाहकोल और ज़ैना-गीर नामक नहरें बनवाईं जिनपर पुलों का निर्माण भी किया गया। तुर्किस्तान, मिश्र, टर्की और हिन्दुस्तान से कूटनीतिज्ञ-सम्बंध स्थापित किये।

काश्मीर की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में एक महान् परिवर्तन लाकर, सारी जनता का यह प्रेमी ज़ैनुल-आबदीन १४७० ई० में इस संसार से चल बसा। ज़ैनुल-आबदीन की मृत्यु के बाद सुलतान हैदरशाह ने, जो शराबी था, १४७२ ई० तक शासन किया।

१४७२ ई० से १४८४ ई० तक सुल्तान हसनशाह ने काश्मीर की राजगद्दी को संभाला। यह सुल्तान संगीत का प्रेमी था और उसने अपने दरबार में लगभग १२०० संगीतज्ञों को रखा हुआ था। इसके बाद मुहम्मदशाह सुल्तान ने १४८४ से १४८६ ई० तक और फतहशाह सुल्तान ने १४८६ से १४९३ ई० तक काश्मीर

पर राज्य किया। इस काल में श्रीनगर के तीसरे पुल फतह कदल को बनवाया गया। मुहम्मदशाह व फतहशाह ने लगभग चार चार बार काश्मीर पर राज्य किया था, क्योंकि वह समय अराजतावाद का था। १५५५ ई० तक काश्मीर पर इन सुल्तानों ने शासन किया। इनका अन्तिम सुल्तान हबीबशाह था। जैनुल-आबदीन के बाद इन सुल्तानों में कोई भी ऐसा शक्तिशाली सुल्तान नहीं बन सका, जो काश्मीर की एकता को बनाये रखता। इसीलिए चकों और मुगलों के काश्मीर पर लगातार आक्रमण होने लगे। जैनुल-आबदीन ने अपने अन्तिम दिनों में चकों को कई बार हराया था। परन्तु उसके बाद चकों ने धीरे धीरे प्रजा में अपना प्रभाव स्थापित किया और हबीबशाह के बाद उनके हाथ में शासन की पूरी बागडोर आई।

चकों का शासन-काल

चक वंश के प्रथम बादशाह गाज़ी चक ने काश्मीरी जनता पर बहुत अत्याचार किये। इस वंश के बादशाह यूसुफ़शाह ने १५७९ से १५८६ ई० तक शासन किया। यह कला के प्रेमी थे। हब्बा खातून, जो काश्मीर की प्रसिद्ध कवित्री हुई है और एक किसान-कलाकार थीं, यूसुफ़शाह की ही रानी बनी थीं। कहते हैं, यूसुफ़शाह को अकबर ने अधीनता स्वीकर करने को लिखा था और वह तैयार भी था, किन्तु वजीरों ने अनुमति न दी। परिणाम यह हुआ कि राजा भगवानदास के नेतृत्व में काश्मीर पर चढ़ाई की गई और यूसुफ़शाह गिरफ़्तार किये गये। यद्यपि राजा भगवानदास ने इन्हें अकबर से संधि कराने का वचन दिया था, किन्तु अकबर ने यूसुफ़शाह को नजरबंद्र करके बिहार भेज दिया। इसके पश्चात यूसुफ़शाह के पुत्र याकूब ने मुगल सेना का प्रतिकार किया, किन्तु वह भी परास्त हुआ। इस प्रकार १५८७ में काश्मीर मुगलों के अधीन हुआ।

मुगलों का काल

मुगल बादशाह अपने गवर्नरों के द्वारा काश्मीर पर शासन करते थे और स्वयं काश्मीर में अकसर गर्मियों में आनन्द मनाने के लिए आते थे।

अकबर बादशाह ने काश्मीर का तीन बार भ्रमण किया और अपने मंत्री टोडरमल से जमीन की जांच पड़ताल कराई। किसानों की मालगुजारी को निश्चित किया। अपने अन्तिम भ्रमण के दिनों में हरि पर्वत की पहाड़ी के किले को बनवाया। मजदूरों से कोई बेगार नहीं ली गई, बल्कि उन्हें इस काम के लिए अच्छी मजदूरी दी गई।

अकबर का लड़का जहांगीर काश्मीर को सब देशों से अधिक पसन्द करता था। जहांगीर ने काश्मीर का पांच बार भ्रमण किया। इसी के काल में निशात, शालिमार आदि बाग लगवाये गए।

शाहजहां ने भी अकबर और जहांगीर की तरह हिन्दू व मुसलमानों के साथ एक सा बर्ताव किया। शिकारे वालों से जो जबरदस्ती टैक्स वसूल किया जाता था, उसे माफ़ कर दिया गया। शाहजहां तीन बार काश्मीर गया।

औरंगज़ेब अपनी बीमारी के कारण केवल एक बार ही काश्मीर जा सका। उसके काल में काश्मीर में अकाल, भूचाल और सैलाबों की भरमार रही। काश्मीर पर मुगलों का शासन १७५२ ई० तक रहा। इस वंश का अन्तिम बादशाह मुहम्मदशाह था और आखरी गवर्नर मन्सूरखां।

मुगलों के काल में एक विदेशी यात्री बरनियर ने काश्मीर का भ्रमण किया। वह काश्मीर के लोगों की योग्यता, उनकी कविता तथा बुद्धिमत्ता को देखकर आश्चर्य चकित हो गया था। इतना ही नहीं, फूलों और फलों से भरी हुई इस घाटी को उसने 'स्वर्ग-प्रदेश' कहकर पुकारा है। शाल का उद्योग उन दिनों अच्छा चलता था।

मुग़लकाल के पतन के बाद काश्मीर १७५३ ई० में उन भयानक और निर्दयी अफ़गान गवर्नरों के हाथों में पड़ गया, जो यहां के लोगों को पशुओं से भी गया गुजरा समझते थे। इनका पहला नेता अहमदशाह दुर्रानी था। काम इन का केवल जनता को लूटना था। १७५३ ई० से १८१९ ई० तक आम जनता पर जो अत्याचार हुए वह शायद ही इतिहास के किसी समय में हुए हों। इन सब अफ़गान गवर्नरों में अमीर शेर जवान का गवर्नरी काल कुछ संतोषजनक था। इसी के नाम पर अमीरा कदल नामक पुल बना है। पं० नन्दराम टिक्कू तथा पं० जयराम भान जैसे विद्वान इसी काल में ऊंचे पदों पर नियुक्त किये गए। यह उस समय की बात है जब अंग्रेज भारतवर्ष पर मंडरा रहे थे और वारेन हेस्टिंग्ज़ गवर्नर जनरल बन कर आया था।

पंजाब में उन दिनों महाराजा रणजीत सिंह की ताकत बढ़ रही थी। पठानों के अत्याचार से तंग आकर काश्मीर के कुछ लोगों ने पं० बीरबल धर के नेतृत्व में महाराजा रणजीत सिंह से सहायता की अपील की। काश्मीरियों का यह निमंत्रण महाराजा रणजीतसिंह के लिए एक सुनहरा अवसर था। इससे पहले महाराजा रणजीतसिंह ने १८१४ ई० में सिख फौज काश्मीर भेज दी थी, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली थी। १८१९ ई० में महाराजा के सबसे अच्छे जनरल

मिश्री दीवानचन्द और डोगरा सरदार गुलाबसिंह ने अन्तिम अफ़गान गवर्नर मुहम्मद आज़िम तथा जब्बार खां को हराया। इस तरह काश्मीर पर सिखों का शासन स्थापित हो गया।

१८१९ ई० से १८४६ ई० तक काश्मीर में सिखों का शासन रहा। परंतु शासन बदलने से आम जनता का कोई भला नहीं हुआ। वह जैसे अफ़गानों के समय में पिसती थी उसी तरह सिखों के काल में भी सतायी जाने लगी।

१८१९ ई० से १८३९ ई० तक महाराजा रणजीतसिंह ने अपने गवर्नरों के द्वारा काश्मीर पर शासन किया। महाराजा को काश्मीर की जनता की स्थिति सुधारने के लिए समय नहीं था। गवर्नर जनता पर अत्याचार करते थे। १८३९-४० ई० में दूसरे राजा खड़कसिंह के जमाने में जबरदस्त भूचाल आया और हैजा फैला। इस बीमारी के कारण अनगिनत व्यक्तियों को मृत्यु का शिकार होना पड़ा। और इसी के साथ साथ खड़कसिंह की मृत्यु भी हो गई।

१८४१ से १८४३ ई० तक शेरसिंह ने काश्मीर पर शासन किया। शेर सिंह के काल में एक भयानक अकाल पड़ा, जिसके कारण हजारों को संख्या में काश्मीरी लोग पंजाब भाग गये। १८४३ ई० में शेरसिंह तथा उसके बारह वर्ष के बेटे की भी हत्या कर दी गई। अन्त में पांच साल के लड़के दलीपसिंह को गद्दी पर बैठाया गया। इसके शासन की बागडोर संभालने के दो साल बाद ही अर्थात् नवम्बर १८४५ ई० में अंग्रेजों और सिखों के युद्ध में सिख हार गये। और इस तरह काश्मीर से भी सिखों का शासन समाप्त हो गया।

सिख शासन-काल में आम जनता की आर्थिक हालत बहुत खराब थी। टैक्स बढ़ा दिये गये थे। किसानों को अपनी फसल का $\frac{3}{4}$ भाग सरकार को देना पड़ता था, जिसके कारण बहुत से किसानों ने स्वयं भूमि जोतने का काम ही छोड़ दिया था। मजदूरों से जबरदस्ती मुफ़्त मजदूरी कराई जाती थी, जिसे बेगार कहते थे। इस काल में विदेशी यात्री विलियम मूरक्राफ्ट ने १८२४ ई० में काश्मीर का भ्रमण किया। उन्होंने लिखा है कि, "सिख-शासक काश्मीरियों को जानवरों से अधिक अच्छा नहीं समझते थे और उसी तरह से उनसे व्यवहार भी करते थे। हर जगह लोग बुरी हालत में थे और हर किस्म का अत्याचार सहते थे।"

डोगरा शासन-काल शुरू करने से पहले यहां यह बता देना आवश्यक है कि हिन्दू राजाओं, मुसलमान बादशाहों तथा सिखों के शासन-काल में आम जनता की आर्थिक व सामाजिक हालत कैसी थी।

हिन्दू राजाओं तथा मुसलमान बादशाहों के काल में मनुष्यों की जीविका का मुख्य साधन जमीन थी। लेकिन यह जमीन भी अधिकांश जनता के हाथों में नहीं थी, बल्कि उस वर्ग के हाथ में थी, जिसके पास राजनैतिक सत्ता थी। यह वर्ग जागीरदारों व जमीदारों का था, जिन्होंने पूरी जमीन को आपस में बांट लिया था। इन जागीरदारों की जमीन पर आम लोग गुलामों की तरह खेत-मजदूरी का काम करते थे। ये गुलाम ही अपनी मेहनत से पैदावार करते थे। इनकी खून-पसीने की कमाई को जागीरदार व चकदार ले जाता था और उन्हें नंगा, भूखा छोड़ देता था।

आम लोगों में से जिन लोगों के पास थोड़ी बहुत जमीन थी उन पर इतने टैक्स लगाए गए थे कि उनके लिए जमीन जोतना असम्भव बन गया था। कारण साफ था। पूरा समाज दो बड़े बड़े वर्गों में विभाजित हो चुका था। एक वर्ग था जागीरदारों व जमीदारों का, जो मुट्ठी भर थे और राज्य की अधिकांश जमीन तथा अन्य आर्थिक साधन उन्हीं के कब्जे में थे। दूसरा था निम्न वर्गीय किसान तथा खेतिहर मजदूरों का वर्ग, जो गुलामों की तरह जागीरदारों का काम करते थे।

जमीन काश्त करने के अलावा कई शासकों विशेषतः ज़ैनुल-आबदीन के समय में अन्य उद्योग जैसे कागज, सिल्क, शाल बनाने तथा लकड़ी व ऊन आदि से तरह तरह की वस्तुएं तैयार करने के काम चल पड़े थे। इन उद्योग-धन्धों में यद्यपि हजारों मज़दूर काम करते थे किन्तु उनकी दशा भी शोषित दासों से अच्छी न थी।

हां, मुगलों के जमाने में आम जनता की हालत कुछ अच्छी थी। शाल व अन्य उद्योगों में कुछ सुधार हुआ था। फिर भी मनसबदारी की प्रथा की शक्ल में सामंतवाद विद्यमान था।

काश्मीर के इतिहास में पठानों और सिखों का शासन काल सबसे घिनौना और अंधकारमय समझा जाता है। इस काल में उद्योग-धन्धे नष्ट-भ्रष्ट हो गये। जनता पर टैक्सों का बोझ लादा गया। लोग इच्छा के विरुद्ध काम करने के लिए मजबूर किये गये। सरकारी अफ़सर भ्रष्टाचारी थे। जागीरदार बहुत शक्तिशाली बन गये, क्योंकि राज्य की ओर से उन्हें सब तरह की सुविधाएं प्राप्त थीं।

आम जनता के इसी आर्थिक व सामाजिक ढांचे में डोगरा शासन का श्रीगणेश हुआ।

डोगरा शासन

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में अर्थात् १७८१ ई० में राजा रणजीत देव की मृत्यु के बाद जम्मू तथा उसके आस-पास का इलाक़ा सिख साम्राज्य में शामिल किया गया। गुलाब सिंह, जो रणजीत देव के पिता ध्रुव देव का वंशज था, एक मशहूर बहादुर डोगरा राजपूत सरदार था। इसने १८१२ ई० में महाराजा रणजीत सिंह की सेना में नौकरी कर ली। जल्दी ही राजौरी के राजा को परास्त करके गुलाब सिंह ने अपनी बहादुरी और योग्यता का सबूत दे दिया। महाराजा रणजीतसिंह ने प्रसन्न होकर उसे १८१६ ई० में जम्मू के राजा की उपाधि दे दी। गुलाब सिंह ने इतनी ख्याति प्राप्त कर ली थी कि १८३९ ई० में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद सिख साम्राज्य के अन्दर वह सबसे प्रभावशाली व्यक्ति था। लेकिन उसने सिखों की राजनीति के फेर में न पड़कर अपने देश जम्मू का रास्ता लिया। गुलाब सिंह के जम्मू जाने का दूसरा कारण यह भी था कि महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद सिख साम्राज्य की हालत डांवाडोल हो गयी थी। इसलिए अब उसने अपने डोगरा प्रदेश को बढ़ाना और मज़बूत करना शुरू कर दिया। उसने काश्मीर घाटी और जम्मू के बीच के पहाड़ी क्षेत्रों को एक-एक कर जीतना प्रारम्भ कर दिया। १८३५ ई० से १८४२ ई० तक बलतिस्तान और पश्चिमी तिब्बत को जीत लिया। केवल दस वर्ष के अन्दर उसने और उसके दो भाइयों ने काश्मीर और पंजाब के बीच का लगभग पूरा इलाक़ा डोगरा-राज्य में मिला लिया। पूरे लद्दाख के इलाक़े को भी जीत कर जम्मू में मिला दिया। इस तरह १८४२ ई० के अन्त तक, गुलाब सिंह ने काश्मीर को छोड़ कर शेष सारे इलाक़े पर अपना शासन स्थापित किया। गुलाब सिंह दूरदर्शी था, जानता था कि अंग्रेज शक्तिशाली हैं और भारत पर उनका शासन स्थापित होगा। इसलिए वह उनसे बिगाड़ना नहीं चाहता था।

१८४५ ई० में जब सिखों और अंग्रेज़ों का युद्ध छिड़ जाने को था, उस समय सिखों के कमजोर शासक अंग्रेजों का मुकाबला नहीं कर सकते थे। इसलिए सिखों ने लाहौर के दरबार में गुलाब सिंह से सिख साम्राज्य की बागडोर संभालने के लिए प्रार्थना की। और १८४६ ई० में उसे प्रधानमंत्री घोषित कर दिया गया। गुलाब सिंह इस ताक में था ही कि अपनी राजशाही को कब और कैसे सुदृढ़ कराया जाय, तो इस अवसर का उसने पूरा लाभ उठाया। उसने सिख फ़ौज के साथ अंग्रेज़ों से टक्कर नहीं ली, जिससे अंग्रेजों

की जीत का रास्ता खुल गया। इस तरह अंग्रेज़ों ने सुभराओं की लड़ाई के बाद लाहौर को जीत लिया।

६ मार्च १८४६ ई० में लाहौर की संधि हुई। अन्य बातों के साथ संधि में यह शर्त भी रखी गयी कि राजा गुलाब सिंह तथा अंग्रेज़ों के बीच एक अलग समझौता हो। उसी संधि के द्वारा पहाड़ी क्षेत्रों पर राजा की सार्वभौम सत्ता स्वीकार की गई। यह दूसरी संधि अमृतसर की संधि के नाम से प्रसिद्ध है, जो १६ मार्च १८४६ ई० में अमृतसर में हुई। इस संधि के अनुसार गुलाब सिंह को जम्मू और काश्मीर का महाराजा मान लिया गया, और गिलगित भी गुलाब सिंह के सिपुर्द किया गया। इसके बदले में राजा को ७५,००,००० रुपये अंग्रेज़ सरकार को देने पड़े।

इस तरह काश्मीर डोगरा राजाओं के अधीन हो गया। इसी के साथ ही काश्मीर में साम्राज्यवादियों की नजरें गड़ गयीं। तभी से वे काश्मीर को हड़पने के लिए साज़िशों पर साज़िशें करते रहे। नाम को तो डोगरा शासक आज़ाद थे परन्तु उनपर अंग्रेज़ों का पूरा प्रभाव था।

महाराजा गुलाब सिंह

गुलाब सिंह का अधिकतर समय बलवों को दबाने तथा अन्य युद्धों में ही बीता। शासन की बागडोर संभालते ही सिखों के अंतिम गवर्नर शेख इमामुद्दीन से उसे युद्ध करना पड़ा, क्योंकि शेख इमामुद्दीन ने काश्मीर को छोड़ने से साफ़ इनकार कर दिया था। राजा गुलाब सिंह ने वजीर लखपत की संरक्षकता में शेख इमामुद्दीन के विरुद्ध सेना भेजी। गुलाब सिंह की फ़ौज को मुंह की खानी पड़ी और वजीर लखपत मारा गया। इस पर डोगरा शासक ने अंग्रेज़ों से सैनिक सहायता मांगी। सिखों तथा अंग्रेज़ों की सम्मिलित फ़ौज से डर कर शेख इमामुद्दीन ने बिना लड़े ही राजा गुलाब सिंह की अधीनता स्वीकार कर ली। इस तरह उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जम्मू व काश्मीर, लद्दाख, बलतिस्तान और गिलगित का पूरा इलाका डोगरा शासक के अधीन हो गया। लेकिन जल्दी ही सीमान्त प्रदेशों पर गड़बड़ी हो गई। हुंजा के राजा ने गिलगित पर आक्रमण कर दिया और उसे जीत लिया। लेकिन डोगरा फ़ौज ने गिलगित के किले को दुबारा जीत लिया। १८५२ ई० में दर्दिस्तान के उस हिस्से से, जो सिन्ध नदी के दाहने किनारे पर स्थित है, डोगरों को निकाल दिया गया, और गिलगित से भी उन्हें हाथ धोना पड़ा। आठ वर्ष तक सिन्ध नदी ही महाराजा के प्रदेश की सीमा रही।

महाराजा गुलाब सिंह ने अपने देश में सख्ती के साथ दमन करके शान्ति स्थापित करने की लगातार कोशिश की। समाज की हालत अस्तव्यस्त थी। जनता की आर्थिक हालत बहुत खराब थी। गुलाब सिंह के समय की हालत के बारे में लैफ़्टीनेंट कर्नल टोरेन ने लिखा है, "जनता भूखी मर रही थी। गुलाब सिंह ने अपने पूर्वाधिकारियों से भी अधिक टैक्स लगा दिये थे। पहले ही बोझ अधिक था। अब तो उनका खून तक निचोड़ लिया गया। मेहनतकशों की कमाई को उसने जबरदस्ती छीन लिया था।" अन्य लेखकों ने भी उसके बारे में ऐसा ही लिखा है। वह जनता में बदनाम था। कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने गुलाब सिंह को अवश्य अच्छा कहा है, जिसका कारण साफ़ है कि गुलाब सिंह ने अपनी जनता के साथ चाहे कैसा भी व्यवहार किया हो परन्तु अंग्रेज़ साम्राजियों का हमेशा साथ दिया है।

महाराजा रणवीर सिंह

१८५७ ई० में राजा गुलाब सिंह की मृत्यु के पश्चात महाराजा रणवीर सिंह ने डोगरा शासन की बागडोर संभाली। सर वाल्टर लारेंस ने महाराजा रणवीर सिंह को एक "आदर्श शाहजादा" के नाम से पुकारा है। इसका कारण भी साफ़ है कि महाराजा रणवीर सिंह भी अपने पिता गुलाब सिंह की तरह अंग्रेज़ों के सहायक थे। महाराजा रणवीर सिंह ने ही १८५७ ई० के मशहूर गदर को दबाने में अंग्रेज़ों की सहायता की थी। जब अंग्रेज़ों ने इस सहायता के बदले महाराजा को एक जागीर देनी चाही तो रणवीर सिंह ने बड़े अभिमान के साथ यह उत्तर दिया कि "मैंने ब्रिटिश सरकार की मदद अपनी वफ़ादारी का सबूत देने के लिए की है न कि कोई इनाम पाने के लिए।"

महाराजा रणवीर सिंह ने राजगद्दी संभालते ही उन सीमान्त प्रदेशों को जीतना चाहा, जो उसके पिता गुलाब सिंह के हाथों से निकल चुके थे। उन क्षेत्रों के राजाओं में आपस में वैमनस्य होने के कारण महाराजा को यह एक सुनहरा अवसर मिल गया। हुंजा और नगर के राजा एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखते थे। यासीन और बूनियाल के राजाओं के सम्बंध अच्छे नहीं थे। महाराजा के सौभाग्य से डोगरा फ़ौज पहुंचने से पहले ही गौहर रहमान, जिसके पास १८५२ ई० से गिलगित था, मर चुका था। इसलिए उसने अपने पिता के सभी खोये हुए इलाकों को जीत लिया। इनके अलावा १८६३ ई० में यासीन और १८६५ ई० में दरेल घाटी को भी अपने राज्य में मिला लिया।

महाराजा रणवीर सिंह वास्तव में एक सुव्यवस्था रखने वाला राजा था।

उसने अपने काल में संस्कृत और फारसी के विद्वानों को उत्साहित किया, इतना ही नहीं वह उन विद्वानों की आपसी बहसों से लाभ उठाने के लिए उनके साथ बैठना भी पसंद करता था। उसने अध्ययन और खोज के काम की तरफ विशेष तौर पर ध्यान दिया, और श्रीनगर में संस्कृत और फ़ारसी के प्राचीन साहित्य की एक अच्छी लाइब्रेरी कायम की। श्रीनगर में आज का खोज विभाग महाराजा रणवीर सिंह का ही कायम किया हुआ है।

रणवीर सिंह के समय में आर्थिक संकट के कारण जनता में जो असंतोष फैला हुआ था उसके फलस्वरूप १८७२ ई० में शिया और सुन्नी मुसलमानों में आपस में झगड़ा हो गया। १८७७ ई० में काश्मीर में वर्षा न होने के कारण भयंकर अकाल पड़ा जिसके कारण काश्मीर के गांव के गांव नष्ट हो गये तथा हज़ारों की संख्या में व्यक्ति भूख से मर गये। इस मौके पर महाराजा ने तीन लाख रुपये से लोगों की सहायता की।

१८७८ ई० में अफगान-युद्ध शुरू हो गया। महाराजा रणवीर सिंह ने अपनी कुछ फ़ौज और फ़ौजी सामान अंग्रेजों की सहायता के लिए भेजा। अफ़गान-युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने महाराजा रणवीर सिंह से यह मांग की कि काश्मीर में एक अंग्रेज पोलीटिकल एजेन्ट नियुक्त किया जाय, क्योंकि अंग्रेज़ गिलगित के महत्व को जानते थे। गिलगित उनके दांव-पेच के लिए एक बेहतरीन जगह थी। परन्तु अंग्रेजों के दबाव तथा तरह-तरह की धमकियों के बावजूद, महाराजा रणवीर सिंह ने उनकी यह मांग स्वीकार नहीं की। १२ सितम्बर १८८५ ई० को उनकी मृत्यु हो गई।

महाराजा प्रताप सिंह

महाराजा रणवीर सिंह की मृत्यु के बाद उनके सबसे बड़े लड़के महाराजा प्रताप सिंह ने २५ सितम्बर १८८५ ई० को राज्य की बागडोर संभाली। प्रताप सिंह शान्तिप्रिय थे परन्तु उनमें अपने पिता रणवीर सिंह की तरह हिम्मत नहीं थी। हम यह पहले ही लिख चुके हैं कि अंग्रेज साम्राजी अपना एक पौलीटिकल एजेंट राजा रणवीर सिंह के दरबार में रखना चाहते थे। तब उन्हें सफलता नहीं मिली। लेकिन प्रताप सिंह के काल में उनकी यह मांग पूरी हो गई और अंग्रेजों का पहला रेजीडेंट सर औलीवर सैन्ट जॉन बना। महाराजा प्रताप सिंह के सर औलीवर से सम्बंध अच्छे नहीं थे। फिर भी औलीवर महाराजा से झगड़ा करना नहीं चाहता था। उसके बाद प्लाउडन आया जो महाराजा के खिलाफ़ लगातार साजिशें करता रहा; प्लाउडन महाराजा के छोटे भाई अमर सिंह को गद्दी पर

बैठाना चाहता था। लेकिन प्लाउडन की चालबाजियां "अमृत बाज़ार पत्रिका" में प्रकाशित हो गयीं, इससे वह अपने काम में सफल न हो सका। तब भी महाराजा पूरी तरह आजाद नहीं रह गया था। एक कौंसिल के द्वारा उसके सब अधिकार छीन लिये गये थे। बाद में लार्ड कर्जन ने महाराजा को फिर पूरे अधिकार दे दिये। यहां यह बता देना ज़रूरी है कि प्रताप सिंह के समय में ही गिलगित में अंग्रजों का एक फौजी दस्ता नियुक्त किया गया था।

१८८५ ई० में महाराजा प्रताप सिंह के समय में एक बड़ा भूकम्प आया, जिसने अनगिनत घरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और बहुत से लोगों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। इसी समय काश्मीर में कई बार हैजा भी फैला।

महाराजा प्रताप सिंह ने कुछ सुधार भी किये। चावल पर से चुंगी हटा ली गयी। ब्रिटिश रेजीडैन्ट सर वालटर लारेंस ने जमीन की जांच-पड़ताल की, और उसका उचित प्रबन्ध किया। अफ़सरों के भ्रष्टाचार के कारण और टैक्सों के बोझ से गरीब किसानों ने ज़मीन जोतने का धन्धा ही छोड़ दिया था किन्तु लारेंस ने इस काम में काफी सुधार किया। उन किसानों को दुबारा जमीन दिलवाई, जिनकी जमीनें गैरकानूनी तरीके से जबरदस्ती छीन ली गई थीं। प्रारम्भ में लारेंस को बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा, क्योंकि किसान भय के कारण खेती करना नहीं चाहते थे। परन्तु धीरे-धीरे वह लोगों को सही बात समझाने में सफल हो गए। सर वालटर लारेंस ने "दी वैली आफ काश्मीर" नाम की एक किताब भी लिखी है जिससे यह पता चलता है कि उसने काश्मीर के लोगों का कितना गूढ़ अध्ययन किया था।

गिलगित और काश्मीर से बेगार नाम की जबरदस्ती मुफ़्त मजदूरी का तरीका खत्म कर दिया गया।

महाराजा प्रताप सिंह के जमाने में कुछ शिक्षा-संस्थाएं भी स्थापित हुईं। जम्मू का 'प्रिंस आफ़ वेल्स कालिज' इसी जमाने में स्थापित किया गया था। १९०७ ई० में एक बिजली घर भी बनाया गया। १९२४ ई० में रियासत में एक अखबार भी शुरू हुआ।

महाराजा प्रतापसिंह की सितम्बर १९२५ ई० में मृत्यु हो गयी।

महाराजा हरि सिंह

महाराजा प्रताप सिंह के कोई लड़का नहीं था, इसलिए उनके भाई राजा अमर सिंह का लड़का राजा हरि सिंह गद्दी पर बैठा। वह स्टेट कौंसिल का सबसे पुराना सदस्य भी था।

महाराजा हरि सिंह ने राज्य की बागडोर अपने हाथों म लेते ही बड़े जोश के साथ अपनी जनता की खुशहाली के लिए सुधारों के वचन दिये । उसने अपनी प्रजा की भलाई के लिए खुद दिलचस्पी दिखानी शुरू कर दी, कई जन-कार्यों में हिस्सा लिया । अपने अधीन अफ़सरों तथा गांव में रहने वाली जनता के सही हालात जानने के लिए वह दूर-दूर के जिलों के हेड-क्वार्टरों में जाया करता था ।

महाराजा हरि सिंह के ही काल में रियासती बाशिंदे की सनद-प्रथा (Hereditary State Subject) चालू की गई । इस विषय का एक कानून बना जिसके अन्तर्गत काश्मीर-निवासी नौकरी आदि अन्य सुविधाएं पाने के अधिकारी बन गये । शिक्षित वर्ग के लिए इससे विशेष लाभ हुआ । लगभग प्रत्येक काश्मीरी यही समझता रहा कि महाराजा जनता के फ़ायदे के लिए ही यह सब कुछ कर रहा है ।

महाराजा हरि सिंह ने जन-शिक्षा के लिए नये-नये स्कूल खुलवाये और अस्पतालों की भी स्थापना की ।

इन सुधारों के बावजूद जनता की आर्थिक व सामाजिक हालत खराब रही । डोगरा शासन-काल की आर्थिक व सामाजिक हालत के बारे में हम विस्तृत रूप से राष्ट्रीय आंदोलन के अध्याय में चर्चा करेंगे, यहां इतना बता देना जरूरी है कि हरि सिंह की नीतियों तथा लोगों की आर्थिक हालत के कारण काश्मीर में राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर पैदा हो गई, जिसके साथ ही अनेक और प्रश्न भी सामने आये । इसके अलावा हिन्दुस्तान में अंग्रेजों के विरुद्ध कांग्रेस आन्दोलन चल रहा था, और राज्यों में जन-आन्दोलन भी चल रहे थे । अन्त में काश्मीर के इस राष्ट्रीय आन्दोलन ने, जो नेशनल कान्फ्रेंस के नेतृत्व में चला, १९४७ ई० में महाराजा हरि सिंह को गद्दी से उतार कर ही छोड़ा ।

हरिसिंह की गद्दी छिन जाने के साथ ही काश्मीर का राजशाही और सामन्ती युग समाप्त हुआ । उसके बाद नये काश्मीर के इतिहास का श्रीगणेश होता है ।

सीमान्त प्रदेश

जम्मू और काश्मीर राज्य में कुछ ऐसे प्रदेश भी हैं, जिनके निवासियों की भाषा, धर्म व रंग-रूप अर्थात् संस्कृति बिलकुल अलग और निराली है। ये इलाक़े राज्य के उत्तर, पूर्व तथा पश्चिम में स्थित हैं, जिन्हें काश्मीर के सीमान्त प्रदेशों के नाम से पुकारा जाता है। इन सीमान्त प्रदेशों का क्षेत्रफल जम्मू तथा काश्मीर के क्षेत्रफल से लगभग दूना है, परन्तु यहां की जन-संख्या बहुत कम है।

लद्दाख

लद्दाख काश्मीर के सीमान्त प्रदेशों में अति दिलचस्प इलाक़ा है। यह प्रदेश उत्तर में कराकोरम पहाड़ों से, पूर्व में तिब्बत से, दक्षिण में हिमालय पर्वत से तथा पश्चिम में बलतिस्तान से घिरा हुआ है। इसकी राजधानी लेह है।

लेह लद्दाख का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। राजधानी के अलावा लद्दाखी जनता का यह धार्मिक केन्द्र भी है। यह दक्षिण में हिन्दुस्तान तथा उत्तर और पूर्व में यारकन्द, खोतन और तिब्बत के बीच व्यापार का केन्द्र भी है। हर साल सितम्बर के महीने में यहां एक बड़ा बाज़ार लगता है। तुर्किस्तान, साइबेरिया, तिब्बत और मध्य एशिया के अन्य हिस्सों से व्यापारी माल खरीदने, बेचने तथा उन व्यापारियों से माल का तबादला करने के लिए आते हैं जो काश्मीर तथा हिन्दुतान के दूसरे हिस्सों से अपना माल यहां लाते हैं। इसलिए यहां सब धर्म और जातियों के लोग मिलते हैं, बौद्धों की संख्या सबसे अधिक है। कुछ मुसलमान हैं, और ईसाइयों का एक मोरेवियन मिशन भी यहां मौजूद हैं।

लद्दाख की मुख्य पैदावार गेहूं, जौ और ग्रिम है। बारिश लगभग बिलकुल नहीं होती। केवल गर्मी और सर्दी के दो मौसम होते है। गर्मियों में दिन बहुत

गर्म होते हैं और रातें बहुत ठंडी होती हैं, इतनी ठंडी कि कभी-कभी पानी भी जम जाता है। सर्दियों में जाड़ा बहुत पड़ता है; परन्तु बर्फ़ कभी-कभी या बहुत कम पड़ती है।

लद्दाख की जनसंख्या लगभग ४०,००० है, जिनमें ३६,००० बौद्ध हैं। लद्दाखी चार मुख्य जातियों में बंटे हुए हैं : (१) ग्याल्पो या राजा, (२) ज़िरक या अफ़सर, (३) मुंगरिक या किसान, और (४) रिंगन या हीन कार्य करने वाले। इनके अलावा मुसलमानों की एक उपजाति अरघोन होती है। ये लद्दाखी महिलाओं से अस्थायी विवाह भी करते हैं। रुपशु के इलाके में एक और जाति रहती है जिसे चाम्पा भी कहते हैं। इस जाति के लोग अपनी भेड़ों को लेकर पहाड़ी इलाकों पर घूमते रहते हैं और अकसर अपना निवास-स्थान तम्बुओं में ही बनाते हैं। ये वे लोग हैं, जो भारी संख्या में देश के व्यापार के लिए ऊन भेजते हैं। करगिल और पुरिक के अधिकांश निवासी मुसलमान हैं और व्यापार का काम करते हैं।

अधिकतर लद्दाखी खेती करते हैं, क्योंकि उनकी उपज का मुख्य साधन ही यही है। हर कुटुम्ब के पास जमीन का एक टुकड़ा होता है। प्रायः लोग बहुत गरीब हैं। वे अपने खेतों को एक जानवर 'जो' द्वारा जोतते हैं जो नील गाय की तरह का पशु होता है।

लद्दाखियों का खाना बहुत सादा है। गरीबों के लिए सिर्फ त्यौहारों के अलावा मांस मिलना बहुत मुश्किल है। अधिकतर लोग जौ की मोटी रोटी और उसमें काफ़ी नमक डाल कर खाते है। काश्मीरियों की तरह वे भी एक अलग किस्म की चाय बनाते हैं, जिसमें सोडा, नमक तथा मक्खन मिलाना पड़ता है। इनमें नहाने का बहुत ही कम रिवाज है। यहां के निवासी कद के छोटे होते हैं। पुरुषों का कद पांच फुट तक और महिलाओं का चार फुट आठ इन्च तक होता है। पुरुषों का पहनावा होता है लम्बा चोगा और सिर पर ऊनी टोपी। स्त्रियां भी पूरी बाहों का लम्बा गाउन और सिर पर एक किस्म की कपड़े की टोपी पहनती हैं।

धर्म भावना इनमें बहुत अधिक होती है। बौद्ध धर्म को मानते हैं। प्रदेश भर में बहुत से बौद्ध मठ तथा मन्दिर हैं, जिन्हें 'गोम्पा' कहा जाता है। सबसे मशहूर गोम्पा लेह के दक्षिण में अठारह मील की दूरी पर हेमिस है। लगभग प्रत्येक कुटुम्ब में से इन गोम्पाओं में पूजा के निमित्त एक लड़का या लड़की समर्पित की जाती है जो लामा या चोमस कहलाते हैं। इनका धार्मिक मुखिया तिब्बत का लामा होता है।

लद्दाख में विवाह-सम्बंधी प्रथाएं निराली हैं। प्रत्येक कुटुम्ब केवल एक पत्नी रखता है। बड़े भाई की पत्नी को उसके दो छोटे भाइयों से भी विवाह करना पड़ता है। इस तरह से उसके तीन पति हो जाते हैं। यदि उनसे भी छोटा कोई और भाई है तो उसे आजन्म अविवाहित रहना पड़ता है। इसीलिए अकसर तीन भाइयों के अलावा छोटे भाई को बौद्धमठ में भेज दिया जाता है जहाँ वह भिक्षु बन जाता है। बड़े भाई के नाम से खानदान चलता है और वही जायदाद का मालिक भी होता है जिससे वह अपने दोनों भाइयों अर्थात अपनी पत्नी के दोनों छोटे पतियों, अन्य बहनों, पत्नी तथा अपने माता-पिता का पालन-पोषण करता है।

यदि किसी लद्दाखी कुटुम्ब में कोई लड़का न हो तो जायदाद लड़की के नाम कर दी जाती है। यह लड़की अपनी शादी अपने आप करने में स्वतंत्र होती है। वह चाहे एक पति रखे, उसे छोड़ दे और चाहे वह कितने ही पुरुषों से विवाह करे। वह किसी समय भी अपने पति को छोड़ सकती है। ये पति मागपा कहलाते हैं। जायदाद वाली औरत के यहां काफ़ी अधिकार हैं। हो सकता है कि एक पत्नी और बहुपति की यह विवाह प्रथा लद्दाख निवासियों ने शायद अपनी गरीबी के कारण जनसंख्या को रोकने के लिये ही चला दी हो!

लद्दाखी अपने विवाह तथा अन्य सामाजिक उत्सवों पर अपनी नृत्यकला व संगीत का प्रदर्शन भी खूब करते हैं। वे नाच तथा संगीत के द्वारा नाटक भी खेलते हैं। उन नाटकों का विषय यह होता है कि बुराई पर अच्छाई ने कैसे विजय प्राप्त की। बौद्ध धर्म के अनुयायी होने के कारण अन्त में वे बौद्ध धर्म की ही जीत दिखाते हैं।

लद्दाख में बहुत सी जमीन उजाड़ पड़ी है। वहां समुद्र तल से १७,००० से २१,००० फुट तक ऊंचे-ऊंचे पहाड़ अनेकों हैं और कोई भी जगह ६,००० फुट से नीची नहीं है। लकड़ी बहुत कम मिलती है।

पहले यहां ग्याल्पो (गवर्नर) के अधीन तिब्बत का ही शासन चलता था। १५३९ ई० में यारकन्द के सुल्तान सईद ने इस पर आक्रमण किया। स्करदू के मुसलमान बादशाहों ने भी इसे अपने अधीन रखा था। उसके बाद मुगलों ने लद्दाख को कुछ काल तक अपने शासन के अधीन रखा।

१८३४ ई० में महाराजा गुलाब सिंह ने वजीर जोरावर की अध्यक्षता में कुछ फौज लद्दाख को जीतने के लिए भेजी; परन्तु शुरू में इसे मुँह की खानी पड़ी। इसके बाद १८४२ ई० में डोगरा फ़ौज ने लद्दाख पर विजय प्राप्त की,

जिससे वह डोगरा शासन के अधीन हो गया। १९४७ ई० में डोगरा शासन के समाप्त होने के बाद आज वह काश्मीर की राष्ट्रीय सरकार के अंतर्गत है।

बलतिस्तान

बलतिस्तान उत्तर में कराकोरम, पूर्व में लद्दाख, दक्षिण में हिमालय पर्वत तथा पश्चिम में दर्दिस्तान से घिरा हुआ है। लद्दाख की तरह यहां भी बहुत ऊंचे-ऊंचे पर्वत हैं; परन्तु इन पर्वतों के बीच बड़े-बड़े मैदानों वाली घाटियां भी हैं। जहां काफी संख्या में बलतिस्तान की जनसंख्या रहती है। शिगर और स्करदू के इलाके काफी घने बसे हुए हैं। स्करदू बलतिस्तान की राजधानी है। स्करदू का मैदान बीस मील लम्बा तथा पांच मील चौड़ा है।

बलतिस्तान के निवासी अकसर मुसलमान हैं और शिया सम्प्रदाय के मानने वाले हैं। परन्तु इनमें भी दो वर्ग के लोग रहते हैं। एक पुराने राजा व जागीरदारों का वर्ग, जो सफ़ेद व बढ़िया कपड़े पहनते हैं। इस वर्ग के लोगों ने किसी समय पूरी जमीन को आपस में बांट लिया था। दूसरा वर्ग किसानों तथा अन्य मजदूरों का है, जो लद्दाखियों की तरह एक लम्बा गाउन पहनते हैं। वे हमेशा प्रसन्नचित्त रहते हैं। पहाड़ों पर मनों बोझ ढोते हुए भी ये अपने मालिक से कभी शिकायत नहीं करते।

बलतिस्तान में भी अधिकतर जमीन उजाड़ है, लेकिन यहां की जनसंख्या अपेक्षतया अधिक है। लद्दाखियों से बिल्कुल उलट यहां एक पति और बहुपत्नी विवाह प्रथा प्रचलित है। इसलिए अकसर लोग तीन-तीन चार-चार विवाह कर लेते हैं। इसी प्रकार जनसंख्या की अधिक वृद्धि से हर वर्ष यहां के लोगों को अपनी आजीविका कमाने के लिए अपने देश से बाहर जाना पड़ता है।

बलतिस्तान में फल अधिक होते हैं, जो बहुत ही स्वादिष्ट होते हैं।

काश्मीर के इस सीमान्त प्रदेश में बहुत से गर्म चश्मे तथा ग्लेशियर हैं। बालटोरू संसार में सबसे बड़े ग्लेशियरों में से एक है।

प्राचीन काल में बलतिस्तान के निवासी काश्मीर के राजाओं के ही अधीन थे। चकों के जमाने में वे आजाद हो गये। मुगलों ने उन्हें फिर अपने अधीन कर लिया। अफ़गानों के आने के बाद वे फिर स्वतन्त्र हो गये। १८३७ ई० में राजा अहमदशाह वहां का मुख्य सरदार बना। उसके बेटे मुहम्मदशाह ने उसका विरोध किया और सिखों से जा मिला। वजीर जोरावर ने इस इलाके को जीत लिया। परन्तु काफ़ी हरजाना वसूल करके अहमदशाह को यह जगह फिर वापिस दे दी गयी। वजीर जोरावर की मृत्यु के बाद बलतिस्तान के राजा ने महाराजा

गुलाव सिंह के विरुद्ध बगावत कर दी। गुलाब सिंह की डोगरा फ़ौज ने स्करदू को जीत लिया। तभी से यह इलाका डोगरा शासन के अधीन हो गया। १९४७ ई० के कबायली हमले के बाद दुर्भाग्यवश यह पाकिस्तान के अधीन हो गया है।

दर्दिस्तान

दर्दिस्तान उत्तर में कराकोरम व हिन्दूकुश पहाड़ों, पूर्व में बलतिस्तान, पश्चिम में यागिस्तान तथा दक्षिण में काश्मीर घाटी से घिरा हुआ है। गिलगित, अस्तोर, बूँजी, चिलास, हुंजा तथा कुछ अन्य स्थान दर्दिस्तान के इलाके में शामिल हैं। लगभग १७,००० वर्ग मील क्षेत्रफल के इस प्रदेश की जन-संख्या १,१६,००० के लगभग है।

गिलगित यहां की सबसे मशहूर जगह है। श्रीनगर से गिलगित तक एक सड़क भी जाती है। अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक दृष्टिकोण से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल है। इसलिए साम्राज्यवादी हमेशा से इसे अपने अधीन करने की कोशिश करते आये हैं। कबायली हमले की ओट में उनका यह स्वप्न किसी हद तक पूरा भी हो गया है।

गिलगित में अधिकतर जन-संख्या आगाखानी जाति के मानने वाले मुसलमान खोजों की है।

दर्दिस्तान के निवासी दरद कहलाते हैं। मुसलमानों के दोनों सम्प्रदाय शिया और सुन्नी यहां रहते हैं। किसी-किसी नगर में तो शिया ही शिया रहते हैं। हुंजा में एक फिरका—अली-इलाही है, जो अली को ही अपना खुदा मानते हैं।

दरद मेहनती, बहादुर, लम्बे और ख़ूबसूरत हैं। गिलगित और अस्टोर के इलाके में कुछ राजाओं के वंशज हैं, जो आकृति और रहन सहन से कुछ भिन्न हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि जिन बाहर के सामन्तों और सरदारों ने गिलगित पर शासन किया उन्होंने यहां की सुन्दर-से-सुन्दर स्त्रियों से विवाह करके सन्तान पैदा की। डा० नीव ने यहां के निवासियों के बारे में लिखा है कि "यह एक आजाद और बहादुर जाति है।"

दरद अपने-आपको सिकन्दर की संतान कहते हैं। इनके खूबसूरत चेहरों, नीली आंखों और कुछ व्यक्तियों के सुनहरे बालों को देखकर यह अनुमान होता है कि यहां कभी बैक्टीरियन यूनानी आकर आबाद हुए होंगे।

दर्दिस्तान में बारिश बहुत कम होती है। काश्मीर के सभी फल हुंजा और

नगर में पैदा होते हैं। फलों के अतिरिक्त इस देश में गेहूँ, जौ तथा ग्रिम की पैदावार होती है।

गिलगित प्राचीन लोक-कथाओं का घर है जिनके द्वारा प्राचीन इतिहास, उस समय के पुरुष तथा स्त्रियों का आचरण आदि सभी दिलचस्प बातें मालूम हो जाती हैं। यहां के मनुष्य घंटों ये लोक-कथाएं अपने बच्चों को सुनाते हैं।

यहां के मजदूरों से बेगार ली जाती थी जिसके कारण किसी समय इन मजदूरों का जीवन गुलामों से भी बदतर था। महाराजा प्रताप सिंह के समय में यह 'बेगार' नाम की जबरदस्ती मजदूरी बन्द कर दी गयी।

१८५९ ई० में महाराजा रणवीर सिंह ने गिलगित को डोगरा शासन के अधीन कर लिया। १९४७ ई० के कबायली हमले के बाद से यह पाकिस्तान के कब्ज़े में है, जहां साम्राजी अपने फ़ौजी अड्डे बनाने की कुत्सित कार्रवाई में लगे हैं।

जम्मू

काश्मीर के दक्षिण में हिमालय पर्वतमाला के दूसरी तरफ जम्मू प्रान्त फैला हुआ है। इस प्रदेश में कठुआ, जम्मू, ऊधमपुर तथा अन्य पूर्वी हिस्से हैं। जम्मू की सीमाएं पंजाब से मिलती हैं। इसी कारण इसका सीधा सम्बंध हिन्दुस्तान से हो गया है। इस इलाक़े का क्षेत्रफल लगभग ६,००० वर्ग मील है। इसमें लगभग ११,००,००० लोग बसते हैं, जिनमें से लगभग ६,००,००० हिन्दू हैं।

जम्मू नगर जम्मू प्रान्त की राजधानी है। यह नगर तवी नदी के किनारे स्थित है। सर्दी के दिनों में छः महीने के लिए यही नगर काश्मीर सरकार की राजधानी बन जाता है।

जम्मू नगर में आते ही हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो हम पंजाब में आ गये हैं। यहां के निवासी डोगरी व पंजाबी बोलते हैं। समुद्री सतह से केवल १,२०० फुट की ऊंचाई होने के कारण इसकी जलवायु मैदानी इलाक़े से मिलती-जुलती है।

जम्मू में अनेकों मंदिर तथा ऐतिहासिक महत्व की इमारतें हैं। उचित ही लोग इसे मंदिरों का नगर भी कहते हैं।

जम्मू प्रान्त में अधिकतर डोगरे रहते हैं। इसे डुग्गर प्रदेश कहा जाय तो अनुचित न होगा। डोगरों में सबसे ऊंची जाति डोगरा ब्राह्मणों की है। उनका मुख्य पेशा कृषि व व्यापार है। कुछ फ़ौज में भरती हो जाते हैं और कुछ सरकारी नौकरी भी करते हैं। दूसरी जाति डोगरा राजपूतों की है। इन राजपूतों में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही हैं। इनका खास पेशा राज्य तथा बाहर की फ़ौज में नौकरी करना है। डोगरा राजपूत बड़े बहादुर, मजबूत और साहसी हैं। वफ़ादारी डोगरों का सबसे बड़ा गुण है।

डोगरा शासन-काल में राज्य की फ़ौज पर अधिकतर डोगरा राजपूतों का ही आधिपत्य था। इतना ही नहीं, सरकार के अन्य विभागों में भी नौकरी करने और हथियार रखने की उन्हें पूरी आज़ादी थी।

जम्मू प्रान्त की मुख्य पैदावार गेहूं, जौ और चावल है। यहां प्रायः वह सभी फल पाये जाते हैं, जो पंजाब में पैदा होते हैं।

जम्मू प्रान्त का अधिकतर इलाका पहाड़ी है। पीने योग्य पानी की समस्या यहां की एक बहुत बड़ी समस्या है। इस समस्या को हल करने के लिए सरकार नल, कुएं और नहरें खुदवा रही है। बहुत सी जगहों पर नल व कुएं खोदे भी जा चुके हैं। जोहड़ों और तालाबों का गंदा पानी पीने वाले लोगों को जीवन में पहली बार नल व कुओं का पानी मयस्सर हुआ है। इसके लिए वे मौजूदा सरकार के आभारी हैं। सरकार के सामने नहर खोदने की एक योजना भी है। यह नहर कठूआ से जम्मू तक, लगभग साठ मील लम्बी होगी। नहर की खुदाई के काम में लगभग बारह करोड़ रुपये खर्च हो जायेंगे। लोगों को पीने का पानी प्रदान करने के अलावा यह नहर सत्तर हज़ार एकड़ भूमि की सिंचाई भी करेगी। सच पूछा जाय तो इस नहर से जम्मू प्रान्त में एक नए जीवन का आरम्भ होगा।

जोगेन्दर नगर से बिजली लाकर जम्मू प्रान्त के अधिकतर हिस्सों में बिजली भी लगा दी गई है। फलस्वरूप बिजली की रोशनी के अलावा अब यहां नए कल-कारखाने भी शुरू हो रहे हैं।

इस प्रांत के विभिन्न क्षेत्रों को एक-दूसरे के मिलाने के लिए काश्मीर सरकार सड़कों का एक जाल सा बिछा रही है। यहां विभिन्न स्वास्थ्यवर्धक स्थानों की तरक्की भी की जा रही है।

जम्मू नगर से उतर कर ऊधमपुर, कठूआ, बद्रवाह, रियासी और पुंछ के नगर हैं। पुंच का कुछ भाग और मीरपुर का जिला कबायली हमले के बाद से पाकिस्तान के कब्ज़े में चला गया है। वहां के लोगों की दशा दयनीय है। वे उन तमाम सुधारों से वंचित रह गये हैं जो काश्मीर सरकार के अन्तर्गत अन्य क्षेत्रों की जनता को उपलब्ध हैं।

प्राचीन काल से ही जम्मू प्रान्त कला-कौशल में मशहूर रहा। बसौली की चित्रकारी को आज के चित्रकार जगत में उत्कृष्ट चित्रकला का नमूना मानते हैं।

वैष्णव देवी

जम्मू प्रान्त में वैष्णव देवी का तीर्थ स्थान बहुत प्रसिद्ध है। लगभग ५२,०० फुट की ऊंचाई पर वैष्णव देवी की गुफ़ा स्थित है। यहां प्रत्येक वर्ष हजारों की तादाद में यात्री आते हैं।

वैष्णव देवी की गुफ़ा १०० फीट लम्बी है। उसी में एक छोटा सा रास्ता है। एक चरण गंगा नाम का चश्मा गुफ़ा में मूर्ति के नीचे से होकर जाता हैं। गुफ़ा के भीतर एक साथ पंद्रह व्यक्ति आ जा सकते हैं।

इस गुफ़ा के बाहर वैष्णव दरबार नाम का एक बड़ा सा चबूतरा है, तीर्थ यात्री तथा अन्य धार्मिक लोग इसी चबूतरे पर बैठकर पूजा-पाठ करते हैं।

जम्मू प्रान्त के इस भाग की जलवायु बहुत अच्छी है। यहां के सौन्दर्यमय दृश्यों को देख कर तीर्थ यात्री चकित रह जाते हैं। वैष्णव देवी का यह पवित्र स्थान अपनी सुन्दरता के कारण सदियों से दूर-दूर तक प्रसिद्ध रहा है।

वैष्णव देवी गुफ़ा के बाहर एक तिमंजिली सराय है। इस सराय में लगभग एक हज़ार यात्री ठहर सकते हैं। चाय, मिठाई तथा अन्य आवश्यक चीज़ों की कुछ दुकानें भी हैं। सरकार की ओर से यहां दवा-दारू का भी प्रबंध है।

वैष्णव देवी पहुंचने के लिए जम्मू से कटरा तक बस जाती है। कटरा एक छोटा सा कस्बा है और समुद्री सतह से २,६१८ फीट की ऊंचाई पर है। हाल ही में यहां बिजली लग गयी है जिससे कस्बे की रौनक बढ़ गयी है। वैष्णव देवी के दर्शनाभिलाषी यात्री आराम के लिए यहीं मुकाम करते हैं। यहां से वैष्णव देवी तक यात्रियों को पैदल या घोड़ों पर जाना पड़ता है।

इस स्थान से लगभग आध मील की दूरी पर बालगंगा नाम का चश्मा है। तीर्थ यात्री इस चश्मे के पवित्र जल में स्नान करके फिर वैष्णव देवी के दर्शनों के लिए आगे बढ़ते हैं।

श्रीनगर

काश्मीर की राजधानी श्रीनगर झेलम नदी के दोनों किनारों पर और काश्मीर घाटी के लगभग केन्द्र में स्थित है। इतिहास के अध्याय में हम बता चुके हैं कि इस शहर को प्रवरपुर के नाम से प्रवरसेन द्वितीय ने छठी शताब्दी में बसाया था।

श्रीनगर के मुख्य बाजार अमीरा कदल में पग धरते ही हमारी पहली दृष्टि पैलेडियम सिनेमा के सामने लाल चौक के उस लाल झंडे पर जाती है, जो काश्मीर के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रतीक है। यही है वह हल वाला झंडा जिसके नीचे नेशनल कान्फ्रेंस के नेतृत्व में यहां के किसानों तथा अन्य जनता ने अपना राष्ट्रीय आन्दोलन चलाया। वितस्ता (झेलम) के पहले पुल से लेकर प्रताप पार्क तक अमीरा कदल का यह मुख्य बाजार ही श्रीनगर का चांदनी चौक है अर्थात् नगर का सर्वोत्तम बाजार है। यहीं पर काश्मीर के अधिकांश होटल भी हैं, जहां यात्री आकर ठहरते हैं।

अमीरा कदल से दक्षिण पूर्व की ओर झेलम के किनारे बंड बना हुआ है जिसके बायीं तरफ़ खूब सजी हुई दुकानें हैं और दायीं ओर झेलम नदी बहती है। देश-विदेश के जितने भी यात्री श्रीनगर में आते हैं, इस बंड पर शाम को अवश्य सैर को निकलते हैं। जिन्होंने बम्बई में समुद्र के किनारे चौपाटी की सैर की हो, वह इस बंड की सैर का खूब आनंद ले सकेंगे।

हाउसबोट

इसी बंड के साथ-साथ झेलम नदी में हाउस बोट देखने को मिलते हैं। लकड़ी के बने हुए ये हाउस बोट अक्सर १५० फुट लम्बे तथा १२ फुट चौड़े होते हैं। एक यूरोपियन लेखक टैन्डल बिस्को ने लिखा है कि "नाव बनाने का

काश्मीरियों का अपना एक खास तरीका है, और वे इस कला में अति निपुण हैं। मेरी भी हमेशा नाव बनाने में दिलचस्पी रही है; लेकिन मैंने ऐसी नावें और कहीं नहीं देखीं, जैसी कि काश्मीर में हैं।"

हाउसबोट की बनावट

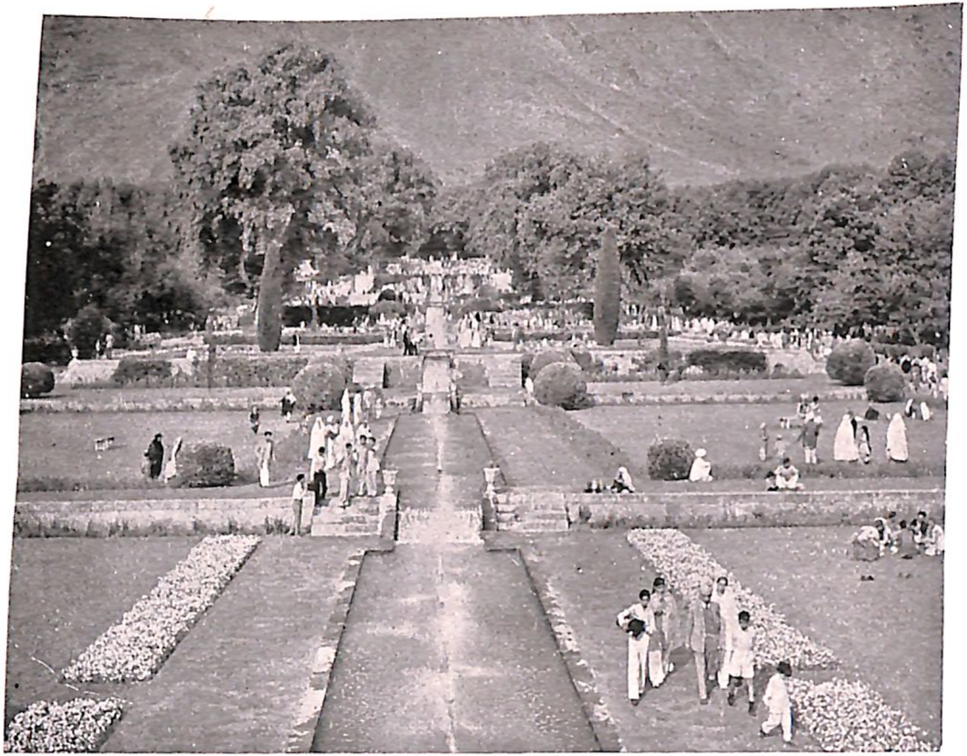
मामूली नाव बड़े सन्दूक-जैसी दो या तीन इन्च लकड़ी के तख्तों की बना हुई होती है। इसकी सतह ६ फुट से ९ फुट लम्बी तथा तीन फुट चौड़ी लकड़ी के तख्तों की बनी होती है। इन तख्तों को बड़ी-बड़ी लोहे की कीलों से जोड़ दिया जाता है। इन कीलों को पहले आग में खूब गरम किया जाता है और जब वह गर्म होकर लाल हो जाती हैं तो उन पर पानी डाल दिया जाता है, जिससे वह मजबूती से तख्तों को जोड़ सकें। सतह के पूरा होने पर इसकी दीवारों को भी इन्हीं तीन व चार फुट चौड़े लकड़ी के तख्तों से तैयार किया जाता है।

हाउसबोट के इतिहास की खोज करने से पता चलता है कि सबसे पहला हाउस बोट एक काश्मीरी पंडित नारायण दास ने बनाया। पंडित नारायण दास उन गिने चुने पंडितों में से एक थे, जिन्होंने सबसे पहले अंग्रेज़ी पढ़ी। काश्मीर मिशन स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद यूरोपियन यात्रियों की आवश्यकता के लिए पं० नारायण दास ने एक दुकान खोल ली। दुर्भाग्यवश कुछ दिन के बाद वह दूकान जल गई। उन्होंने दूकान के लिए डूंगे का प्रयोग किया (डूंगा एक प्रकार की नौका है, जो यहां पहले से ही प्रचलित थी।) इसे एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में बड़ी आसानी रहती थी। वर्षा और बर्फ से बचने के लिए पं० नारायण दास ने उस डूंगे की दीवारों और छत पर चटाई की जगह तख्ते लगा दिए। इस प्रकार पहला हाउस बोट तैयार हो गया। इस हाउस बोट को अच्छी कीमत पर एक अफ़सर ने खरीद लिया। इसके बाद पं० नारायण दास ने बोट बनाने का काम ही अपने हाथ में ले लिया और कुछ दिन के बाद वह काश्मीर का एक मुख्य नाव-निर्माता बन गया। उसके इस शुभ कार्य को कर्नल आर सरटोरियस, वी० सी० सर आर० हारवे तथा बार्ट आदि यूरोपियनों ने आगे बढ़ाया, और १९१८ ई० में एक दुमंजले 'विक्टरी' नाम के हाउस बोट को तैयार किया। यह बोट राज बाग में नदी के किनारे पर मौजूद था। प्रत्येक यात्री इसे देखता था और प्रशंसा करता था।

हाउसबोट अधिक-से-अधिक ६५ से ९५ फुट तक लम्बा तथा १४ फुट चौड़ा होता है। इनमें एक बैठने का, एक खाने का और दो या तीन सोने के



श्रीनगर के नज़दीक झेलम नदी में हांजी (मल्लाह) अपनी किश्ती में पत्थर ले जा रहा है।



डललेक के कगार पर स्थित श्रीनगर का सबसे बड़ा ग्रौर सुन्दरतम उद्यान

कमरे होते हैं। गुसलखाना और टट्टी अलग होती है। खिड़कियों पर खूबसूरत कपड़े के परदे और शीशे लगे होते हैं। पूरी नाव देवदार की लकड़ी की बनी होती है।

श्रीनगर में लगभग दो हजार हाउस बोट और डूंगे हैं, जिनमें अधिकतर धनी यात्री या यूरोपियन ही ठहर सकते हैं, क्योंकि ये होटलों से अधिक खर्चीले पड़ते हैं। इनमें काम करने वाले मुसलमान मल्लाह (हांजी) होते हैं, जो बहुत अच्छा खाना भी तैयार करते हैं। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि जो यात्री इन हाउसबोटों में रहते हैं वे ही काश्मीर का वास्तविक आनन्द उठा पाते हैं! इन हाउसबोटों के नाम भी बहुत अच्छे रखे जाते हैं, जैसे 'गुलो बुलबुल' या 'लाला रूख'।

हाउस बोटों के अलावा कुछ ऐसी नौकाएं होती हैं जो आठ सौ से लेकर एक हजार मन बोझा एक जगह से दूसरी जगह ले जाती हैं। इन्हें बाहच कहते हैं। जलमार्ग से जो माल एक जगह से दूसरी जगह पुराने ज़माने से ढोया जाता था उसमें यह नौकाएं ही काम आती थीं। बाहचों के मालिक मल्लाह यदि कुछ पैसे वाले हो जाते हैं तो वे अपने रहने तथा यात्रियों को इधर-उधर ले जाने के लिए डूंगों का प्रयोग करते हैं।

शिकारा एक और छोटी नौका है। यात्री अकसर शिकारों पर डल लेक की सैर करते हैं। शिकारों में स्प्रिंगदार गद्दे लगे रहते हैं और इनमें थोड़े से व्यक्ति आराम से सैर कर सकते हैं। इसकी चाल भी तेज रहती है।

'बंड' पर ही श्रीनगर क्लब भी है जहां अमीर लोग आकर बालरूम डान्स (पश्चिमी ढंग का नाच) आदि करते हैं।

'बंड' ही के किनारे रियासत का आर्ट एम्पोरियम है, जो पहले अंग्रेज प्रतिनिधि (रेज़ीडेंट) का निवास-स्थान था। इसके साथ ही रेडियो काश्मीर का दफ़्तर व 'शेरे काश्मीर पार्क' है। इस पार्क का नाम भूतपूर्व प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला के नाम पर रख गया है। इसी में एक म्युनिसिपल वाचनालय भी है।

'बंड' के दूसरी तरफ़ झेलम के उस पार पर लालमंडी के इलाक़े में अजायबघर है। महाराजा प्रतापसिंह ने इसे राज्य के अतिथिगृह के तौर पर बनवाया था, किन्तु आजकल इसमें सरकारी अजायबघर और एक लायब्रेरी है। अजायबघर में बहुत से कीमती काश्मीरी शाल, पुराने हथियार तथा पुरातत्व सम्बंधी वस्तुएं रखी गई हैं। पुस्तकालय में अंग्रेजी, संस्कृत तथा फ़ारसी में काश्मीर पर लिखी प्राचीन पुस्तकें तथा अन्य सामग्री मौजूद है। पास ही एक

कृषि-फ़ार्म है। लालमन्डी के पिछवाड़े राजबाग में सरकारी अफ़सरों की कोठियां हैं। इसे हम श्रीनगर की सिविल लाइन्स कह सकते हैं।

लालमंडी से झेलम के किनारे-किनारे शहर की तरफ़ बढ़ने पर हाउस बोटों की जगह एक दूसरे किस्म की किश्तियां मिलने लगती हैं। इन किश्तियों में हांजियों के घर भी हैं। इन हांजियों का जीवन भी बहुत दिलचस्प है। बहुत से हांजी इन किश्तियों में ही रहते हैं। वे वहीं खाना बनाते हैं। वहीं भेड़ें रखते हैं, और जब नहाना होता है तो इसी झेलम में एक डुबकी भी लगा लेते हैं। कहा जाता है कि इनकी स्त्रियां बहुत मेहनती होती हैं। बड़ी बड़ी बोटों को चलाने में जिन्हें बहच् कहा जाता है और जिनपर लादकर सैकड़ों मन पत्थर व लकड़ी एक स्थान से दूसरे स्थान पहुंचाये जाते हैं) ये महिलाएं अपने पतियों का पूरा साथ देती हैं। कभी-कभी तो यहां तक देखा गया है कि अकेली स्त्रियां ही पूरी बोट को चलाये लिए जा रही हैं और उनके पति देव मौज से बैठे हुक्का पी रहे हैं।

अधिकतर हांजियों का जीवन टूरिस्टों पर आश्रित रहता है। शिकारे वाले, हाउस बोट वाले तथा अन्य बहुत से मज़दूर और कारीगर छः महीने टूरिस्टों से कमाते हैं और सर्दियों में घर पर बैठकर खाते हैं। इनका जीवन कितना कठिन होता है इसका अन्दाज तब लगेगा जब आप दस-दस, बारह-बारह यात्रियों को डूंगे पर लादे बड़ी-बड़ी बल्लियों से डूंगे को पानी में आगे की ओर ढ़केलते इन्हें देखेंगे। कभी कभी तो इन्हें दिन-दिन और रात रात इसी तरह काम करना पड़ता है। इतने पर भी इन्हें पूरी मज़दूरी नहीं मिल पाती। नई सरकार ने इनकी हालत सुधारने के लिए कर्जे आदि देने की व्यवस्था की है। सरकार इनका जीवन-स्तर ऊंचा करने के लिए सतत प्रयत्नशील है।

अमीराकदल पर पहुंचकर शहर की ओर मुड़ते हुए, बाईं ओर एक बहुत बड़ी सफेद इमारत दिखाई देती है। पहले यह महाराजा का महल था। राजा हरिसिंह ने अपने ज़माने में इसे सेक्रिटेरिएट बना दिया। आज भी यहां जम्मू व काश्मीर सरकार का सेक्रिटेरिएट है। इस इमारत के सामने ही गांधी पार्क है। इस पार्क के सामने एक सरकारी बाज़ार है जहां काश्मीर का बना हुआ लकड़ी, रेशम आदि का सामान तथा अन्य चीजें मिलती हैं। इस बाज़ार के सामने वाली सड़क के बाईं ओर उसमान ज़नाना पार्क है। ब्रिगेडियर उसमान काश्मीर को बचाने के लिए कबायलियों से टक्कर लेते हुए शहीद हुए थे। उन्हीं की स्मृति में इस पार्क का नाम उसमान ज़नाना पार्क रखा गया।

लगभग एक मील आगे चलकर इसी सड़क पर श्रीनगर का सबसे अस्पताल है, जिसे महाराजा हरिसिंह ने बनवाया था। यह सरकारी अस्पताल है और वैज्ञानिक ढंग से चिकित्सा का लगभग सभी साज़ो-सामान यहां मौजूद है।

शहर के बाज़ार से निकलने पर हब्बाकदल, झेलम का दूसरा पुल मिलता है। हब्बाकदल पुल को गवर्नर हबीब खां ने बनवाया था। कुछ इतिहासकारों का यह भी मत है कि इसे काश्मीर की सुप्रसिद्ध कवियित्री हब्बा खातून ने बनवाया था। हब्बाकदल के आस पास बड़ी भीड़-भाड़ रहती है। यहां बहुत सी पुरानी व नई दुकानें हैं। खूब बड़ा बाजार है। मालूम होता है मानो श्रीनगर के अधिकतर लोगों ने इस स्थान को एक-दूसरे से मिलने का केन्द्र बना लिया है।

हब्बाकदल से झेलम के किनारे-किनारे नीचे की ओर बढ़ने पर हिन्दुओं का सबसे बड़ा मन्दिर श्री रघुनाथजी का मन्दिर दिखाई पड़ता है। इसी रास्ते आगे बढ़ते जाने पर झेलम का तीसरा पुल, यानी फ़तहकदल मिलता है।

फ़तहकदल पुल को बादशाह फ़तहशाह ने बनवाया था। झेलम के पानी का बहाव तेज़ होने के कारण पहले यह पुल नष्ट हो गया था। परन्तु इंजीनियरों ने इसे फिर उसी हालत में खड़ा कर दिया। फ़तहकदल के आस पास कुछ दूकानें और कारखाने हैं। यह स्थान श्रीनगर का व्यापारिक केन्द्र है। इन दूकानों पर लकड़ी, रेशम, बेलबूटे के काम की चीज़ें तथा तरह-तरह के शाल रखे होते हैं। दूकानों की ओर आपकी नज़र उठते ही व्यापारी अपने उसी पुराने लहज़े में आपको दावत देंगे : "आइये साहब ! खरीदिये नहीं, सिर्फ़ हमारी चीज़ों पर एक नज़र डाल लीजिए ! माल बहुत अच्छा होगा, साहब !"

झेलम के दाहिने किनारे पर शाह-हमदान की मसजिद है। यह मसजिद बौद्ध मन्दिर के नमूने पर बनी हुई है। कहते हैं इसमें एक चश्मा भी है जिसे हिन्दू काली का चश्मा कहते है। इस मसजिद के नीचे ही हिन्दुओं का एक मन्दिर भी है, जहां आकर वे काली की पूजा करते हैं।

झेलम की दूसरी ओर एक और मसजिद है जिसे पत्थर मसजिद या नई मसजिद कहते हैं। कहा जाता है कि इसे नूरजहां ने बनवाया था। इस मसजिद के साथ ही मुजाहिद मंज़िल नाम की एक इमारत है। यह इमारत काश्मीर के राष्ट्रीय आन्दोलन का केन्द्र रही है। इसी इमारत में आज नेशनल कान्फ्रेंस का केन्द्रीय दफ़्तर है।

ज़ैनाकदल अर्थात चौथे पुल पर पहुंचते ही एक और बड़ी आलीशान लकड़ी की इमारत मिलती है। इसके बारे में कहा जाता है कि इसे एक ऐसे

व्यापारी ने बनवाया था जिसके हाथ में पशमीने का पूरा व्यापार था। जैनाकदल को जैनुल-आबदीन बादशाह ने बनवाया था। इस बादशाह का मकबरा भी इसी जैनाकदल पर ही है। जैनाकदल श्रीनगर का एक व्यापारिक केन्द्र भी है जहां हर किस्म की दूकानें नज़र आती हैं। यदि अमीराकदल टूरिस्टों के लिए व्यापारिक केन्द्र है तो जैनाकदल पूरे काश्मीरी लोगों के लिए।

जैनाकदल से नीचे महाराज गंज नाम का एक और बड़ा व्यापारिक बाज़ार है।

महाराज गंज के बाद आलीकदल अर्थात झेलम का पांचवां पुल मिलता है। आलीकदल को बादशाह अलीशाह ने बनवाया था। आलीकदल के बाद नवाकदल अर्थात झेलम का छठा पुल आ जाता है। छठे पुल के बाद सफाकदल अर्थात शहर का अन्तिम, सातवां पुल, आता है। सफाकदल पर एक ऐसी सराय भी है जिसमें अधिकतर यारकन्द के व्यापारी अपने सामान के साथ ठहरते थे।

श्रीनगर के सभी मकान दुमजले व तिमजले हैं। सर्दी में बर्फ़ गिरने के समय यहां के निवासी बहुधा सबसे नीचे की मंजिल में सोते हैं और गर्मियों में ऊपर की मंजिल पर। सभी मकान साफ-सुथरे दिखाई देते हैं।

शहर से निकलकर द्रुगजन की ओर चलने पर डलगेट मिलता है। सुप्रसिद्ध डललेक के किनारे पहुंचते ही शिकारे वालों की आवाज़ें सुनाई पड़ती हैं: "आइये साहब, डललेक की सैर कराउंगा। नेहरू पार्क ले चलूंगा!" शिकारे में बैठकर नेहरू पार्क की ओर जाते समय बाईं ओर डललेक में बहुत ख़ूबसूरत हाउसबोटों की एक लम्बी कतार मिलती है। इन हाउसबोटों में टूरिस्ट रहते हैं। कुछ दूरी पर नेहरू पार्क दृष्टिगोचर होता है।

नेहरू पार्क

इस पार्क का नाम भारत के प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू के नाम पर रखा गया है। डललेक में ही स्थित यह बहुत ही सुहावना एक छोटा सा पार्क है। इस पार्क के साथ ही एक अच्छा होटल भी है। होटल की खिड़कियों से देखने पर रंग-बिरंगे बिजली के बल्बों से जगमगाते पार्क का दृश्य, झील के सुन्दर पानी और सामने के पहाड़ों का नज़ारा बरबस मन को मोहित कर लेता है। श्रीनगर के निवासी और टूरिस्ट शाम का समय प्राय: इसी पार्क में बिताते हैं। काश्मीर सरकार ने इस पार्क तक आसानी से पहुंचने के लिए बसें भी चालू कर दी हैं। ये बसें अमीराकदल से शाम को प्रतिदिन पांच बजे से रात को दस बजे तक चलती हैं।

नेहरू पार्क से आगे चलने पर महाराजा हरिसिंह का बहुत बड़ा और आलीशान महल दिखाई देता है। महल को देखने से पता चलता है कि सामन्तशाही ने काश्मीर के मेहनतकशों की मेहनत पर किस प्रकार आनन्द लूटे हैं और गुलछर्रे उड़ाये हैं। डललेक के चारों तरफ़ चश्मेसाही, निशात तथा शालीमार बाग हैं। इन बागों के बारे में आगे के अध्याय में विस्तार से बताया गया है। इन बागों के अलावा दो छोटी-छोटी पहाड़ियां भी दिखाई देती हैं। इनमें से एक शंकराचार्य या तख्ते सुलेमान के नाम से प्रसिद्ध है जो लगभग एक हज़ार फुट ऊंची है। दूसरी पहाड़ी का नाम हरिपर्वत है और यह ढाई सौ फुट की ऊंचाई पर है।

श्रीनगर में पांच बड़े-बड़े कालिज हैं। इनमें से एक अध्यापकों की शिक्षा का तथा एक महिलाओं का बड़ा कालिज भी है।

मुग़लों के बाग़

अपनी प्राकृतिक छटा के लिए काश्मीर विश्व भर में प्रसिद्ध है। इस प्राकृतिक छटा का एक महत्वपूर्ण अंग मुग़लों के बाग हैं।

मुग़ल बादशाहों ने सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में काश्मीर पर शासन किया था। यहां की स्वस्थ जलवायु तथा प्राकृतिक छटा ने उन्हें मोहित कर लिया था। दिल्ली और आगरा की गर्मी से बचने के लिए तथा काश्मीर का आनन्द उठाने के लिए मुग़ल बादशाहों ने ये बाग लगवाये। जैसा कि सभी जानते हैं मुग़ल बादशाह कला के प्रेमी थे। उन्होंने काश्मीर में ही नहीं बल्कि हिन्दुस्तान के अन्य भागों में भी अच्छी-अच्छी इमारतें बनवाईं तथा खूबसूरत बाग लगवाये।

कहा जाता है कि काश्मीर के इन बागों की योजना फ़ारस के कारीगरों की देन है। इन बागों में बारादरी को समतल तरीके से इस प्रकार बिछाया गया है कि ऊपर से पानी का बहाव एक समान रहे। इन बागों में सबसे मशहूर और सबसे अच्छे बाग श्रीनगर में डललेक के चारों ओर हैं। डलगेट से शिकारा लेकर जब आप इन बागों की सैर के लिए निकलेंगे तो सबसे पहले आपको चश्मेशाही नाम का छोटा सा खूबसूरत बाग मिलेगा।

चश्मेशाही

चश्मेशाही बाग चारों तरफ़ एक दीवार से घिरा हुआ है। इसका क्षेत्रफल केवल एक एकड़ है। इस छोटे से बाग में तीन बारादरियां बिछाई गयी हैं। बाग के दक्षिणी सिरे से चश्मा निकलता है जिसका पानी मोती की तरह साफ़ और बर्फ़ की तरह ठंडा है। कहा जाता है कि इस चश्मे का पानी काश्मीर का सबसे अच्छा पानी है। इस बाग की शोभा बढ़ाने के लिए इसमें तालाब, झरने और फव्वारे हैं। रंग-बिरंगे फूलों से बाग सजा हुआ है। यहां हमेशा ठंडी और

सुहावनी हवा चलती रहती है। चश्मेशाही में खड़े होकर डललेक की ओर देखने पर डल के केन्द्र में रूपालंक नामक एक द्वीप दिखाई देता है। रूपालंक पर सुलतान हसनशाह ने एक छोटा सा बंगला भी बनवाया था। सिखों के काल में यह बंगला नष्ट कर दिया गया।

चश्मेशाही को बादशाह शाहजहां ने बनवाया था। फ़ारसी के कवि की नीचे लिखी नज़म से इसकी तारीख का पता चल जाता है :

दोश दीदम निशस्ता बर कौसर
शाहे मर्दान अली जमजाही
गुफ़्तमश अस्सलाम गुफ़्त अलैक
गुफ़्त बरगू दिगर चि मी ख्वाही
गुफ़्तमश बहरे चश्मा तारीखे
गुफ़्त बरगूइ "कौसरेशाही"

[शायर कहता है "कल मैंने जन्नत के चश्मे (चश्मेशाही) पर शाह मर्दान अली को, जिसकी शान जमशेद जैसी थी, बैठा पाया। मैंने सलाम अर्ज किया। उन्होंने जवाब दिया और पूछा, "क्या चाहते हो?" मैंने कहा, "इस चश्मे की तारीख बता दीजिए।" वह बोले, "कहो शाही कौसर" (शाही कौसर के अक्षर मिलाने से १०४२ हिजरी यानी १६३२ ई० बनता है।]

निशात बाग

निशात बाग को बादशाह जहांगीर की रानी नूरजहां के भाई आसफ़जाह ने १६३० ई० में बनवाया था। इसके सम्बंध में एक फ़ारसी शायर की निम्नलिखित नज़म देखिये :

चूँ बागे निशात शुद शिगुफ़्ता,
अज़ यासमनो रैहानो गुलहा।
खुरशीदे जहानो आसफ़े दहर,
गुश्तर्द बिसातो खुर्द मुल्लहा।
दरगोशे नसीम गुफ़्त सालश,
गुलज़ारे निशातो ऐशे दिल हा।

[शायर निशात बाग के बारे में लिखता है, "जब निशात बाग यासमन, चमेली और गुलाब के फूलों से खिल उठा तो दुनिया के सूरज अर्थात् ज़माने के

आसफ़ (नूरजहां का भाई) ने इस बाग में फर्श बिछवाया और रंग-रंगेलियां मनानी शुरू कीं, तो सुबह की हवा के कान में चुपके से इसकी तारीख सुनाई दी, "निशात का बाग और दिलों की खुशी।" इस आखरी फिकरे से १०४४ हिजरी बनता है।]

निशात बाग ५९५ गज़ लम्बा और ३६० गज़ चौड़ा है, पत्थर और ईंटों की दीवार से यह चारों ओर घिरा हुआ है। इसमें बारह बारादरी हैं। सबसे ऊपर की बारादरी जनाना बारादरी कहलाती है।

बाग के केन्द्र में छोटे-छोटे तालाबों की एक कतार है जो १३ फुट चौड़ी और ८ इंच गहरी एक नहर से मिली हुई हैं। इन तालाबों व नहर में बहुत से फ़व्वारे हैं। दोनों ओर हरी-हरी घास के खूबसूरत मैदान हैं।

निशात बाग में प्रवेश करते ही बायीं तरफ़ एक मण्डप सा दिखाई देता है। यह एक दुमंजली इमारत है जो पत्थरों की नींव डाल कर लकड़ी और प्लासटर से बनाई गयी है। इसका नीचे का फ़र्श ५९ फुट लम्बा और ४८ फुट चौड़ा है, जो दोनों ओर लकड़ी की खूबसूरत खिड़कियों से घिरा हुआ है। इसके बाच में ३ फुट गहरा एक जलकुंड है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई १४ वर्ग फुट है। जलकुंड के बीच-बीच अनेकों फव्वारों की छटा देखते ही बनती है। इस मंडप की ऊपर की मंजिल में २३ फुट लम्बा और १४½ फुट चौड़ा एक कमरा है। इस कमरे से नीचे जलकुंड का दृश्य बड़ा सुहावना लगता है।

इसी तरह की दुमंजली इमारत बाग की सबसे ऊँची बारादरी के सिरे पर भी है। नीचे की बारादरी में भी १०३ फुट चौड़ा १२३ फुट लम्बा और तीन फुट गहरा एक जलकुंड है। इसमें लगभग २५ फव्वारे हैं। सबसे ऊंची बारादरी पर चिनारों के पेड़ अधिक हैं।

पूरा निशात बाग छोटे-छोटे वर्गाकार टुकड़ों में बंटा हुआ है। इन्हें देखने पर लगता है मानो इसके बनाने वाले कारीगरों ने प्रकृति की नकल करने की कोशिश नहीं की, केवल उसे अनुशासन में बांधने का प्रयत्न किया है।

प्रत्येक रविवार को श्रीनगर के निवासी तथा टूरिस्ट यहां आते हैं और चिनार वृक्षों की शीतल हवा, चिड़ियों के मधुर संगीत तथा फूलों की मादक सुगन्ध का आनन्द लेते हैं। किसी ऊँची बारादरी पर खड़े होकर नीचे वाली बारादरियों को देखने पर हरे फ़र्श पर रंग-बिरंगे फूलों और पानी के फव्वारों का दृष्य देखते आंखें नहीं अघातीं।

शालिमार

डललेक के उत्तर पूर्वी किनारे पर शालीमार बाग स्थित है। प्राचीन लोक कथा के अनुसार श्रीनगर की नींव डालने वाले राजा प्रवर्सेन द्वितीय ने डललेक के सिरे पर 'शालिमार' के नाम का एक घर बनवाया था। शालिमार का संस्कृत में अर्थ है, "प्रेम-निकेतन"। राजा प्रवर्सेन द्वितीय हारवन के निकट एक ऋषि से मिलने जाया करते थे। रास्ते में वे प्रायः इसी घर में आराम करते थे। कुछ समय पश्चात् यह घर नष्ट हो गया और इसके आसपास जो गांव बस गया उसका नाम शालिमार पड़ गया।

१६१९ ई० में मुगल बादशाह जहांगीर ने शालीमार बाग बनवाया। वह इसे "फ़रहतबख्श" अर्थात् प्रसन्नयुक्त कहा करते थे। एक फ़ारसी शायर ने इसका नाम "फ़रतगाहे शाही" रखा जिसके अक्षर मिलाने से १०३१ हिजरी अर्थात् १६२१ ई० बनता है। इस शायर की नज़म यह है:

"चुसुद आरास्ता बागे फ़रह बख्श,
ब हुक्मे हजरते जिल्ले इलाही।
शहंशाहे शाहानशाहे जहांगीर,
कि मशहूर अस्त अज माहताब माही।
पये तारीखे ईं गुलजारे रैहान,
ख़िरद फ़रमूद "फ़रहत गाहे शाही।"

[शायर कहता है : अक़्ल ने इस फूलों भरे बाग के बारे में कहा, "जब हज़रते ज़िले इलाही अर्थात् जहांगीर के हुक्म से फ़रहतबख्श बाग सज गया तो बादशाहों के बादशाह जहांगीर, जिसका नाम जमीन से आसमान तक मशहूर है, उसी ने यह फूलों भरा बाग लगवाया।]

शालीमार बाग को एक मील लम्बी और बारह गज़ चौड़ी एक नहर डललेक से मिलाती है। यह बाग ५१० गज लम्बा और नीचे की तरफ़ २०७ गज चौड़ा है। ऊपर की तरफ़ इसकी चौड़ाई लगभग २६७ गज़ है। शालिमार बाग ईंट व पत्थर की बनी दस फुट ऊंची एक दीवार से घिरा हुआ है। बाग के बीच में छोटे-छोटे तालाबों की एक कतार है। इन तालाबों को १८ इंच गहरी और ९ गज से १४ गज चौड़ी नहर एक-दूसरे से जोड़ती है।

पूरे बाग में चार बारादरी हैं। विस्तार में ये लगभग एक-दूसरे के बराबर हैं। कहा जाता है कि सबसे ऊपर की अर्थात् चौथी बारादरी बाग का एक ऐसा

हिस्सा है जिसमें मुग़ल बादशाहों की 'हरम' की स्त्रियां रहती थीं। बाग के बीच में एक मण्डप है, जिसकी छत २० फुट ऊँची है। यह चारों तरफ़ एक तालाब से घिरा हुआ है जिसमें लगभग १४० फव्वारे हैं।

प्रत्येक रविवार को इस बाग में भी टूरिस्टों और श्रीनगर निवासियों की अच्छी खासी भीड़ रहती है।

नसीम बाग

डललेक से आध मील की दूरी पर नसीम बाग है। नसीम बाग को मुग़ल बादशाह शाहजहां ने बनवाया था। चिनार के सैकड़ों छायादार वृक्ष इस बाग की शोभा बढ़ाते हैं। एक फ़ारसी शायर की नीचे लिखी नज़म देखिए :

दर जहां चूँ ब हुक्मे शाहेजहां,
दाहवे ताजा अज़ नईम आमद।
कर्द गुलगश्ते आं चु शाहेजहां,
बुल बुल अज़ शाखे गुल कलीम आमद।
गुफ़्त तारीखे दाहुवे शाही,
अज़ बहिश्ते अदन नसीम आमद।

[शाहजहां के हुक्म से जब इस देश में यह ताजा बाग तैयार हुआ और जब शाहजहां इस बाग में सैर कर रहे थे तो एक टहनी पर बैठी हुई बुलबुल ने कहा, "इस बाग के बनाने की तारीख यदि पूछते हो तो सुन लो कि अदन के बहिश्त से एक भीनी-भीनी आवाज़ चली। (अबजद के हिसाब से 'अज़ बहिश्ते अदन नसीम आमद' के अक्षर मिलाने से १०४५ हिजरी अर्थात् १६३५ ई० बनता है।]

इस बाग का वातावरण बड़ा ही शान्तिमय है और यहां की प्राकृतिक सुन्दरता में अनोखा आकर्षण है।

अच्छबल बाग

अनन्त नाग से सात मील दूर एक और मशहूर बाग अच्छबल बाग है। इस बाग को शाहजहां की बेटी बेगम जहांनारा ने १६४० ई० में बनवाया था। वह स्थान पहले बेगमाबाद या साहिबाबाद भी कहलाता था।

अच्छबल बाग ४६७ फुट लम्बा और ४५ फुट चौड़ा है। दूसरे बागों की तरह यह भी चारों ओर से पत्थर की एक दीवार से घिरा हुआ है। यह

बाग दो भागों में बंटा हुआ है जिसमें चिनार तथा फलों से लदे दूसरे अनेक वृक्ष हैं। यहां के फूलों की क्यारियां देखते ही बनती हैं।

अच्छबल बाग के पानी के चश्मे के बारे में कहा जाता है कि यह ब्रंगी नदी का ही एक भाग है। ब्रंगी नदी का पाना देवल गाम के पास चूने के पत्थरों में कहीं गायब हो जाता है, और फिर अच्छबल बाग में इस चश्मे के रूप में प्रकट होता है। बरनियर ने भी, जो पन्द्रहवीं शताब्दी में यहां आया था, इस चश्मे को ब्रंगी नदी का ही एक हिस्सा माना है।

इस चश्मे का पानी तीन नहरों के द्वारा बाग में जाता है। बीच की नहर लगभग १६ फुट चौड़ी है। बीच की नहर में ही दो तालाब भी हैं। इन तालाबों में अनेकों फव्वारे हैं। बाग के ऊपरी भाग में तीन झरने भ। हैं।

इस बाग के एक ओर प्राचीन हमाम (एक प्रकार का टर्किश स्नानगृह) के खन्डहर भी हैं। इस बाग में प्राचीन इमारतें भी थीं, जो अब तक नष्ट हो गयी हैं।

इसी बाग के दूसरी तरफ़ ट्राउट मछलियों का कुंड है। इन मछलियों की सरकारी तौर पर हिफाजत होती है। कहा जाता है कि इस मछली को पकड़ना आसान नहीं होता, वह बड़ी चालाक होती है। पर दुनिया की लगभग सब मछलियों से अधिक स्वादिष्ट होती है। काश्मीर में ऐसे बहुत से स्थान हैं जहां इन मछलियों का शिकार किया जाता है। ट्राउट मछलियों को पकड़ने के लिए श्रीनगर से सरकारी परमिट लेनी पड़ती है।

वेरीनाग

अनन्त नाग से १६ मील की दूरी पर और बनिहाल दर्रे के नीचे वेरीनाग गांव है। यहां भी एक चश्मा और बाग है। इस बाग को १६१५ ई० में जहांगीर ने लगवाया था।

इस चश्मे के पानी को चारों तरफ दीवार उठा कर एक तालाब में इकट्ठा कर लिया गया है। यह तालाब ५४ फुट गहरा है और ट्राउट मछलियों से भरा हुआ है। यही झेलम नदी का उद्गम स्थान है।

काश्मीर के प्राचीन स्मरण चिन्ह

काश्मीर प्राचीन-काल से ही कला व संस्कृति का केन्द्र रहा है। यहां के प्राचीन स्मारक चिन्हों को देखने से यह पता चलता है कि उस समय की निर्माण कला भी बहुत ऊंचे दर्जे की रही होगी। प्राचीनकाल के इस निर्माण कला के नमूने की अनेकों इमारतों से यह काश्मीर देश भरा पड़ा है।

इतिहास के प्रारम्भिक काल से ही काश्मीर की निर्माण कला का दृश्य हमें दृष्टिगोचर होता है। कुशान साम्राज्य में अर्थात तीसरी शताब्दी के लगभग हम ऐसे दो बौद्ध स्मारक चिन्हों को पाते हैं जो उष्कुर और हारवन पर स्थित हैं। उष्कुर को हविष्कपुरा के नाम से कुशान राजा हविष्क ने तीसरी सदी में बनवाया था। हार्वन एक अजीब तरह का स्मारक चिन्ह है, जो शालिमार बाग से तीन मील की दूरी पर स्थित है।

इन दोनों स्मारक-चिन्हों को देखने से यह पता चलता है कि ये अन्य प्राचीन बौद्ध इमारतों और मठों की तरह ही बने हुए हैं और गान्धार व उत्तर पश्चिमी क्षेत्र के बौद्ध आन्दोलन से प्रभावित हैं। इन इमारतों में गान्धार की इमारतों की ही नकल की गई है। उस समय काश्मीर का पेशावर, तक्षशिला तथा काबुल से राजनैतिक संबंध था।

काश्मीर की निर्माण-कला के इतिहास की जब हम खोज करते हैं तो हमें पता चलता है कि इसका सबसे सुनहरा काल कारकोट साम्राज्य के समय में था जबकि काश्मीर दुनिया के एक शक्तिशाली राज्यों में गिना जाता था। राजा ललितादित्य के समय में काश्मीर की निर्माण कला ने बहुत प्रगति की। ललितादित्य के बारे में हम यह बता चुके हैं कि उसने आक्रमण करके लगभग पूरे उत्तरी हिन्दुस्तान, अफ़ग़ानिस्तान तथा मध्य एशिया आदि देशों को अपने अधीन कर लिया था। इसलिए उसके दरबार में देश-विदेश के मशहूर कलाकार थे।

चीन और रोम तक के कलाकार उसके दरबार में मौजूद थे। लगभग सभी बड़े बड़े मन्दिरों को उसने बनवाया और ये मन्दिर अभी तक अपनी नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में काश्मीर में मौजूद हैं।

मार्तण्ड

अनन्तनाग से चार मील की दूरी पर मार्तण्ड के मन्दिर के खण्डरात हैं। काश्मीर के प्राचीन भग्नावशेषों में यह सबसे बड़ा और प्रभावशाली है। कहा जाता है कि इसे राजा रामदेव ने (३००५-२९३६ ई० पू० में) जवाहरात जड़े कीमती पत्थरों से बनवाया था। इसके कुछ पत्थर ६ फुट से ९ फुट तक लम्बे हैं। कुछ ऐतिहासिक कहते हैं कि बाद में राजा ललितादित्य ने अपने बेहतरीन कारीगरों से इसका निर्माण कराया।

अवन्तीपुर के मन्दिर

मार्तण्ड की ही तरह श्रीनगर से १९ मील की दूरी पर झेलम के दाहिने किनारे अवन्तीपुर में मन्दिरों के खंडरात हैं। कहा जाता है कि अवन्तीपुर को राजा अवन्तीवर्मन ने बसाया था, और उन्होंने ही इस स्थान पर दो मन्दिरों का निर्माण किया। एक विष्णु भगवान का मन्दिर था जिसे "अवन्ती स्वामिन" कहा जाता था और दूसरा शिव मन्दिर जिसे अवन्तीश्वर के नाम से पुकारा जाता था। काश्मीर के अन्य स्मारक-चिन्हों की तरह ये मन्दिर भी चूने और पत्थर से बने हुए हैं। इन दोनों मन्दिरों को देखने से हमें राजा अवन्तीवर्मन के काल की निर्माण-कला का बोध होता है, जिसकी प्रत्येक दर्शक सराहना करता है।

पट्टन के मन्दिर

श्रीनगर से १७ मील की दूरी पर दो शिव मन्दिर के खंडहर स्थित हैं। इन मन्दिरों को राजा शंकरवर्मन (८८३–९०२ ई०) ने बनवाया था जिससे हमें दसवीं शताब्दी की निर्माण-कला का ज्ञान होता है। बड़े-बड़े पत्थर इनके बनाने के काम में लाये गये हैं, और ललितादित्य द्वारा बनाये गये मार्तण्ड की ही निर्माण-कला काम में लाई गई है।

पांद्रेठन का मन्दिर

श्रीनगर से चार मील की दूरी पर एक और विष्णु के मन्दिर के खंडरात हैं जिसे राजा पार्थ (९०६–९२१ ई०) के प्रधान मंत्री भारवाहन ने बनवाया

था। यह भी एक प्राचीन मंदिर है जिसके केन्द्र में एक तालाब है और चिनार के वृक्षों से घिरा हुआ है। कहा जाता है कि यह वही स्थान है जहां सम्राट अशोक ने श्रीनगरी नामक शहर को बसाया था।

शंकराचार्य या तख़्ते सुलेमान

श्रीनगर पहुंचते ही सबसे पहले प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान शंकराचार्य मंदिर की ओर आकर्षित होता है। यह एक हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित है। पं० आनन्द कौल के अनुसार शंकराचार्य को राजा संधीमत ने बनवाया था। कहा जाता है कि इस राजा ने २६२९ से २५६४ ई० पूर्व तक काश्मीर पर शासन किया था। उसके बाद राजा गोपादित्य तथा ललितादित्य ने इसकी मरम्मत कराई। शंकराचार्य तक पहुंचने के लिए पत्थर की सीढ़ियां बनी हुई हैं। यह भी हिन्दुओं का पवित्र स्थान है, जहां प्रतिवर्ष रक्षाबंधन के दिन एक बहुत बड़ा मेला लगता है।

परसपुर के मन्दिर

गान्धरबल से आठ मील पश्चिम की तरफ़ परसपुर के मन्दिरों के खंडरात हैं। प्राचीन काल में इसे परिहासपुर के नाम से पुकारा जाता था जिसे राजा ललितादित्य ने बसाया था। यहां पर भी कई मंदिरों का निर्माण किया गया था, परन्तु अब वे खंडरात के रूप में ही पड़े हुए हैं। कहा जाता है कि ललितादित्य की मृत्यु के बाद राजा शंकरवर्मन ने पट्टन में अपने मन्दिर बनाने में इन्हीं मंदिरों की समग्री का उपयोग किया।

पुरातन मन्दिरों के और भी स्मारक चिन्ह हैं, जिनका ब्यौरा विस्तार से यहां देना सम्भव नहीं है।

हिन्दुओं के तीर्थ-स्थान

क्षीर भवानी

गान्धरबल से दो मील की दूरी पर तुलमुल का मंदिर है जिसमें देवी क्षीरभवानी की पूजा होती है। इस मंदिर में एक चश्मा है, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह रंग बदलता है। जेठ शुक्ला अष्टमी को यहां एक मेला लगता है।

कपाल मोचन

श्रीनगर से २४ मील की दूरी पर शुपियान के पास हिन्दुओं का पवित्र स्थान है। यहां तीन चश्मे हैं; यहां भी सावन अर्थात जुलाई-अगस्त में एक तीर्थ लगता है। इस स्थान पर हिन्दू अपने मृतक व्यक्तियों का श्राद्ध करते हैं।

खिव

श्रीनगर से १५ मील की दूरी पर खिव नामक छोटे से गांव में ज्वाला मुखी का पवित्र स्थान है। यहां भी अषाढ़ यानी जून-जुलाई में प्रतिवर्ष एक मेला होता है। हिन्दू यात्री यहां तीर्थाटन करने आते हैं।

शारदा

श्रीनगर से ७४ मील की दूरी पर शारदा नामक हिन्दुओं का पवित्र मंदिर है। इस मंदिर में दुर्गा देवी की पूजा होती है। प्राचीन काल में यह मंदिर सर्वश्रेष्ठ तीर्थ-स्थान माना जाता था; परन्तु काफ़ी दिनों से इसकी लोक-प्रियता कम हो गयी है।

गंगाबल

श्रीनगर से ३४ मील की दूरी पर सोनामर्ग के रास्ते सिन्धवैली में एक खूबसूरत स्थान गंगाबल की झील है। यह चारों तरफ़ पहाड़ों से घिरी हुई है। कहा जाता है कि पवित्र गंगा नदी यहीं से निकली थी। इसलिए हिन्दू अपने मृतक सम्बंधियों की अस्थियां इस गंगा में बहाते हैं और उनका श्राद्ध भी करते हैं। सितम्बर-अक्तूबर के महीने में यहां यात्री आते हैं।

हिन्दू काल की निर्माण-कला के ये स्मारकचिह्न एवं तीर्थ-स्थान हमें प्राचीन संस्कृति के इतिहास को समझने में सहायक होते हैं।

मुस्लिम काल के स्मारक-चिन्ह

मुसलमान बादशाहों के शासन काल की इमारतों को हम आसानी से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) मुगलों के शासन-काल से पहले बनी हुई इमारतें और (२) मुगलों के समय की इमारतें।

मुगलों के शासन काल के शुरू होने से पहले मुसलमानों की बहुत कम इमारतें थीं। श्रीनगर में झेलम के चौथे पुल अथवा ज़ैनाकदल के पास ज़ैनुल आबदीन की माता का मकबरा है। ज़ैनुल-आबदीन की माता बादशाह सिकन्दर

बुतशिकन की पत्नी थीं। कहा जाता है कि यह इमारत तुर्किस्तान के नमूने पर बनी हुई है।

श्रीनगर में एक दूसरी इमारत 'मदनी का मकबरा' है जिसमें टाइलों का काम बहुत अच्छा है। मदनी के मक़बरे को चमकीले रंगों में टाइल के वर्गाकार टुकड़ों में बनाया गया है। इस इमारत की तारीख के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि यह मदनी की मसजिद के साथ ही १४४४ ई० में बनी होगी।

हिन्दू शासन के बाद पत्थरों की इमारतों का बनाना धीरे-धीरे समाप्त हो गया। मुसलमानों के काल में लकड़ी की इमारतें बनना प्रारम्भ हो गयीं। श्रीनगर में कुछ ऐसी इमारतें हैं जो लकड़ी की बनी हुई हैं। मदनी की मसजिद भी लकड़ी की बनी हुई है।

शाह हमदान

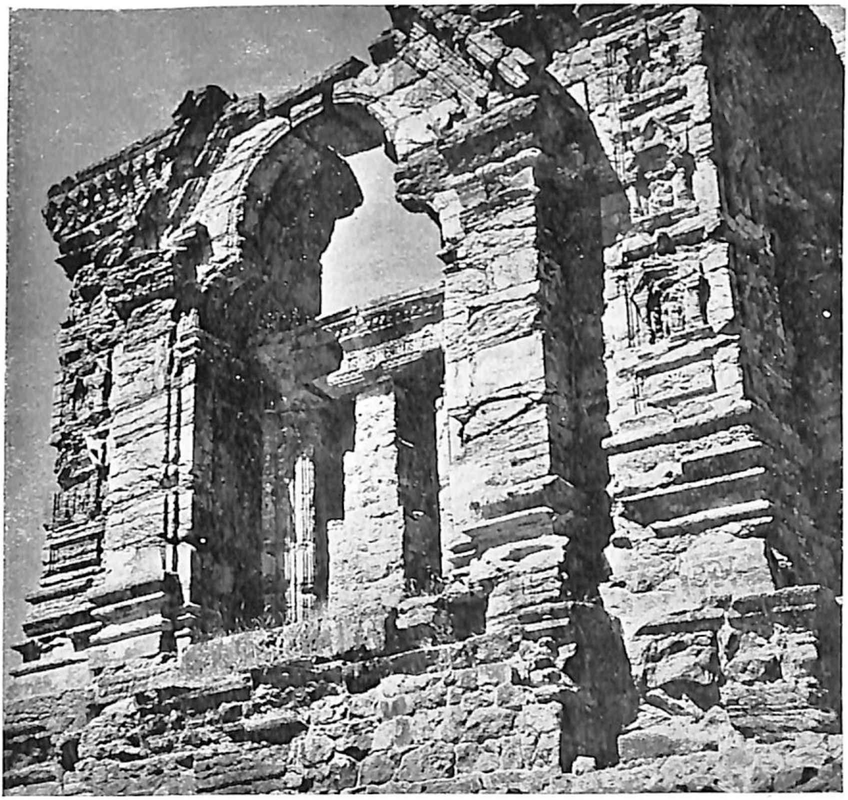
दूसरी इमारत जिसमें लकड़ी का सबसे अधिक काम है, शाह हमदान की खानकाह है। यह इमारत मदनी की मसजिद और पामपुर में बनी हुई मसजिद की तरह ही है, जो प्राचीन निर्माण-कला के आधार पर बनी हुई है।

शाह-हमदान की मसजिद श्रीनगर में तीसरे और चौथे पुल के लगभग बीच में स्थित है। यह खुरासान के संत शाह-हमदान की याद में बनाई गयी थी। शाह-हमदान सुल्तान कुतुबुद्दीन के शासन काल में काश्मीर आये थे।

१४७९ ई० में आग से जल जाने के बाद इसे सुल्तान हसनशाह ने बनवाया। १७३१ ई० में दुबारा जलने के बाद अबुल बरकत खां ने इसका निर्माण किया। इसके बारे में यह भी कहा जाता है कि जब सिख गवर्नर ने इस मसजिद को तोड़ने की आज्ञा दी तो पं० बीरबलधर ने ही इस मसजिद की रक्षा की थी, जिससे पता चलता है कि आम हिन्दू व मुसलमान जनता में कितना प्रेम था और वे एक-दूसरे के धर्म की कितनी इज्जत करते थे!

जामा मसजिद

श्रीनगर की जामा मसजिद को १४०४ ई० में बादशाह सिकन्दर ने बनवाया था। इसका इतिहास भी बड़ा दिलचस्प है। यह तीन बार आग लगने से नष्ट हो गयी। नष्ट होने के दूसरी बार १६१९ ई० में इसे जहांगीर ने बनवाया और उसके बाद १६७४ ई० में औरंगजेब ने उसे मौजूदा ढांचे में खड़ा कर दिया। सिखों के ज़माने में २३ वर्ष तक इसे बंद रखा गया; परन्तु सिखों के



मार्तण्ड के ऐतिहासिक मन्दिर का मुख्य द्वार ।

गवर्नर गुलाम मुहीउद्दीन ने १८४१ ई० में इसे फिर खुलवा दिया। कहा जाता है कि बौद्ध धर्म के लोग भी जामामसज़िद को अपना पवित्र स्थान समझते हैं और अभी तक बौद्ध कभी-कभी लद्दाख से इसके दर्शन के लिए आते हैं। इसका कारण यह है कि जामा मसज़िद तथा शाह-हमदान की इमारत का नमूना बौद्ध मठों जैसा ही है। सम्भव है यह पहले कभी बौद्ध विहार रहे हों।

मुगलों की इमारतें

मुगलों के समय की सबसे प्राचीन इमारत श्रीनगर में हरिपर्वत के चारों ओर की दीवार है, जिसे बादशाह अकबर ने बनवाया था। इसके एक दरवाज़े का रास्ता तो अभी तक अपनी अच्छी दशा में है परन्तु दीवार कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो गयी है।

जहांगीर के समय में नूरजहां ने पत्थर मसज़िद बनवायी, जिसका वर्णन अन्यत्र किया गया है।

मुगलों की निर्माण कला के आदर्श श्रीनगर में मुगलों के बाग़ हैं। ये बाग़ जहांगीर और शाहजहां के समय में बनाये गये थे।

काश्मीर में मुगलों की इमारतों और बाग़ों को देखकर यह पता चलता है कि इनका बनाने का तरीका मुगलों की दिल्ली, आगरा तथा लाहौर की इमारतों की तरह का ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि काश्मीर की इमारतों में अधिकतर चूने के पत्थर का प्रयोग किया गया है, किन्तु बाहर की इमारतों में संगमरमर (सफ़ेद पत्थर) का प्रयोग किया गया है।

उपरोक्त इमारतों के अलावा श्रीनगर में डललेक के दक्षिणी किनारे पर "परी महल" के खंडरात हैं। कहा जाता है कि इसे शाहजादा दारा शिकोह ने अपने अध्यापक मुल्लाशाह के लिए बनवाया था। एक समय यहां ज्योतिष शास्त्र का स्कूल था।

डललेक के किनारे मुसलमानों का एक पवित्र स्थान हजरतबल है। यहां प्रत्येक शुक्रवार को श्रीनगर तथा उसके आस-पास के गांव के लोग नमाज़ पढ़ने आते हैं।

कला और दस्तकारी

काश्मीर सदियों से कला व दस्तकारी का केन्द्र रहा है। यहां के कारीगर मिट्टी, कागज़, रेशम तथा ऊन से भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएं तैयार करते हैं। काश्मीरी शाल तो दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं।

१३९८ ई० में सुल्तान सिकन्दर काश्मीर पर शासन करता था। इसी समय तैमूर ने भी भारत पर आक्रमण किया। कहा जाता है कि सुल्तान सिकन्दर ने अपने लड़के ज़ैनुल-आबदीन को तैमूर के पास समरकन्द भेज दिया था। तैमूर ने सिकन्दर के लड़के को नज़रबंद कर लिया। परन्तु उसे शहर में घूमने की पूरी आज़ादी दे दी। उस समय तैमूर समरकन्द को कला व दस्तकारी का एक बड़ा केन्द्र बनाने का प्रयत्न कर रहा था। और इसी कारण वह जिन देशों पर विजय प्राप्त करता था वहां से सबसे अच्छे कलाकारों और दस्तकारों को अपने देश में ले आता था। इस तरह जैनुल-आबदीन को एशिया के भिन्न-भिन्न हिस्सों की दस्तकारी का ज्ञान हो गया। १४०५ ई० में तैमूर की मृत्यु के बाद वह बहुत से शिल्पकारों को अपने साथ काश्मीर ले आया। ज़ैनुल-आबदीन ने इन शिल्पकारों को ज़मीन तथा अच्छा वेतन देकर काश्मीर में ही बसा दिया। इतना ही नहीं, जैनुल-आबदीन ने अपने शासन काल में अरब और फ़ारस से ऐसे शिल्पकारों को भी बुलाया, जिनकी कला व दस्तकारी की ख्याति विश्व में फैली हुई थी। इस तरह से १४७० ई० में ज़ैनुल-आबदीन की मृत्यु के समय तक काश्मीर में कला व दस्तकारी के उद्योग धंधे मज़बूती के साथ कायम हो गये थे, जो आज तक कायम हैं। यहां के दस्तकारों को सामन्तवादी शासन में अनेकों मुसीबतों का सामना करना पड़ा है, मशीन के आविष्कार से उन्हें गरीबी में दिन काटने पड़े हैं। बड़े बड़े ठेकेदारों के हाथ उन्हें अपनी अनमोल कारीगरी और मेहनत को चंद पैसों में ही बेचना पड़ा है। आज भी

यद्यपि इनकी हालत ज्यादा अच्छी नहीं है और इन्हें अपने श्रम की पूरी मज़दूरी नहीं मिल पाती, परन्तु इतना अवश्य है कि सामन्तवादी शासन के मुकाबले आज इनकी आर्थिक दशा बहुत सुधरी है। मौजूदा काश्मीर सरकार का ध्यान इनकी तरफ़ आकर्षित हुआ है। कहना यह है कि मुसीबतों के बावजूद यहां के कारीगरों ने अपनी दस्तकारी को नहीं छोड़ा।

कागज़ की दस्तकारी

काश्मीर में प्रारम्भ से ही कागज़ की दस्तकारी फलती फूलती रही है। कागज़ से कलमदान, ट्रे, सन्दूक, शैल्फ आदि अन्य छोटी-छोटी वस्तुएं बनाई जाती हैं। इनके अलावा खूबसूरत ज़ेवरात के सन्दूक, रंगीन मेज लैम्प, खिलौने, छोटी-छोटी नौकाएं तथा वृक्ष आदि प्राकृतिक वस्तुओं को ये कारीगर इस खूबी से बनाते हैं कि मनुष्य आश्चर्य में पड़ जाता है। इन चीजों के बनाने में शिल्पकार कई प्रकार का रंग प्रयोग में लाता है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में ये रंग समरकन्द और यारकन्द से मंगाये जाते थे।

१८२३ ई० में कागज़ की दस्तकारी कुछ अवनत दशा में थी। उस समय की हालत का वर्णन करते हुए मूरक्राफ्ट ने लिखा है कि, "प्राचीन काल में इस उद्योग में बहुत से कारीगर काम करते थे; परन्तु अब इस शिल्प को जानने वाले कुल चालीस ही शिल्पकार रह गये हैं जो एक साल में एक हजार कलमदान तैयार करते हैं"।

कागज की दस्तकारी को 'कारी कलमदारी' या 'कुमानगिरि' के नाम से पुकारा जाता है और इसके कारीगर आजकल श्रीनगर के कमान्गरपुर मुहल्ले में रहते हैं। ये अपने आपको उन फारस के कारीगरों के वंशज बताते हैं, जो प्राचीन काल में इस कला को विदेश से लाये थे।

लकड़ी का काम

कागज़ की तरह लकड़ी से भी तरह-तरह की चीजें बनाई जाती हैं। यह भी काश्मीर की एक प्राचीन दस्तकारी है।

काश्मीर में चारों तरफ़ जंगल ही जंगल है। जहां अच्छी किस्म की लकड़ी प्राप्य है। इसी लकड़ी से यहां भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएं तैयार की जाती हैं। लकड़ी को काटकर उस पर रोगन करके ज़ेवरात के डिब्बे, फूलदान, ट्रे, सिगरेट बक्स आदि अनेक चीजें बनाई जाती हैं। इमारतों में भी यहां लकड़ी का ही अधिक प्रयोग किया जाता है।

धातु का काम

एक और महत्वशाली दस्तकारी धातु की बनी हुई चीजें हैं। मुगलों के समय में धातु से तलवार आदि हथियार बनाए जाते थे; परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी से धातु का काम करनेवाले कारीगरों ने चांदी, तांबे तथा पीतल आदि से तरह तरह के बर्तन बनाने शुरू कर दिये।

चांदी के बर्तन तथा अन्य चीजों पर बेलबूटे काढ़ना काश्मीरियों की एक विशिष्ठ कला है। इनमें से सन्दूक, प्यालियां, सुराही आदि आज लोकप्रिय बन गये हैं। इन बर्तनों पर चिनार की पत्तियों तथा कमल के फूलों से कढ़े हुए बेल बूटे कला का उत्तम नमूना हैं।

तांबे से भी यहां बहुत बर्तन बनाए जाते हैं। कहा जाता है कि काश्मीर में तांबे का काम विशेषकर तिब्बत के बौद्धों की नकल है। परन्तु इसलाम के ज़माने की कला ने उसे और आकर्षित बना दिया है। इससे तश्तरियां तथा समावार आदि बनाए जाते हैं।

समावार

समावार के बारे में यह कहा जाता है कि यह रूस के एक राज्य ताजकिस्तान की देन है। काश्मीरी मुसलमान तांबे का बना हुआ समावार प्रयोग करते हैं और काश्मीरी पंडित पीतल का। दोनों समावार लगभग एक से होते हैं। काश्मीरी लोग अपने पूरे खानदान के लिए इस समावार में आसानी से चाय तैयार कर लेते हैं।

समावार एक ऐसा बर्तन है जिसके बीच में एक नली होती है। इसमें कोयला भर दिया जाता है। और नली के बाहर चारों ओर पानी भर देते हैं। कुछ देर के बाद कहवा या चाय तैयार हो जाती है। सर्द देश में रहने के कारण काश्मीरी चाय के आदी हैं। यहां कोई ऐसा घर न होगा, जिसके यहां समावार न हो। चाय तो उनके लिए अन्य खाद्य की ही तरह आवश्यक वस्तु है।

कांगड़ी

समावार के प्रसंग के साथ ही काश्मीर की एक विशेष ईजाद कांगड़ी की याद आती है। वर्ष के अधिक हिस्से में काश्मीर में सर्दी पड़ती है। जाड़ा तो बहुत ही शिद्दत का होता है। अतः उससे बचने के लिए काश्मीरी मस्तिष्क ने इस निराले अंगीठी जैसे साधन का निर्माण किया है।

कांगड़ी वेंत की छोटी शाखों और मिट्टी के गोल बर्तन 'कोण्डल' से बनता है। मिट्टी की कोण्डल के चारों ओर वेंत का फ्रेम-सा बना होता है। जिसके सहारे कोण्डल, जिसमें अंगारे रखे रहते हैं, हाथों से उठाया जाता है।

सदियों से यह प्रदेश सामन्तशाही के पंजे तले दरिद्रता की चक्की में पिसता आया है। ऐसी अवस्था में गरीबों को अच्छे मकान, बढ़िया हमाम और अंगीठियां कहां से मिलतीं। किन्तु गरीब को भी आखिर जीवन-यापन करना था तो उसने कम खर्चीली और इधर से उधर ले सकने योग्य हल्की कांगड़ी का प्रचलन किया। यहां एक ग़लत धारणा का खण्डन करना भी आवश्यक है कि कांगड़ी गले में पहनी नहीं जाती, हाथों से थामी जाती है।

रेशम

रेशम का उद्योग धंधा तो काश्मीर में पुराने ज़माने से चला आता है। कहते हैं, जब यूनानी सभ्यता अपने शिखर पर थी तो काश्मीर का बैकटीरिया से राजनैतिक तथा व्यापारिक संबंध था। वहां कच्ची रेशम काश्मीर से ही भेजी जाती थी। मध्यवर्तीय काल में इस उद्योग धंधे को प्रोत्साहन न मिला, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी से इस उद्योग-धंधे में यहां के व्यापारियों की दिलचस्पी अधिक बढ़ने लगी। आजकल काश्मीर में विभिन्न प्रकार की रेशम जैसे ट्वीड़, शिफ़ोन तथा पैराशयूट आदि बड़े पैमाने पर तैयार की जाती है।

यहां के शिलपकारों ने रेशम के टुकड़ों व अन्य वस्तुओं को अपने बेलबूटे के काम से और भी सुन्दर बना दिया है।

काश्मीर कसीदाकारी के लिए विश्व में प्रसिद्ध है। यह काम रेशम या ऊन के तार से किया जाता है। इसके कई प्रकार हैं—यथा रफगरी, जालक दूज़ी, चिकनदूजी, तथा तिले का काम आदि आदि। बेलबूटों का यह काम क़रने वाले शिलपकार प्रायः श्रीनगर में ही रहते हैं।

दरी बनाना

काश्मीर में दरी बनाने की कला फ़ारस और टर्की की देन है जो प्राचीन काल से ही दुनिया में मशहूर है। काश्मीर की दरियों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं (१) गब्बा (२) नमदा (३) ऊनी दरियां (कालीन आदि)।

गब्बा और नमदा

गब्बा और नमदा को देखने से यहां के कलाकारों के कलात्मक मस्तिष्क और उनकी मेहनत का खूब परिचय मिलता है। ये चीज़ें प्रायः फ़र्श पर बिछाने

के काम में लाई जाती हैं। गब्बा ऊनी चादर या कम्बल के टुकड़ों से बनाया जाता है। बहुत से रंगों का पच्चीकारी का काम बहुत ही सुहावना लगता है। कहा जाता है कि अच्छा गब्बा चालीस वर्ष तक काम दे सकता है। गब्बा-उद्योग का केन्द्र श्रीनगर से ३४ मील दूर अनन्तनाग में है। नमदे श्रीनगर में ही बनाये जाते हैं।

ऊनी दरियां

बेलबूटों के काम की ये दरियां कालीन या गलीचा कहलाती हैं। काश्मीर और हिन्दुस्तान का धनी वर्ग इनका अधिक प्रयोग करता है। मुगलों के ज़माने से ही इस प्रकार की दरियां बहुत बनने लगी थीं। १८७० ई० में अंग्रेज और फ्रांसीसी व्यापारियों ने काश्मीर में इन दरियों का एक उद्योग-धंधा कायम किया।

आजकल काश्मीर में दरियों का उद्योग-धंधा अच्छे पैमाने पर चलने लगा है। प्रायः सर्दी के दिनों में घर पर बैठे हुए लोग हाथ करघे पर दरियां बुनने का काम करते हैं।

गलीचों और कालीनों के अलावा यहां लोग ऊनी कम्बल (लोइयां) तथा पश्मीना बुनते हैं।

काश्मीरी शाल

विश्व में काश्मीर अगर अपनी प्राकृतिक सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है तो काश्मीरी शाल ने उसे कम ख्याति नहीं दी है।

काश्मीरी शाल के उद्योग के बारे में कहा जाता है कि यह उतना ही पुराना है जितना रामायण व महाभारत। एक फ्राँसीसी लेखक ने लिखा है, "यह अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि यह (शाल-उद्योग) वर्तमान सभ्यता की देन है। भारतीय शाल की तारीख चार हजार वर्ष पुरानी है। एशिया में शाल का एकाधिपत्य था। भारतवर्ष में शाल ज़मीन के जानवरों अर्थात भेड़, अन्गोरा, किरमान और तिब्बत की बकरियों और बोखारा के ऊंटों के क़ीमती ऊन से तैयार किये जाते थे।" (इनसाइड काश्मीर पृष्ठ ७४)

काश्मीर की ऐतिहासिक खोज के आधार पर हम कह सकते हैं कि ज़ैनुल आबदीन (१४२०–१४७०) ने इस उद्योग को काश्मीर में सुचारू रूप से संगठित किया। कहा जाता है कि उन्होंने तुर्किस्तान के बुनकरों को बुलाकर शाल बनाने के काम में लगाया। वर्तमान शाल के बनाने की टेकनीक अवश्य फारस और मध्य एशिया की देन है।

काश्मीर के शाल-उद्योग के बारे में मूरक्राफ्ट ने गूढ़ अध्ययन किया था। उन्होंने १८२० व १८२३ ई० के बीच इस उद्योग पर जो कुछ लिखा है, उसका सारांश हम यहां देते हैं—

"शाल बनाने वालों में पहला समूह महिलाओं का होता था, जो अपने घरों में ही काम करती थीं। इन महिलाओं को कच्चा माल सुपुर्द किया जाता था, जो बढ़िया घटिया और निकृष्ट ऊन को अलग अलग बीन लेती थीं। उसके बाद २५०० गज की लम्बाई वाले धागों में इस ऊन को कातती थीं। परन्तु इतनी मेहनत का उन्हें प्रतिदिन केवल डेढ़ आना मेहनताना मिलता था।

"शाल का बुनना शुरू होने से पहले शाल के लगभग छः विशेषज्ञ मौजूद रहते थे। बुनने वाले लगभग सभी पुरुष होते थे। इनके मुखिया उस्ताद कहलाते थे जिनके पास अपने करघे होते थे। उन्नीसवीं शताब्दी में शाल के करघे की कीमत केवल डेढ़ रुपये से पांच रुपये तक होती थी। प्रत्येक उस्ताद उस समय तीन सौ तक करघे रख लेता था।

"करघों पर काम करने वाले कारीगर दो वर्गों में बांटे जाते थे। एक वे मजदूर, जिन्हें उस्ताद प्रतिदिन के काम के हिसाब से मजदूरी देता था। इन कारीगरों को प्रतिदिन एक आना मिलता था। दूसरा वह वर्ग जिसका उस्ताद के साथ हिस्सा रहता था। इन के घरों में पचास-पचास तक करघे होते थे। तिमजले मकानों में मजदूर रात दिन काम करते थे। इस उद्योग धंधे का पूरा लाभ करघे के मालिकों को भी नहीं जाता था। आमदनी का काफ़ी बड़ा हिस्सा, एक मध्यस्थ के पास जाता था जिसे 'मोहकून' कहते थे।"

शाल के बुनकरों की हालत

काश्मीरी शाल उद्योग में शाल के बुनकरों व कारीगरों की हालत सबसे खराब थी। मूरक्राफ्ट ने लिखा है: "एक बुनकर अपनी आमदनी से अपने परिवार को पाल नहीं सकता था। यदि पत्नी भी मजदूरी करती तो दोनों का मुशकिल से गुजारा हो जाता था।" शाल को देखकर जितनी खुशी होती है, उसके बनाने वाले कारीगरों की दुर्दशा देखकर उतना ही दुख होता है। "वैली आफ़ काश्मीर" के लेखक लारेंस के अनुसार एक बुनकर को एक या दो आना रोज मजदूरी मिलती थी। मूरक्राफ्ट ने एक मेहनती और चतुर बुनकर का वेतन एक रुपया आठ आना महीना बताया है।

ये गरीब बुनकर मुशकिल से एक समय का खाना खा पाते थे। जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुएं तो उन्हें कभी प्राप्त ही नहीं होती थीं। ये वही कारी-

गर होते थे जिनके अच्छे-से-अच्छे शाल विश्व के कोने कोने में पहुंचते थे और जिन्हें सामन्तों और शाहों की रानियां पहनकर अपनी खूबसूरती बढ़ाती थीं। स्वयं बुनकरों की स्त्रियां चिथड़ों में ही अपना जीवन व्यतीत करती थीं।

मुगलों के शासन काल में शाल उद्योग फलता फूलता रहा। इस काल में कारीगरों को कुछ प्रोत्साहन मिला। औरंगजेब के समय में बरनियर ने जब काश्मीर का भ्रमण किया तो उसने लिखा कि, "काश्मीर में एक ऐसी अनोखी वस्तु बनती है, जिसने इस देश (काश्मीर) के व्यापार को बढ़ाकर धन दौलत प्रदान की है। वह वस्तु है, काश्मीरी शाल, जिसे वहां के शिल्पकार तैयार करते हैं और जिनपर बच्चे तक आजीविका पाते हैं।"

अफ़गानों के राज्य में शाल उद्योग की हालत अच्छी रही किन्तु सिखों के शासन काल में काश्मीरी शाल-उद्योग की दशा बिगड़ गई।

पश्चिमी साम्राजियों ने भी काश्मीरी शाल का खूब फ़ायदा उठाया। ब्रिटिश सरकार ने देश में आने वाले माल पर अस्सी प्रतिशत कर लगा दिया जिससे वहां एक शाल की कीमत लगभग ५०० पौंड तक हो गई। फ्रांसीसियों ने भी अपने एजेन्ट भेजे, जो यहां से लाखों का माल खरीदकर ले जाते थे।

डोगरा शासन-काल में इस उद्योग की बहुत बुरी हालत हुई। १८४६ ई० में जब महाराजा गुलाबसिंह ने काश्मीर के शासन की बागडोर संभाली तो शाल के बुनकरों पर प्रति वर्ष ४८ रुपये के लगभग पोल टैक्स लगा दिया। यह टैक्स बेचारे अन्धे व अयोग्य बुनकरों तक से भी जबरदस्ती लिया जाने लगा। तंग आकर कुछ बुनकर देश छोड़ने पर बाधित हुए। तभी अनेकों काश्मीरी कारीगर लाहौर, अमृतसर, लुधियाना, गुरदासपुर, गुजरात और शिमला आदि अन्य शहरों में जाकर बस गये और वहीं शाल बनाने लगे।

डोगरा शासन-काल में काश्मीर के सबसे बड़े उद्योग का इस प्रकार नष्ट हो जाना, सामन्तवादी शासन के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस काल के शासकों को एकमात्र शोषण से मतलब था। साम्राज्यवादियों के ये भक्त ब्रिटिश माल को बढ़ावा न देते यह कैसे संभव था। साम्राज्यवादियों को भारतीय शिल्पियों का पनपना अच्छा नहीं लगता था, क्योंकि इससे उनके स्वार्थ पूरे नहीं होते थे।

काश्मीर में सामन्तवादी शासन के समाप्त होने के बाद राष्ट्रीय सरकार ने इस उद्योग एवं अन्य कला व दस्तकारी को बचाने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। काश्मीर की सरकार ने भारतवर्ष के विभिन्न भागों में एम्पोरियम



काश्मीर का एक शिल्पकार शाल बुन रहा है ।

खोल दिये हैं, जिनमें काश्मीर की दस्तकारी का सामान रहता है। इस तरह सरकार ने यहां के शिल्पकारों व बुनकरों की हालत को सुधारा है।

वर्तमान काश्मीरी कलाकार

दस्तकारी के अलावा काश्मीर के चित्रकारों (painters) का वर्णन भी अनुपयुक्त न होगा। जिन्होंने वाटर कलर द्वारा विभिन्न प्रकार के खूबसूरत चित्रों को चित्रित किया है और जो कला की परम्परा को जारी रखे हुए हैं।

लगभग दस वर्ष पहले दो काश्मीरी कलाकारों ने काश्मीर के दृश्यों को चित्रित करना प्रारम्भ किया। उनमें से एक हैं, श्री सतलाल खरू जो श्रीनगर के टेकनिकल स्कूल में अध्यापक का काम करते हैं। और दूसरे कलाकार हैं श्री दीनानाथ वली जो अपना स्वतन्त्र रूप से चित्रादि बनाते हैं। कला के क्षेत्र में डोगराशाही के दमन चक्र के काल में उन्नति नहीं हो सकी। क्योंकि जनता को जीना तक दूभर हो रहा था तो कला, जो कि सदा ही स्वतन्त्रता की छत्रछाया में फलती-फूलती है, कैसे पनपती।

१९४७ ई० में जब कबायली आक्रमण के समय, काश्मीर की रक्षा के लिए यहां के कवि, संगीतकार तथा अन्य सभी कलाकार एक होकर जुट गये, उसी समय कलाकारों की एक संस्था 'नेशनल कलचरल फ्रंट' के अधीन स्थापित हो गई। तभी से तीन प्रसिद्ध काश्मीरी कलाकार सोमनाथ भट्ट, त्रिलोक कौल तथा पृथ्वीनाथ काचरू ने प्रगतिशील लेखक संस्था तथा अन्य सांस्कृतिक संस्थाओं के साथ-साथ एक ग्रुप में काम करना शुरू कर दिया। १९४९ ई० में इन्होंने अपनी कलाकृतियों की पहली नुमायश की। भारतवर्ष के अन्य भागों में भी इनकी कलाकृतियों को सराहा गया।

काश्मीर की बहुमुखी कला और दस्तकारी वर्षों का नहीं सदियों का काम है, जिसे यहां के कारीगरों और मेहनतकशों ने अपने रक्त से सींचा और पुष्टिपत किया है।

काश्मीर के खनिज पदार्थ

कला व दस्तकारी के उद्योग के अलावा काश्मीर की ज़मीन में भी अपार संपत्ति है। अभी तक उसकी पूरी खोज भी नहीं हो सकी। फिर भी जितना कुछ भूगर्भवेत्ताओं ने अभी तक इस विषय पर काम किया है, उसका उल्लेख इस प्रकार है :

कोयला

जम्मू के इलाक़े में बहुत सी कोयले की खानों का पता चला है। ऊधमपुर के जिले में लद्दा और अंजी में तथा कालाकोट और जंगलगली में कोयले की खानें हैं। सबसे पहले इन कोयले की खानों की श्री आर. आर. सिम्पसन ने खोज की। उसके बाद एक और भूगर्भवेत्ता श्री मिडिलमिस ने श्री सिम्पसन की खोज के आधार पर इन कोयले की खानों की पूरी जांच पड़ताल की। उनकी रिपोर्ट निम्नलिखित है :

१.	काालाकोट की कोयले की खानें	९,०००,००० टन
२.	मेटकाकी " "	५,०००,००० टन
३.	महागोला " "	४,०००,००० टन
४.	चकर " "	९,०००,००० टन
५.	चिनाब नदी के पश्चिमी क्षेत्र के अन्य स्थानों की कोयले की खानें	६,०००,००० टन
६.	घनसल-सवालकोट की खानें	९,०००,००० टन
		४२,०००,००० टन

(कीज़ टू काश्मीर पृष्ठ १३३)

श्री मिडिलमिस के अनुसार यदि इन खानों की और खोज की जाय तो ४२,०००,००० टन के बजाय १००,०००,००० टन प्राप्त हो सकता है।

आमोदरफ़्त के ठीक साधन उपलब्ध न होने के कारण इसकी खोज में अभी कठिनाइयां हैं ।

लिगनाइट (Lignite)

काश्मीर में एक लम्बी खोज के बाद लिगनाइट या भूरा कोयला का पता चला है, जो हन्दवारा क्षेत्र के निचहामा और शाली गंगा के क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में पाया जाता है। श्री मिडिलमिस की रिपोर्ट के अनुसार निचहामा के क्षेत्र में लगभग ८०,०००, ००० टन और शालीगंगा के क्षेत्र में लगभग ४८,०००,००० टन मौजूद है ।

बौक्साइट

१९१९ ई० में भूगर्भवेत्ता श्री मिडिलमिस ने रियासी जिले के चकर गांव के पास बौक्साइट का पता लगाया। उनकी रिपोर्ट के अनुसार बौक्साइट रियासी क्षेत्र के निम्नलिखित स्थानों में पाई जाती है :

१. चकर और छपरावरी
२. संमरमार्ग
३. पनहासा
४. सलाल
५. जंगलगली-सुखवालगली

कोयले की खानों तथा पानी के नज़दीक होने के कारण जम्मू की बौक्साइट अधिक उपयोगी बन गयी है ।

लोहा

लोहा काश्मीर के दक्षिण में पाया जाता है। ख्याल है कि रियासी जिले के चकर और सलाल क्षेत्रों में भी बहुतायत से मिल सकता है । श्री मिडिलमिस के अनुसार चिनाव नदी के दाहिने किनारे पर, मट ह गांव का लोहा बहुत अच्छा है ।

तांबा

लोहे की तरह काश्मीर में तांबे की भी बहुत सी खान हैं। पहाड़ों के दक्षिण-पश्चिम की लिदर घाटी में यह काफी संख्या में मिलता है। इसके अलावा सुम्बल (काश्मीर घाटी) किश्तवाड़, कर्गिल जान्सकर रियासी जिले के

गेन्ता और सुखवालगली में इसकी खानें हैं। राजा अमरसिंह के लेखों के आधार पर श्री मिडिलमिस ने सिन्ध घाटी के गन्जवन नाला, हैन्गर और ट्राम-करम आदि स्थानों में तांबे को खोज निकाला है।

सोना तथा अन्य कीमती पत्थर

लद्दाख में सिंधु और शियोक नदियों के रेत से सोना निकाला जाता है। रेत को साफ करने का काम गिलगित और बालतिस्तान के वे निवासी करते हैं जिनका केवल यही पेशा है। लद्दाख के बौद्ध अपनी धार्मिकता के कारण इस काम को नहीं करते। हाल ही में गुलमर्ग में भी सोने की खान का पता चला है।

काश्मीर अनगिनत कीमती पत्थरों से भी भरा पड़ा है। भूरे रंग का गारनेट पूगा में पाया जाता है। मूल्यवान सैफायर्स (Sapphires) को १८८२ ई० में जसकर श्रेणी से खोज निकाला था। ये सैफायर्स पाडर में भी पाये जाते हैं।

बौराक्स और गंधक

लद्दाख में पूगा नदी के किनारे और रुलान्गचू चश्मे से कुछ दूरी पर गंधक की खानें हैं। इस क्षेत्र में बहुत से गर्म चश्मे भी हैं। यह गंधक यहां से नूरपुर कांगड़ा तथा रामपुर के बाज़ारों में बेचने के लिए भेजी जाती है।

बौराक्स भी रुलान्गचू के किनारे पूगा में गंधक के साथ ही पाया जाता है। वास्तव में पूरे राज्य में लद्दाख ही ऐसा क्षेत्र है जहां यह बहुत बड़ी संख्या में मिलता है। मीलों तक चश्मे का किनारा बौराक्स से भरा पड़ा है। यह साबुन बनाने तथा रंग, रोगन आदि करने के काम में आता है। शीशे के उद्योग में इसका विशेष प्रयोग होता है।

जंगल

काश्मीर भर में जंगलों की बहुतायत है। इन से काश्मीर को बहुत आय प्राप्त होती है। लकड़ी, शहद, मोम, रोसिन (Rosin) टरपैन्टाइन (Terpentine) आदि जंगलों की ही उपज हैं। पर्वत-श्रेणियों पर जड़ी बूटियां भी पाई जाती हैं। ये भी काश्मीर की आमदनी का एक साधन हैं।

जंगलों के अलावा काश्मीर में अनेक नदियां और पानी के चश्मे हैं, जिन से बिजली पैदा करके बहुत से उद्योग धन्धे कायम हो सकते हैं।

खनिज पदार्थों में रुप्सु और जान्सकार की पर्वत-श्रेणियों पर चूने का पत्थर बहुत मिलता है। चूने के इन पहाड़ों से जो पानी के चश्मे निकलते हैं, उनमें कैल्शियम होता है। इस से वहां के लोगों की काठी अपेक्षाकृत अधिक मज़बूत रहती है। चूने के कुछ पहाड़ों से विभिन्न प्रकार का संगमरमर भी मिलता है।

लद्दाख के कुछ क्षेत्रों तथा रामसू, कोटली और किश्तवाड़ में सीसा और चांदी भी पाई जाती है। १९२५ ई० में अंजी घाटी में जस्त की खानों का भी पता लगा है।

केसर

काश्मीर को केसर की भूमि भी कहते हैं। संस्कृत के विद्वानों ने काश्मीर को स्थान-स्थान पर "केसर और मधु की भूमि" कहकर वर्णन किया है।

काश्मीर की केसर संसार के अन्य देशों अर्थात इटली और मराको की केसर से केवल अच्छी ही नहीं है, किन्तु बहुत मात्रा में भी पैदा होती है।

श्रीनगर से कुछ मील दूर पाम्पुर के करेवों पर केसर उगती है। अक्तूबर व नवम्बर में इसके फूल निकलते हैं। कार्तिक (अक्तूबर-नवम्बर) की चांदनी रातों में इन खेतों के दृश्य देखते ही बनता है।

काश्मीर में भी सब जगह केसर नहीं उगता क्योंकि इसके लिए विशेष प्रकार की जलवायु तथा ज़मीन की आवश्यकता होती है। छोटे-छोटे पौधों में जब फूल लगते हैं तो उनके परागसे केसर तैयार कर लिया जाता है।

काश्मीर में केसर की पैदावार और उसका व्यापार अर्सें से चला आया है। मुग़लों के शासन-काल में केसर का प्रयोग अधिकतर औषधियों में किया जाने लगा। अफ़गानों के शासन-काल में इसकी उपज घट गई। किन्तु महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में इसकी पैदावार काफी होती थी।

अधिक मांग के कारण अब इसका एक महत्वपूर्ण व्यापार बन गया है। कीमत लगभग पांच रुपये तोला है। और आज काश्मीर की आय का एक विशेष साधन है।

काश्मीर के पहाड़ों, जंगलों और खनिज धन-दौलत की अभी तक पूरी खोज नहीं हो सकी है। सामन्तवादी शासन से मुक्ति पाने के बाद ही काश्मीर की जनता को साम्राजियों से टक्कर लेनी पड़ी। अतः इस ओर अभी पूरा ध्यान नहीं दिया जा सका। परन्तु वे दिन दूर नहीं, जब काश्मीर की इस छिपी हुई धन-दौलत को निकाला जायगा, और यहां की जनता की खुशहाली के लिए तरह तरह के उद्योग-धन्धे कायम होंगे।

काश्मीरि लोग--उनके उत्सव व गीत

काश्मीरी लोग विभिन्न धर्मों के अनुयायी होते हुए भी सांस्कृतिक रूप में एकता के सूत्र में बंधे हुए हैं। मुसलमान हिन्दुओं के साधु-सन्यासियों का आदर-सत्कार करते हैं तथा हिन्दू उनके पीर और फ़कीरों को पूजते हैं। श्रीनगर में मुसलमानों की शाह हमदान की मसज़िद हिन्दू तथा मुसलमान दोनों का पवित्र स्थान है। इसी प्रकार पीर पंडित पादशाह की जियारत को काश्मीरी हिन्दू व मुसलमान सभी श्रेष्ठ मानते हैं। प्रायः ग्रामों में फसल काटने के समय हिन्दू और मुसलमान एक ही जियारत पर चढ़ावा चढ़ाने के लिए जाते हैं। पुलवामा में पखरपुर एक जियारत है, जहां आस-पास के ग्रामों के हिन्दू व मुसलमान फसल काटने के समय चढ़ावा चढ़ाने जाते हैं।

काश्मीरी एक दूसरे के सामाजिक उत्सवों तथा त्यौहारों पर सम्मिलित होते हैं। ग्रामों में तो प्रायः काश्मीरी पंडित स्त्रियां और मुसलमान महिलाएं विवाह तथा अन्य सामाजिक उत्सवों पर एक-साथ मिलकर नाना प्रकार के गीत गाती हैं।

घाटी में बसने वाले लगभग सभी काश्मीरियों की भाषा और पहरखा एक सा है। मुसलमान और हिन्दू अपने घरों में प्रायः अपनी वही पुरानी पोशाक पहनते हैं, जो वे सदियों से पहने चले आते हैं। और वह है 'फिरन,' एक ढीला-ढाला-सा चोग़ा जैसा।

काश्मीरी अपने प्राचीन साहित्यिकों, ललधद, हब्बाखातून, शेखनूरुद्दीन तथा रूप भवानी आदि की समान रूप से प्रशंसा करते हैं और चाव से उनके गीत गाते हैं। इस प्रकार धर्म उनके लिए एक व्यक्तिगत मामला बन गया है। सांस्कृतिक तौर पर वे एक दूसरे से बंधे हुए हैं।

अभी काश्मीर में सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा है। घर के लगभग सभी

सदस्य परिश्रम करते हैं और सबका खाना एक ही जगह पकता है। सर्दी शुरू होने से पहले ये लोग आवश्यकता की अधिकांश सामग्री इकट्ठी कर लेते हैं। सर्दियों में ताज़ी सब्ज़ियां न मिलने के कारण इन्हें टमाटर, बैंगन, लाल मिर्च आदि अन्य सब्ज़ियां कई महीने पहले सुखा कर रखनी पड़ती हैं। जाड़ों में काश्मीर घाटी के लोग प्रायः वही काम करते हैं, जो घर बैठ कर किया जा सके। इसका कारण यह है कि बर्फ चारों ओर पड़ती है और अभी तक आने जाने के साधनों का उतना सुभीता नहीं हुआ है कि सभी कारोबार सुचारु रूप से चल सकें। परन्तु इतना होने पर भी निम्न-मध्यवर्ग के लोग घरों में करघे पर निरन्तर काम करते रहते हैं। इन्हीं दिनों में काश्मीरी कांगड़ी इनके लिए सबसे ज़्यादा कीमती बन जाती है।

चरित्र

यहां के लोगों के चरित्र के बारे में बहुत से विदेशी लेखकों ने लिखा है कि काश्मीरी अधिकतर झूठे, धोखेबाज़, लालची, डरपोक तथा अनैतिक हैं। इसका कारण है कि विदेशी लेखकों को काश्मीरी लोगों से कोई खास सहानुभूति नहीं थी। इसके अलावा इन लेखकों ने यहां के लोगों की उन मुसीबतों का अध्ययन नहीं किया, जिनका इन्हें सामना करना पड़ा है। सदियों तक यहां के लोगों को सामन्तवादी शासन की चक्की में दिन रात गुलामों की तरह पिसना पड़ा है। समय-समय पर अनेकों बीमारियां फैलती रही हैं, जिनके कारण अनगिनत व्यक्तियों को मृत्यु का शिकार होना पड़ा है। और वे मुसीबतें इन पर केवल साल दो साल तक नहीं, सैकड़ों वर्षों तक कायम रही हैं।

आम तौर पर काश्मीरी सीधे और सच्चे हैं। वे परिश्रमी हैं और आज़ादी पसंद है। उनका हृदय उदार है और अतिथि सत्कार करने में बहुत ही अनंदानुभव करते हैं।

काश्मीरी मुसलमानों के उत्सव व गीत

काश्मीरी मुसलमानों ने सामन्तशाही की अनेकों मुसीबतों का सामना करते हुए भी अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखा है। वे अपने उत्सवों को खुशी के गीतों के साथ चाव से मनाते हैं। पूरी काश्मीर घाटी में इन गीतों की गूंज सुनाई देती है। कुछ पद्यांश यहां अर्थ सहित दिए जा रहे हैं, ताकि मालूम हो कि उत्सवगीतों की रूपरेखा क्या व कैसी होती है।

हिन्दुओं की तरह काश्मीरी मुसलसानों के यहां जब बच्चा उत्पन्न होता

है तो प्रायः सातवें दिन बच्चे व प्रसूता को स्नान कराया जाता है। तभी बच्चे का नाम रखा जाता है। यह काश्मीरी मुसलमान के घर बच्चा पैदा होने का सबसे पहला उत्सव होता है और इसे 'सोन्दर' कहते हैं। स्त्रियां इस अवसर पर तरह-तरह के गीत गाती हैं। एक गीत की दो पंक्तियां निम्नलिखित हैं:—

सतिमे दोहय सोंदरः करमय,
वाज़स द्युतमय पान फरमाश।

गाने वाली औरत कहती है "ऐ बहु ! आज सातवां दिन है और हम तुम्हें नहलाते हैं। रसोइये को हमने खुद तरह-तरह के पकवान तैयार करने के लिए कहा है।" प्राचीन काल में यह उत्सव काफ़ी जोश के साथ मनाया जाता था; परन्तु आजकल इसका महत्व कम हो गया है।

बच्चे के जन्म के एक या दो वर्ष बाद काश्मीरी मुसलमान के घर दूसरा उत्सव बच्चे का मुंडन संस्कार होता है। इस संस्कार को वह (जरकासय) के नाम से पुकारते हैं और एक अजीब बात है कि काश्मीरी पंडित भी इसे मुंडन-संस्कार की जगह (जरकासय) के नाम से ही मनाते हैं। मुसलमानों में यह मुंडन लड़के-लड़कियों दोनों का होता है। परन्तु काश्मीरी पंडितों में केवल लड़के का। नीचे लिखी हुई दो लाइनों में स्त्रियां गाती हुई बच्चे से कहती हैं:

बिसमिलाह करिथ ज़र कासयो,
इसमे आज़म परयो।

[हम खुदा का का नाम लेकर तुम्हारा मुंडन कराते हैं और इसमे-आज़म (अल्लाह) का जप करते हैं]।

ज़रकासयो शालमार गोशन,
मोज छेय पोशन माल करान्।

[हम तुम्हारा मुंडन शालीमार बाग़ के आकर्षित दृश्यों में करा रही हैं। और तेरी मां तेरे लिए फूलों के हार गूंथ रही है]।

यह प्रथा भी पढ़े-लिखे मुसलमानों में आजकल कुछ कम होती जा रही है।

जरकासय या मुंडन-संस्कार के बाद काश्मीरी मुसलमानों के घर एक बड़ा उत्सव 'खतना' (मुसलमानी बनाना) का होता है। इस अवसर पर प्रत्येक मुसलमान के घर जितनी खुशी होती है 'ईद' के अलावा शायद ही किसी और

दिन होती हो। इस उत्सव पर भी औरतें तरह-तरह के खुशी के गीत गाती हैं। एक गीत की कड़ियां सुनिये :

खतनहाजि मंडवय गिंदवय फोतन,
अज हय छ्यम तोतस खतनहाल ।

[आओ री, सखियो, हम मंडप में जाकर मोती पिरो लें; क्योंकि वहां पर खतने की रसम अदा की जा रही है। मां कहती है, "आज मेरे तोता लाडले की 'खतने' की रसम है।"]

एक और गीत में ये औरतें गाती हुई नाई की ओर मुखाबित होकर कहती हैं :

फोतिस तल कोकर छ्यम अथन मोहर वाजे
खतनहाजे मुबारक ।

[अरे भाई नाई ! तुम्हारे लिए एक मुर्गी दरबे में रख छोड़ी है। आकर ले जाना और हम नगीने वाली अंगूठी भी पेश करते हैं। आज खतने की रसम है, और यह सबको मुबारक हो।]

मुसलमान इस उत्सव को बड़े ठाट-बाट से मनाते हैं।

लड़की के विवाह से पहले मेंहदी रात का उत्सव होता है। इस अवसर पर औरतें निम्नलिखित गीत गाती हैं :—

मांजे राचय सोंबरिम बाचय,
रहमत वाचय बरकच् सान ।

[तुम्हारी मेंहदी रात के त्यौहार पर मैंने अपना सारा परिवार इकट्ठा किया। यूं समझो कि खुदा ने बरकतों के साथ अपनी रहमत भेजी।]

अज छ्यम मांजिरात पगाह यनि वोलुय,
कुकिलव पोट गुलि वोलुये ।

[आज मेंहदी रात है। कल बारात आयेगी। फाख्ताओं ने इसीलिए अपनी कलाइयों में रेशम की राखियां-सी बांध ली हैं।]

अजहय वाति मांज चे चन्दन कुलि तलिये,
दन्दन कर मोक्तहार यंबरजलिये ।

[अरी ओ मनचली लड़की ! तेरे लिये मेंहदी, सन्दल की डालियों के तले से लाई गई है। अरी ओ नरगिस ! तू अपने दांतों को आज मोतियों का हार बना दे ।]

बुनिस्ताम सूजिनम मंजिमयारी
अजहय आव पान बापारिये ।

[अबतक तो वह (सुसराल वाले) मध्यस्थ भेजते रहे । आज व्यापारी (तुम्हारा पति) खुद चला आया है ।]

शादी से चन्द घन्टे पहले एक 'हमाम' की रस्म भी होती थी । काश्मीर एक सर्द देश है । दूल्हा और दुल्हन को शादी से चंद घन्टे पहले 'हमाम' अर्थात् गर्म पानी में नहलाया जाता था । इस उत्सव पर भी गीत गाये जाते हैं । यह प्रथा अब लगभग समाप्त ही हो गई है ।

दूल्हा जब सज-धज के दुल्हन के घर के द्वार पर पहुंचता है, तो इस उत्सव पर औरतें निम्नलिखित गीत से उसका स्वागत करती हैं :

व्वदिये ओवुय खानय मोलुय
नेरिसी रोनि मंजोलुय ह्यत
सोन संजि सदरे रोप संज कच्छवचि,
यहै छुय मोगुल बचि वार वनिवतोस ।

[दादी अम्मा, आज तुम्हारा लाडला आया है । घुंघरू लगे हुए थिगोड़े को साथ लेकर उसका स्वागत कर । उसके तन पर सोने का कुरता है, जिसमें चांदी की आस्तीन है । ऐसे मुगल (मुगलों) बच्चे के लिए तू दिल खोलकर गीत गाले ।]

निकाह पढ़ते समय नीचे लिखे गाने की पंक्तियों में दुल्हन की मां दुल्हन से कहती है :

ओबरस करिमय शांदय गुंडिये
थोद रोजि बोंबरस बराबर ।

[मैंने तेरे लिए बादल के तकिये बनाए हैं और तू उनसे पीठ लगाकर ठीक तरह से अपने भौंरे (दूल्हा) के बराबर में बैठ जा ।]

एक अन्य गीत में निकाहनामा लिखते समय मां अपनी बेटी से कहती है :

हवालय करमख़ पीरि पीरानस
चीर थफ करिज़्यस दामानस ।

[मैंने तुम्हें पीरों के पीर के हवाले कर दिया । देखना, अब कहीं तुम्हारे हाथ से आंचल छूट न जाये ।]

जिस समय दुल्हन अपने माता-पिता के घर से बिदा होती है और रोती हुई डोली में बैठ जाती है, उस समय औरतें नीचे लिखा हुआ गीत गाती हैं :

युथ न बा डोले गछि़ अल-डलय,
अथ अन्दर नार वुज़मलय छय ।
डूलि पकनाव्यून रूज़ी रूज़ी,
मसलन मानि बूज़ि बूज़िये ।
ऑन ज़ंपानस चटिमय ज़ाली,
तथ्य अन्दर छखे हीमालिये ।

[देखो जी, कहीं डोली हिल न जाय, क्योंकि इसमें एक नन्ही बिजली है । डोली को धीरे-धीरे ले जाना भाई, और जो लोकोक्तियां में कह रही हूं, उनका मतलब भी समझते जाना । शीशा लगी हुई डोली में मोतियों के झरोखे लगा दिये हैं । और इसी में "नागराज की हीमाल" (दो प्रेमियों की लोक-कथा) छिपी हुई है ।]

अब हम काश्मीरी मुसलमानों के सबसे बड़े उत्सव 'ईद' पर आते हैं । दूसरी जगहों की तरह यहां भी ईद की तैयारी रमज़ान के महीने से ही शुरू होती है जबकि मुसलमान अपना रोज़ा रखते हैं ।

रमज़ान के महीने के आरम्भ होते ही मुस्लिम औरतें खुशी के गीतों से ईद का स्वागत करती हैं । इन दिनों जो ग़ीत गाये जाते हैं, उनकी कुछ पंक्तियां यहां दी जाती हैं :

व्यसिये जानिजान वंदि जानानस,
माहि रमज़ानस वन्दहव जान ।

[अरी सखि, तुम मेरी प्राणों की प्राण हो । मेरे उस प्राण प्यारे से कह दो कि रमज़ान का महीना आ गया है, और मैं चाहती हूं कि उसपर अपने प्राण वारूं ।]

पॉर पॉर लगहव हकि सुबहानस,
युस छ अज़ रहमत बाग़वान ।

[मैं पाक परमेश्वर पर बलिहारी जाती हूँ। खुदा ही तो लोगों में रहमत बांटता है।]

दोह दोह रोजदर बाईमानस,
रोज छय जनतिच वथ हावान।
ईद आयि शादि छय मुसलमानस,
माहि रमजानस वन्दहव जान।

[ईमान रखने वाले हर रोज रोजा रखते हैं। रोजा रखने से जन्नत के रास्तों का पता चलता है। ईद आयेगी और वह मुसलमान के लिए शादी का पैगाम लायेगी। मैं रमजान के महीने पर बलिहार होना चाहती हूँ।]

रोजे खत्म होने के बाद वह 'ईद' का दिन भी आ जाता है, जिसकी सबको प्रतीक्षा होती है। ईद मुसलमानों का सबसे बड़ा त्यौहार होता है। इस दिन लगभग सभी मुसलमान अपने घरों में किस्म-किस्म का गोश्त पकाते हैं। इस अवसर पर एक विशेष प्रकार से गीत गाये जाते हैं। जिन्हें (रोफ़) कहते हैं। इस गीत के दो बोल होते हैं। पहले बोल को काश्मीरी में 'वुज' और दूसरे को 'वकनय' कहते हैं। इन दो बोलों को दोलने के लिए नव-युवतियां या महिलाओं की दो टोलियां बन जाती हैं। पहली टोली एक बोल बोलती है। जैसे :

ईद आइ रस रस,

[अरी सखि ! ईद धीरे-धीरे आ गई।]
दूसरी टोली इसका जबाव दूसरे बोल में इस प्रकार देती है :

ईदका वसवय,

[चलो री सखि ! ईदगाह चलें।]
पहली टोली :

ईद आइ सोरान

[ईद के दिन अब खत्म होने को हैं।]
दूसरी पार्टी इसका उत्तर देती है :

कोनै छिव नेरान

[अरी सखियो, घर से क्यों नहीं निकल पड़ती हो ?]

काश्मीरी पण्डितों के उत्सव व गीत

काश्मीरी पंडितों के यहां बच्चे के जन्म से ११ दिन बाद काहनेथर नामक पहला उत्सव मनाया जाता है। इस दिन हवन आदि होता है और बच्चे का नाम रखा जाता है।

काश्मीरी मुसलमानों की तरह काश्मीरी पंडितों का भी दूसरा उत्सव 'ज़रकासय' (मुन्डन-संस्कार) होता है। बच्चा जब चार या पांच साल की आयु का हो जाता है तो उसका मुन्डन-संस्कार होता है। हवन आदि के बाद सब रिश्तेदारों को दावत दी जाती है।

काश्मीरी पंडित के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण उत्सव 'यज्ञोपवीत' संस्कार होता है। लगभग ८ से १२ वर्ष की उम्र में इस संस्कार के अवसर पर बालक के गले में कुल-पुरोहित यज्ञोपवीत डाल देता है। इसी दिन से वह लड़का काश्मीरी पंडित (द्विज) बन जाता है। इस संस्कार पर भी दावत होती है और काश्मीरी औरतें तरह-तरह के गीत गाती हैं। एक गीत की कुछ पंक्तियां नीचे दी गई है।

अगन सुन्दरावुस चन्दनगर्णं वनय वालुस तोलुसी काठ।
कोंगह त स्यन्द्रे वथयव आटी, ब्रहमण पिलव्यस आटीपन॥
दय सण्द धर्म तय यन्द्र संदि ध्यानै ब्रहमन पिलव्यस स्रानैपठ।

[यज्ञोपवीत के कुंड का लेपन करने के बाद औरतें गाती हैं कि यज्ञोपवीत के कुंड की आग सुलगाने के लिए चन्दन की लकड़ी इस्तेमाल कीजिएगा। और उसके साथ तुलसी की लकड़ी भी डाल दीजिए, ताकि सुगन्ध चारों ओर फैल जाय। केसर और सिंदूर यहां पर काफी है और काफी प्रयोग में आ रहा है। अरे ब्राह्मण, ब्रह्मचारी को आटीपन दे! (यह एक तरह का धागा होता है जिसे कमर के ईद-गिर्द बांधते है।) अरे ब्राह्मण! परमात्मा का नाम लेकर और इन्द्र का ध्यान करके आप ब्रह्मचारी को स्नान पट (एक किस्म का लंगोट) दे। ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत डालने के लिए ब्राह्मण काफी दौड़-धूप कर रहा था।]

लड़के या लड़की के विवाह से पहले मेंहदी-रात का उत्सव होता है। इस अवसर पर पंडित औरतें निम्नलिखित गीत गाती हैं :

मांज्ञ खच् स्वर्गह तय मंग्रज्ञ ग्रायि पानी मांजि कर मेहरबानी ये।
दछह राठ खचयै दारे तह हंगस ग्रालि तह रोंगस मंग्रज्ञीराथ ॥
राधा कृष्ण छु रथस खसिथ महारिनह लागव ग्रथस मंग्रज्ञ।

[ग्राज मेंहदी रात के लिए जो मेंहदी लाई गई है, वह मेंहदी पवित्र है। ग्रौर स्वर्ग से लाई गई है, किसलिए ? दूल्हा ग्रौर दुल्हन के लिए। दरवाजे के किवाड़ों ग्रौर खिड़की के भी चारों ग्रोर नक्शे किसलिए बनाये गये हैं, क्योंकि ग्राज दूल्हा ग्रौर दुल्हन की मेंहदी रात है। राधा ग्रौर कृष्णजी रथ पर सवार हैं। दुल्हन के हाथों को मेंहदी लगाग्रो।]

जब काश्मीरी पंडित दूल्हा सुसराल की ग्रोर प्रस्थान करता है तो मुस्लिम स्त्रियां निम्नलिखित गीत गाती हैं :

योरह यलि गछ्-हम दछिन किन दॉर छय,
तथ्य ग्रन्दर हग्रर छय शोलह माराग ॥ १ ॥
बजह वति खोत खव बज्य ब्रसवारे,
पीरह सुन्द गुर हव ब्युय सवारे ॥ २ ॥

[ग्रौरतें इस गीत में दूल्हा से कहती है कि जब ग्राप यहां से चलकर सुसराल पहुंचेंगे तो वहां पर दाएं तरफ की खिड़की पर बैठी हुई ग्रापकी नाज़ुक दुल्हन खुशी मना रही होगी। वह ग्रापकी प्रतीक्षा कर रही होगी। गुरुवार के रोज़ राजमार्ग से जा रहा है, दूल्हा ! पीर ग्रर्थात कुलगुरु के घोड़े पर वह सवार है।]

ग्रौर जब दूल्हा दुल्हन के दरवाजे पर पहुंचता है तो मुस्लिम ग्रौरतें यह गीत गाती हैं :

गोड़ह ग्राख वुछने मंज ग्राख खबरे,
ग्रज़ हव ग्राख बबरे मुल करने !
ग्रस्य है वननावव बाई जानान्स,
हिन्दोस्तान किस पठानस !

[सबसे पहले ग्राप यहां दुल्हन को देखने ग्राये थे ग्रौर फिर बाद में ग्राप उसकी खबर लेने के ग्रभिप्राय से यहां ग्राये थे। ग्राज ग्राप बबर (एक प्रकार का कोमल ग्रौर सुगन्धित पौधा) के समान ग्रपनी कोमल ग्रौर सुन्दर दुल्हन को लेने के लिये ग्रा गये हो। हम ग्रपने दूल्हा भाई के लिए गायेंगी, दूल्हा हिन्दुस्तान के पठान के समान है।]

माता-पिता से बिदा होकर दुल्हन जब अपनी सुसराल चलने की तैयारी करती है, तो औरतें निम्नलिखित गीत में दुल्हन से कहती हैं :

सन्दुक तय कुंज़ह कर माजि हवालय,
नेर कूर्य वारिव्यन हवालै।
वुनिस्ताम आसहम हेरह बोनह रॉछी,
माजिह हेंज टाछि घरह गच्छखय।
माजह हअन्दि थनह तलह चोथये दोदगोलुय,
राजह पर्य गछ्य मोगलानीये।
डोले चान्ये कुबह छिय शेरान,
माजि छ्य वालिंज दुबह फेरान।

[आज तक तुम इस घर की रखवाली कर रही थीं और तुम इस घर की मालिकन थीं। ओ हमारी प्यारी, क्या अब तुम अपने घर सुसराल जा रही हो ? तुमने अपनी माता के स्तनों का दूध पिया है, क्या अब तुम अपने अच्छे और धनधान्यपूर्ण पति के घर सुसराल जा रही हो ? अरी दुल्हन ! एक तरफ तुम्हारी डोली का पर्दा सम्भाल रहे हैं और दूसरी ओर तुम्हारी माता का तुम्हारे वियोग में दिल फटा जा रहा है।]

और अन्त में जब दुल्हन अपने सुसराल पहुंच जाती है तो औरतें यह गीत गाती हैं :

अतिनस कुस छुव चादर रटिथी,
हीयमाल खटिथी खआरिज्यन।
हत मन्य कुलफन करिवसह हरकत,
बरकत वाचवह बर मुचरान।
हेरि खस पनन्ये कुठि ब्यह वारै,
युथनै सोनह तारै लभि लगनै।
जिगरे थोद तुल बुमह कमानै,
डाय सास लुखहै गय देवानै।
वआरिव वाचख़ क्यहय छ्यक् निन्दरे,
सोंन्दरें सोरमय अछ मुचराव।

[पर्दों की ओट में दुल्हन की प्रतीक्षा कौन कर रहा है ? देखना, हीमाल को चुपके-चुपके ही डोली में से निकालकर ऊपर चढ़ाना।

वज़नदार ताले खोलकर सन्दूक खोल दो, क्योंकि लक्ष्मी आपके घर पहुंच गई है। अरी दुल्हन! अपने घर की सीढ़ी से चढ़कर अपने कमरे में बैठना, ताकि आपके बहुमूल्य कपड़े खराब न होने पायं।

प्यारी दुल्हनियां! कमान-जैसी भवें तो ऊंची उठा। हज़ारों लोग तुम्हें देखने को तड़प रहे हैं। वह! ससुराल आ गया, पर तू अभी सोई है! सुन्दरि, जरा कजलाई नयनां तो खोल!]

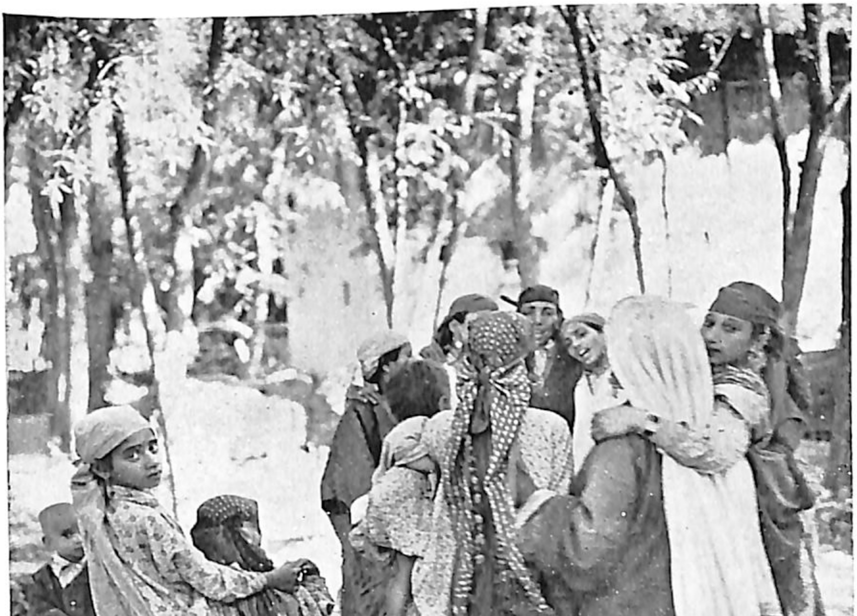
त्योहार

इन उत्सवों के अलावा काश्मीरी पंडितों के कई त्यौहार हैं, जिनमें शिवरात्रि का त्यौहार सबसे महत्वपूर्ण है। फाल्गुन (फर्वरी-मार्च) के महीने में इस अवसर पर एक हफ्ते पहले से घरों की सफाई की जाती है और इस त्यौहार पर माता-पिता अपनी विवाहित लड़कियों को धन-वस्त्र आदि की भेंट भेजते हैं। त्यौहार की रात्रि को शिवजी की पूजा होती है और अगले दिन तरह-तरह के पकवान आदि तैयार किये जाते हैं।

१५ मार्च को वसन्त का त्यौहार 'सोंत' के नाम से मनाया जाता है। अक्सर इस अवसर पर गांव या शहर में खुले मैदान में एक मेला लगता है। नौजवान खेल खेलते हैं और महिलाएं नए मौसम की गर्म धूप में आनन्द मनाती हैं।

चैत्र शुक्ल पक्ष प्रथमा (मार्च-अप्रेल) को नये साल का उत्सव मनाया जाता है, जिसे काश्मीरी 'नवरे' (नया वर्ष) कहकर पुकारते हैं। इस त्यौहार पर भी लड़की के माता-पिता अपने 'दामादों' को दावत देते हैं और साथ में रुपये आदि की भेंट भी उपस्थित करते हैं। इस दिन हर गांव या कस्बे में, जहां काश्मीरी पंडित अधिक तादाद में रहते हैं, एक मेला लगता है। आम तौर पर इस दिन नए कपड़े पहने जाते हैं। इस त्यौहार पर औरतें निम्नलिखित गीत गाती हैं:

नोव नवरेह सोन्त है आवै,
यि कुसअय देदिये बोय स्योन आवै।
हस्त्यन खसिथ आंगनस चावै,
आंगनस पेयमय छतरे छाय।
तथ तल लभिमय मोक्त फल्यढाय,
तिमनी करिसय मालै।



काश्मीरी युवतियों का नृत्य-गान ।



श्रीनगर रेडियो पर काश्मीरी लोक-संगीत ।

[ऐ सहेलियो ! नया नवरेह अर्थात् नया साल और वसन्त ऋतु साथ ही साथ आ गये। यह कौन आया ? यह मेरा भाई आया। हाथी पर चढ़े हुए वह सहन में दाखिल हुआ। सहन में उसकी छाया पड़ गई है। उस छाया के नीचे मैंने मोती के चंद दानों को पाया। उनको उठाकर मैंने मालाएं बनाई। अरी सहेलियो ! नया साल और वसन्त का मौसम हमें सुख देने के लिए आ गया।]

श्रीनगर के पंडित बैसाखी का त्यौहार भी मनाते हैं। इस दिन 'ईश वर' में एक मेला लगता है जहां अक्सर ये लोग पुण्यार्जन के लिए स्नान करते हैं। उसके बाद मनोरंजन के लिए निशात बाग जाते हैं। इसी बैसाखी के दिन मुगल बागों में पानी के फव्वारे छूटने शुरू होते हैं।

मई-जून में जेष्ठ-अष्टमी का पर्व मनाया जाता है। यह दिन राग्न्या देवी (क्षीर भवानी) के जन्म-दिन के कारण पवित्र माना जाता है। इस दिन तुल-मुला गांव में पंडितों का बड़ा भारी मेला लगता है। यहां एक पवित्र चश्मा है, जिसका जल कभी-कभी रंग बदलता है। इसी चश्मे के चारों ओर हज़ारों की तादाद में लोग रात-रात भर ईश्वर-भजन और गीत गाते रहते हैं।

जून-जुलाई में शारिका देवी के जन्म-दिन पर हारनौमी का त्यौहार होता है। इस दिन प्रातः से ही श्रीनगर के निवासी हरि-पर्वत की पहाड़ी पर आते हैं, जहां शारिका देवी की पूजा में यज्ञ आदि का अनुष्ठान होता है।

अगस्त-सितम्बर में श्रीकृष्ण के जन्म-दिन पर जन्माष्टमी का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन चन्द्रमा निकलने तक हिंदू व्रत रखते हैं। इस रोज़ भी लाग अपनी विवाहिता लड़कियों के घर फल और रुपये आदि भेजते हैं।

भादों में ही पन देने की एक प्रथा भी प्रचलित है। इसे विनायक चतुर्थी कहते हैं। शायद गणेशजी से इसका सम्बंध है। इस दिन प्रत्येक पंडित के घर सवा सेर आटे की रोटियां खास ढंग से बनाई जाती हैं। अब कम-से-कम इस रोटी का नाम ही सवा सेर पड़ा है। 'पन' की ये रोटियां अड़ोस-पड़ोस और सब रिश्तेदारों में बांटी जाती हैं।

सितम्बर-अक्तूबर के एक पखवाड़े में पंडित अपने मृतक पित्रों का श्राद्ध पक्ष मनाते हैं। इसे काम्बर पछ (कन्यागत का पखवाड़ा) कहते हैं।

काश्मीरी पंडितों का अंतिम वार्षिक त्यौहार दशहरा या विजय दशमी का होता है। यह त्यौहार लगभग हिन्दुस्तान के हिन्दुओं की तरह ही यहां पर भी मनाया जाता है।

संस्कृति

काश्मीर की संस्कृति के क्रम-विकास में हिन्दू, बौद्ध तथा इसलाम धर्म की सभ्यताओं का समय-समय पर प्रभाव पड़ा है। आज जो रूप हमें यहां संस्कृति का मिलता है, उसमें इन सभी मतवादों की छाप स्पष्ट झलकती है। किन्तु एक स्वस्थ पक्ष जो इस सबमें व्यापक दीखता है, वह यह है कि विभिन्न सभ्यताओं के उस प्रभाव को यहां की संस्कृति ने आत्मसात किया, जो एकता के सूत्र को मज़बूत बनाता रहा। अनैक्य या भेद को यहां की भूमि पचा न सकी।

भाषा

काश्मीरी मुसलमान हो या हिन्दू, काश्मीरी बोलने वाला है। ठीक है, इस भाषा में संस्कृत और फ़ारसी के बहुत शब्द मिले हुए हैं। किन्तु इसके मूल रूप का आधार लिये हुए ये फ़ारसी और संस्कृत शब्द काश्मीरियों के लिए पराये नहीं रहे हैं। इस भाषा के बारे में डा० नीव ने लिखा है, "काश्मीर की भाषा प्राकृत है। अबुलफ़जल ने कहा है कि काश्मीरियों की अपनी ही एक भाषा है। मुझे यह बताया गया कि काश्मीरी शब्दों में संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के कुछ शब्द और फ़ारसी, हिन्दुस्तानी, अरबी तथा तिब्बती भाषा के कुछ शब्द मिलेंगे।" इसलिए यह कहा जा सकता है कि काश्मीरी भाषा काश्मीरियों की सांस्कृतिक एकता की एक मज़बूत बुनियाद बनी हुई है।

ग्राम्य जीवन

यहां की विभिन्न जातियों व मतावलंबियों का रहन-सहन भी काश्मीर की सांस्कृतिक एकता का परिचायक है।

आप किसी भी काश्मीर के ग्राम में जायें, गर्मी के मौसम में आपको ग्रामीण खेतों पर काम करते हुए नज़र आयेंगे। कृषक जीवन में आपको हिन्दू और मुसलमान का भेद नहीं मिलेगा।

ग्रामीण किसान अतिथि-सत्कार करने वाले होते हैं। अपनी घरवाली व बच्चों से प्रेम करते हैं। किसानों की औरतें अपने पतियों का हर काम में साथ देती हैं। जब किसान सुबह चाय पीकर खेत पर काम करने चला जाता है तो उसकी पत्नी अपने बच्चों को संभालती है, जानवरों को दाना-पानी देती है और उसके बाद अपने पति को साग-भात और दही-मठा खेत पर ले जाकर प्रेमपूर्वक खिलाती और उसके काम में भी हाथ बँटाती है। गांव की मुसलमान महिलाएं जो अधिकतर किसान औरतें होती हैं, पर्दा नहीं करतीं।

लोक-गीत

ग्राम्य जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग ग्रामीणों के लोक-गीत हैं। अक्सर किसान शाली के हरे-भरे खेतों में कमर और गर्दन झुकाकर निलाई करते हुए गीत गाते हैं, जो उनकी आशा, विश्वास और प्रकृति-प्रेम को उभारते हैं। उस समय उनका हृदय मानव-भावनाओं से ओत-प्रोत रहता है। कोई मतभेद या धर्मभाव उनपर, उनके दिमाग़ पर छाया नहीं रहता। ऐसे लोक-गीतों की कुछ कड़ियां देखिए :

नेरि बालिये सोरे सामान् लो लो।
करि छ्वन छ्वन रोनि दामान लो लो॥
गैंम शरमन्द दखिनक रुत अछ पोश।
कें छि शूबिदार कें छि जानान लो लो॥
दूर आयन चान्यन नूर फुलवान।
सूर कुरथम स्वर्गिस्तान लो लो॥

[प्रेमी अपनी प्रियतमा से कहता है। मेरी प्यारी! तू अपना शृंगार करके बाहर निकल और अपने सजे हुए ज़ेवरात छनछनाती हुई मेरे पास आ। मेरी प्रेमिका की खूबसूरती पर तो दक्षिण किश्तवाड़ के खूबसूरत अछफूल भी लजाते हैं। जिनमें कुछ तो बहुत ही लुभावने हैं और कुछ दिल को पसन्द आने वाले। जब तुम अपनी बालियां हिलाती हो तो सर्वत्र प्रकाश पड़ता है। तुम्हारी इसी सौंदर्य-विभूति ने तो मुझे बेबस बना दिया है।]

जुल्फ़ि जंजूर यारस, वनस बो ज़ार कुतगोम।
वनस मंज पान मारस, मटे बो मार खारस,
करित सुइ मार कुत गोम, वनस बो ज़ार कुत गोम।
हच्युक बावुट कनुक दूर, दिले महरम शिलुक चूर,
गछि नस चश्मे बददूर, सुमुक्तँ हार कुत गोम।

[प्रियतमा अपने प्रेमी के बारे में कहती है कि जुल्फों वाला वह प्रियतम मुझे अपनी जुल्फों के जाल में फँसाकर अब कहां चला गया ? मैं उसकी मिन्नतें कर रही हूं। मैं वन प्रदेश में आत्महत्या कर लूँगी और इस हत्या का अपराध उसीपर चढ़ाऊँगी। भला वह मुझे वश करके कहां गया ? वह मेरी कलाई का कंगन, कानों की बाली, दिल का दर्द ले जाने वाला, चित्तचोर है। कहीं उसे बुरी नज़र न लग जाय। मालूम नहीं, वह मेरा मोतियों का हार (प्रियतम) कहां गया।]

लोक-गीतों के अन्य उदाहरण अन्यत्र दिये हैं, जो विवाह आदि उत्सवों पर गाये जाते हैं। इससे हमें पता चलता है कि इन ग्रामों के विभिन्न धर्मों के किसानों के रहन-सहन में, भाव-भंगिमा और विचार-विनिमय में, काफी एकता है।

ग्रामों में प्रायः पीरों-फकीरों तथा अन्य बुजुर्गों की जियारतों पर मेले लगते हैं। इन मेलों में हाट-बाजार लगता है और हज़ारों की संख्या में ग्रामीण साफ़ कपड़े पहनकर इनमें सम्मिलित होते हैं। मेलों में तरह-तरह के लोक-गीत और नाच होते हैं। स्त्रियां अलग रोफ़ और वनवुन गाती हैं और पुरुष छोटी छोटी टोलियों में छकरी आदि गाते हैं। इन मेलों में क्या बड़े क्या छोटे सभी मजदूर और किसान बहुत ही चाव से भाग लेते हैं।

लोक-कथायें

सर्दियों की लम्बी रातों में किसानों के घरों में कथा-कहानियों के सुनने-सुनाने का क्रम चलता है। इन कथाओं में "हीमाल और नागराय" "बम्बूर और लोलरे" "जोहरा-खोतन" "शब्रंग" आदि लोक-कथायें काश्मीरियों में जनप्रिय हैं। इनके अलावा "लैला मजनू" "शीरीन फरहाद" तथा "युसुफ़ और जुलेखा" की प्रेम कहानियां भी ये किसान लोग चाव से सुनते हैं। वास्तव में काश्मीर की लोक-संस्कृति का रूप अगर कहीं सुरक्षित रहा है तो वह है लोक-कथाओं के पुराने तरीके को कायम रखने में। 'हातिम' की कहानियां भी काश्मीर के घर-घर में मशहूर है। कहा जाता है कि 'हातिम' ने ये कहानियां गियर्सन को सुनाई और गियर्सन ने उन्हें प्रकाशित करा दिया।

काश्मीरी संगीत

काश्मीरी संगीत का इतिहास बहुत पुराना है। कल्हण के लेखानुसार इतिहास के प्रारंभिक काल का काश्मीर नरेश जलौक संगीत-कला का बड़ा प्रेमी

था। उसके दरबार में संगीत के सैंकड़ों कलाकार मौजूद थे। उसके बाद महाराजा ललितादित्य के दरबार में प्राचीन काल की सबसे मशहूर नर्तकी 'इन्द्रप्रभा' थी। काश्मीर के शासक हर्षदेव तथा जयदेव स्वयं संगीत के ज्ञाता थे और उन्होंने पूरे देश में संगीत कला का प्रचार किया।

मुसलमानों के शासन-काल में और विशेष कर सुल्तानों के समय काश्मीर में संगीत कला का विशेष विकास हुआ। यहां के संगीत पर ईरान, अरब, समरकन्द तथा ताशकन्द आदि विदेशों का भी प्रभाव पड़ा। मुसलमानों के काल का सबसे प्रसिद्ध शासक जैनुल-आबदीन स्वयं संगीत कला का विद्वान था। उन दिनों काश्मीर में प्रतिवर्ष संगीत का एक महान् उत्सव मनाया जाता था, जिसमें यारकन्द, ताशकन्द, पंजाब तथा दिल्ली के प्रसिद्ध और निपुण संगीतज्ञ और कलाकार निमंत्रित किये जाते थे। कहा जाता है कि एक विदेशी संगीतकार ने सुल्तान को 'संगीत-चूड़ामणि' नाम की प्रसिद्ध पुस्तक भेंट की थी। काश्मीर की संगीत कला का सबसे लोकप्रिय साज 'संतूर' इसी काल में प्रयोग में लाया गया। जैनुल-आबदीन के बाद सुल्तान हसनशाह के दरबार में लगभग १०२२ संगीत-कलाकार थे। यह भी कहा जाता है कि सुल्तान ने कर्नाटक के लगभग छः संगीत-कला के विद्वानों को अपने दरबार में निमन्त्रित किया, ताकि काश्मीर में उनके कुछ 'राग' लोकप्रिय बन सकें। सुल्तान हसन शाह के समय में संगीत-कला पर बहुत-सी किताबें भी लिखी गयीं। परन्तु अभी तक इन पुस्तकों की खोज नहीं हो पाई है। इस जमाने के सोम भट्ट, श्रीधर भट्ट, मुल्ला अहमद, अब्दुल कादिर, मुल्ला जमील, बहलोल तथा अयोध्या भट्ट आदि संगीत के निपुण विद्वान अपने इस कार्य के लिए आज तक प्रसिद्ध हैं।

१५७८ ई० में चकों के शासन काल में और विशेषकर बादशाह युसुफ़शाह चक के समय में संगीत कला ने खूब उन्नति की। युसुफ़शाह की रानी हब्बा खातून तो अपनी कविता तथा संगीत-कला के कारण आज भी काश्मीर के लोगों में लोकप्रिय है।

चकों के शासन काल के बाद काश्मीर के संगीत में कुछ अवनति होने लगी, जिसका कारण यह हो सकता है कि काश्मीर विदेशी बादशाहों के अधीन हो गया और यहां के संगीत पर शासकों की संरक्षता भी समाप्त हो गयी। परन्तु संगीत के विद्वान् फिर भी व्यक्तिगत रूप से स्वर-साधना करते रहे।

शास्त्रीय संगीत के अलावा जो लोक-संगीत काश्मीर की प्रकृति-छटा के साथ ही साथ यहां के जनमानस को तरंगित और उद्वेलित करता आया है, जिस

का प्रारम्भ काश्मीरी के जन्म से ही हुआ है, वह कभी मरा नहीं, सदा विभिन्न धाराओं में किसान, मज़दूर, मध्यमवर्गीय कलाकारों के थके-हारे जीवन को सांत्वना और नवोत्साह देता आया है।

लोग हमेशा सामंतशाही और जागीरदारी के पंजे तले अकिंचन रहे हैं, काश्मीर इसका अपवाद नहीं। किन्तु जिस प्रकार अन्यत्र जनजीवन में दरिद्रता उन मानव मूल्यों को खत्म नहीं कर सकी, जो आम जनता को दुःख की घड़ियों में आशा का संदेश लाई है। ठीक उसी प्रकार काश्मीर का आम मनुष्य भी उन मूल्यों से वंचित नहीं किया जा सका। इस भावाभिव्यंजन के लिए उसे धन और साधनाभाव पीछे न रख सके। उसने मिट्टी के घड़े, चमड़े के साज, लकड़ी की मुरली आदि मामूली वस्तुओं से ही स्वर-लहरियां और तानें पैदा कर दीं।

काश्मीर के लोकसंगीत में छकरी, रोफ़, वनवुन, वखनय, हिकट आदि प्रकार इसी परम्परा में आते हैं।

छकरी बहुत सादा लोक-संगीत है। इसमें सस्ते साजों से काम लिया जा सकता है। आमतौर पर एक घड़ा, एक सारंगी तथा एक तुम्बक नारी (एक प्रकार का ढोल) से पूरा आरकैस्ट्रा तैयार हो जाता है। कहीं-कहीं रबाब हारमोनियम के स्थान पर प्रयोग में लाया जाता है। कहा जाता है कि प्राचीन काल से ही लोक-संगीत में घड़े का प्रयोग होता था। वास्तव में इस संगीत में स्वर और ताल को मिलाने में घड़ा काफी महत्व रखता है। तुम्बकनारी एक सुराही की शक्ल जैसी मिट्टी का साज होता है। इसकी सतह में भेड़ का चमड़ा लगा दिया जाता है। तुम्बक नाम से यह मध्यपूर्वी देशों में प्रयोग में लाया जाता है; परन्तु वहां इसकी बनावट भिन्न प्रकार की होती हैं। लकड़ी के एक विशेष प्रकार के फ्रेम के ऊपर चारों ओर सूखा चमड़ा लगा दिया जाता है।

छकरी संगीत में सारंगी का प्रयोग होता है। यह कुछ कुछ हिन्दुस्तान की सारंगी की ही तरह है। किन्तु इसकी कुछ सीमित तारें होती हैं जिनसे स्वर निकाले जाते हैं। 'साज़' नाम का एक सितार जैसा काश्मीरी साज़ है, जो काश्मीर के ही साज़ों में गिना जाता है। इसका उपयोग सूफियाना कलाम अर्थात शास्त्रीय संगीत में ही विशेष रूप से होता है।

रबाब नाम के साज़ के बारे में यह कहा जाता है कि लगभग चार सौ वर्ष पहले काश्मीरी संगीत को यह अफ़गानिस्तान की देन थी। कुछ लोगों का विचार है कि यह सिंक्यांग (चीन) से लाया गया।

'संतूर' काश्मीरी क्लासिकल संगीत अर्थात् सूफ़ियाना कलाम के लिए एक आवश्यक साज़ है। फ़ारस के लोग भी इसी तरह का 'कानून' नाम का साज प्रयोग करते हैं। भारतवर्ष में भी इस तरह के तार के तानों वाला साज प्रयोग में आता है।

भारतवर्ष के वैदिककाल में भी 'वन' नाम का साज़ काम में लाया जाता था। वन नामक साज में १०० तारें होती थीं।

पठानों के शासन-काल में और उसके बाद 'बच्चा नग़मा' नामक लोक-संगीत जारी हुआ। इसमें स्त्री-वेष में नर्तक नाचने-गाने का काम करता था। परन्तु १९४७ ई० के बाद इस तरह के संगीत को कलाकारों ने अधिक महत्व नहीं दिया।

१९४७ ईं० के कबायली हमले के समय जब काश्मीर नेशनल कलचरल-फ्रंट की स्थापना हो गई तब इस महाज़ के नेतृत्व में ग्राम-ग्राम में संगीत व नृत्य द्वारा देश की आज़ादी के महत्व को जनता तक पहुंचाया जाने लगा। इस का परिणाम यह हुआ कि काश्मीर का लोक-संगीत पनपने लगा। कोशिश की गई कि काश्मीर का लोक-संगीत अधिक उन्नत हो।

ग्रामों में चारणों की भांति कुछ लोग तुकबन्दी करते हैं और घर-घर सुनाते हैं। उन्हें लड़ीशाह कहते हैं। इनके हाथ में एक लोहे का डंडा रहता है, जिसमें कुछ कड़े पड़े रहते हैं। वह बजाये जाते हैं।

यहां के गोजर-संगीत में एक तरह की बांसुरी का प्रयोग किया जाता है जिसका काश्मीरी नाम 'नय' है।

वनवुन तथा रोफ़ जन-महिलाओं का संगीत व नृत्य रहा है। हिन्दु और मुसलानों के विवाह-उत्सवों पर अक्सर 'वनवुन' लोक-संगीत का ही प्रयोग किया जाता है।

रमज़ान के महीने में और ईद के त्यौहार पर मुस्लिम-महिलायें अर्धगोला-कार चक्कर में नाचते हुए एक गीत गाती हैं। इस तरीके को 'रोफ़' कहते हैं। यह काश्मीरी मुस्लिम महिलाओं में आज भी लोकप्रिय संगीत-विधि है। इसमें गाये जाने वाले गीत के दो बोल होते हैं। पहले बोल को 'वुज' और दूसरे बोल को 'वकनय' कहते हैं।

काश्मीर में लोक-संगीत की धारा बराबर प्रवाहित है। उत्सवों, त्यौहारों और मेलों पर इसका अच्छा प्रदर्शन होता है। इसके अलावा बच्चे, बूढ़े अपने घरों में संगीत की साधना से अपना मनोरंजन करते हैं और अब रेडियो ने भी इसे प्रोत्साहन दिया है।

नृत्यकला

प्राचीन काल से ही काश्मीर में नृत्यकला फलती-फूलती रही है। धर्म के साथ-साथ जीवन के हर क्षेत्र में इसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। काश्मीर में आरम्भ से ही यह कला शासकों की संरक्षकता में थी। भारत, अफ़गानिस्तान तुर्किस्तान तथा ईरान से समय-समय पर नर्तक यहां आते रहे हैं और उनकी इस कला ने काश्मीर की नृत्यकला की प्रगति में सहयोग प्रदान किया है। कलशदेव और हर्षदेव, जो बारहवीं शताब्दी में काश्मीर के शासक थे, नृत्यकला के निपुण कलाकार थे। इसी ज़माने में सारंगदेव ने 'संगीत-रत्नाकर' नामक एक मशहूर किताब लिखी। संगीत-चूड़ामणि नामक किताब सुलतान ैनुल-आबदीन के शासनकाल में काश्मीरी नर्तक व नर्तकियों के लिए एक रोशनी का काम दे रही थी। बादशाह औरंगज़ेब के समय में सैफ़खान काश्मीर का सूबेदार रहा। सैफ़खान के सहयोग से मीर जाफ़रअल्ला ने राग-दर्पण नामक किताब का फ़ारसी में अनुवाद किया। यह पुस्तक नृत्यकला तथा संगीत-कला से सम्बंधित है।

काश्मीर में प्रचलित नृत्यकला की दो किस्में हैं। एक क्लासीकीऔर दूसरी आमियाना। क्लासीकी नृत्यकला में सूफ़ियाना (सूफ़ी) संगीत का प्रयोग होता है और आमियाना नृत्यकला में सहराई संगीत से काम लिया जाता है। क्लासीकी नृत्य के द्वारा भावनाओं को उभारा जाता है। इसमें स्वर और ताल का विशेष ध्यान रखा जाता है। यदि नर्तक और नर्तकी का एक कदम या पैर की एक चाप भी बेसुर या बेताल पड़ जाय तो नर्तक या नर्तकी के बेहोश गिर पड़ने या परेशान हाल होने की सम्भावना रहती है, जिससे दर्शकों का आनन्द जाता रहता है। कभी-कभी इस नृत्य में दर्शकगण दीवाने-से हो जाते हैं। आमियाना नृत्यकला में ऐसा कोई बन्धन नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि आमियाना नृत्य में स्वर और ताल का ध्यान नहीं रखा जाता। स्वर और ताल का ध्यान अवश्य रखा जाता है; परन्तु कलाकार के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह शास्त्रीय विधियों से पूरा परिचित हो।

प्राचीनकाल से ही काश्मीर में नाच-गाने की घर-घर प्रथा थी। कलाकार व नर्तकियां हर जगह पाई जाती थीं। शांगस (कुटहार-अनन्तनाग) की नर्तकियां तो काश्मीर भर में मशहूर थीं। आजकल नर्तकियों को काश्मीरी लोग 'हाफ़ज़ा' कहते हैं, क्योंकि यह कहा जाता है कि वे ईरान के महाकवि हाफ़िज़ के शेर गाया करती थीं। इनके नाच को काश्मीरी भाषा में हाफिज़नग़मा कहा जाता है। मौजूदा ज़माने की मशहूर नर्तकी अज़ीज़े जानम थीं। लोग उसे 'टॉठ साहबा'



काश्मीरी नवयुवतियां अपनी वेष-भूषा में लोक-नृत्य कर रही है।

अर्थात् प्यारी साहबा के नाम से भी पुकारते थे। इसका दूसरा नाम सात बहनों वाली अज़ीज़ा खातून भी था। अन्य प्रसिद्ध नर्तकियां थीं : नूरह आरमेनी, मुक्तदन्दानी, गुलाब, फज़ली, गोजबारी, आशियाअसी तथा मेहर छकरी। इस मेहर छकरी नर्तकी के लिए पं० तोतजू छतबली ने एक उस्ताद नियुक्त किया था। जिसे वह बारह वर्ष तक वेतन देता रहा। नूर ककर नाम की एक और मशहूर नर्तकी थी, जो गाव-कदल की रहने वाली थी। इस नर्तकी को एक दर्शक ने दस हजार रूपये का कीमती हार भेंट किया था। कहा जाता है कि शास्त्रीय नृत्य के अन्तिम दौर में यह कला वेश्याओं तक ही सीमित रही। नाच की सभाएं अक्सर रात को हुआ करती थीं। देश-विदेश के दर्शक-गण काश्मीर की इन नर्तकियों का नृत्य देखकर आनन्द-विभोर हो जाते थे।

काश्मीर में शास्त्रीय नृत्य अब अवनति पर है। आमियाना नर्तक व नर्तकियां अब भी काफ़ी हैं। कुछ प्रसिद्ध नर्तकियां इस समय भी काश्मीर में मौजूद हैं; परन्तु अब उन्होंने गृहस्थ-जीवन धारण कर लिया है और वे अब पर्दानशीन महिलाओं में गिनी जाती हैं। आमियाना नृत्य के कुछ महत्वशाली केन्द्र काश्मीर के बलपूर, वाथोर तथा मोहरीपुरा (अकिनगांव) में अब तक मौजूद हैं।

'दमाल्य' नाम का लोक-नाच ग्रामों के सामूहिक जीवन में अति लोकप्रिय है। अक्सर मेलों पर यह नृत्य किया जाता है।

काश्मीर की नृत्यकला ग्रामों के लोक-नृत्यों के रूप में अभी तक मौजूद है। मैंने अक्सर ग्रामों में ग्रामीण महिलाओं के सामूहिक नाच देखे हैं।

काश्मीर की कलचरल कान्फ्रेंस ने ग्रामों में जगह-जगह सांस्कृतिक केन्द्र खोलने शुरू कर दिये हैं, ताकि काश्मीर की यह कला दिन-प्रतिदिन उन्नति करे।

साहित्य

काश्मीर तक्षशिला व नालन्दा की तरह प्रारम्भ से ही पूर्व में साहित्य, संस्कृति व विद्या का केन्द्र रहा है। एशिया के विभिन्न भागों के विद्वान यहां एकत्रित होते थे और धर्म तथा अन्य विषयों पर शास्त्रार्थ करते थे।

काश्मीर के साहित्य के इतिहास की खोज करने पर हमें पता चलता है कि बौद्ध और हिंदुओं के काल में संस्कृत साहित्य ने बहुत प्रगति की। दर्शन, धर्म औषधि-विज्ञान, ज्योतिष तथा इन्जीनियरी आदि का शायद ही कोई ऐसा विषय हो, जिस पर उस काल के विद्वानों का अध्ययन न हो। इन विद्वानों ने भिन्न २ विषयों का गूढ़ अध्ययन करके उस काल में अनेकों पुस्तकें लिखीं थी। शिववाद या 'त्रिक' दर्शन पर आठवीं सदी में वसुगुप्त ने "स्पन्द कारिका" नामक एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी। उसके बाद नवीं शताब्दी में कल्लात भट्ट ने "स्पंद सर्वस्व" तथा उत्पलदेव ने "प्रात्यभिज्ञ" लिखी। इनके अलावा अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, क्षेमराज तथा योगराज नामक मशहूर लेखकों ने शिववाद पर बहुत-सी पुस्तकें लिखीं।

इनके अतिरिक्त भीमभट्ट की राघवार्जुनीय (७०० ई०), दामोदर गुप्त की कुट्टनी माता (७६० ई०), शिवस्वामी का कप्फनाभ्युदय (८०० ई०), रतनाकर की हर विजय (८५० ई०) आदि पुस्तकें काश्मीरी साहित्य को एक महान् देन थीं। इनके अलावा श्री स्वामी, वल्लभदेव तथा जयद्रथ आदि लेखकों ने प्रसिद्ध किताबें लिखी हैं। सभी पुस्तकों और उनके लेखकों की सूची देना यहां सम्भव नहीं है।

व्याकरण तथा अलंकार-शास्त्र पर भी कुछ पुस्तकें लिखी गयीं। ६५० ई० में कय्यट ने व्याकरण पर लघुवृत्ति नामक पुस्तक लिखी। अलंकार-शास्त्र पर वामन भट्ट ने ७५० ई० में काव्यालंकार, रुद्रट ने ८२५ ई० में

शृंगार-तिलक, रूय्यक ने ११२५ ई० में अलंकार-सर्वस्व और मम्मट ने ११५० ई० में काव्यप्रकाश आदि पुस्तकें लिखीं।

हिन्दू शासनकाल में चरक और नरहरी ने दवाई के सम्बंध में पुस्तकें लिखी थीं जिनमें से चरक की किताब आज तक दुनिया में मशहूर है।

काश्मीर के ब्राह्मणों ने उस काल में ज्योतिष-शास्त्र का भी अध्ययन किया। भास्कराचार्य, आर्यभट्ट तथा रतनकंठ आदि ज्योतिषियों के नाम इस सम्बंध में आसानी से लिये जा सकते हैं।

कल्हरण

बारहवीं शताब्दी में मशहूर इतिहासकार व साहित्यक कल्हरण ने संस्कृत में 'राज तरंगिनी' नामक पुस्तक लिखी। वास्तव में यदि कल्हरण राजतरंगिनी न लिखते तो काश्मीर के प्राचीन इतिहास की खोज करना मुश्किल था।

कल्हरण एक ब्राह्मरण के घर पैदा हुए थे। उनके पिता चम्पक राजा हर्ष के काल में मंत्री के पद पर थे। कल्हरण शैवमत के अनुयाई थे; परन्तु दूसरे धर्मों का भी आदर-सत्कार करते थे। उन्होंने ११४८ ई० में काश्मीर का इतिहास लिखना शुरू किया और ११४९ ई० तक समाप्त कर दिया। यह वह समय था जबकि पूर्व तथा पश्चिम के देशों में सामन्तवादी शासन था। कल्हरण ने उस समय तक राजतंत्र, प्रजातंत्र तथा मनुष्य के अधिकार आदि के बारे में भी नहीं सुना था, फिरभी वह अपनी किताब में इन चीजों के बारे में बताते हैं। "राजतरंगनी" काव्य-कला से पूर्ण है, जिससे हमें पता चलता है कि कल्हरण इतिहासकार ही नहीं, अपितु कवि भी थे। इन्होंने काश्मीर के इतिहास को प्राचीन विद्वानों के ग्रन्थों की सहायता से पूरा किया।

कल्हरण की मृत्यु के बाद भी काश्मीर के इतिहास और साहित्य का काम बराबर जारी रहा। मुसलमानों के शासन-काल में विद्वान और लेखक फलते-फूलते रहे। मुसलमानों के शासन की स्थापना के बाद न्यायालयों की भाषा फ़ारसी बन गयी। इसलिए फ़ारसी भाषा का न केवल मुसलमानों ने ही, बल्कि हिन्दुओं ने भी अध्ययन करना शुरू कर दिया और बहुत जल्दी वे फारसी के विद्वान बन गये।

जैनुल-आबदीन के शासन-काल में 'जोनराज' ने राज तरंगिनी का दूसरा भाग लिखा। राज तरंगिनी के तीसरे भाग से हमें बौद्ध त्रिपिटकाचार्य शिवभट्ट, वैद्य कर्पूरभट्ट, ज्योतिषी रूपभट्ट और सिंह तथा महाभाष्य के टीकाकार श्री रामानन्द आदि विद्वानों का पता चलता है। जैनुल-आबदीन स्वयं भी साहित्य

का बहुत प्रेमी था। उसने देश-विदेश के विद्वानों को अपने दरबार में रखा। जैनुल-आबदीन ने स्वयं भी अरबी, फारसी तथा संस्कृत आदि की बहुत-सी पुस्तकों का अनुवाद किया। उन्होंने 'हिरात' के एक फ़कीर मौलाना कबीर को काश्मीर बुलाया और उसे महाविद्यालय के चलाने की ज़िम्मेवारी सौंप दी। उनके दरबार के एक मशहूर विद्वान मुल्ला अहमद अल्लामा ने हिन्दुओं के महाकाव्य महाभारत तथा राजतरंगिनी का फारसी में अनुवाद किया। मुल्ला अहमद विद्वान होने के अलावा एक प्रसिद्ध कवि भी थे। उनका लिखा हुआ एक तारीखे-वाकाइ काश्मीर मशहूर ग्रन्थ है। जोनराज के अलावा जैनुल-आबदीन के दरबार के मशहूर विद्वान सोम ने संस्कृत साहित्य का फ़ारसी में अनुवाद किया। रहस्य-वादी कवि और साधु शेख नूरुद्दीन ने काश्मीरी भाषा में कविता की। उहा सोम ने, जैनचरित में सुल्तान जैनुल-आबदीन की आत्म-कथा लिखी और योध भट्ट ने बादशाह के जीवन से सम्बंधित एक नाटक 'जैन विलास' लिखा। इससे भी पहले तेरहवीं शताब्दी में इसी देश की भाषा में राजानक शितिकंठ ने 'महानय प्रकाश' नामक ग्रन्थ लिखा।

शितिकंठ के 'महानय प्रकाश' के पश्चात् हमें संस्कृत और फारसी रचनाओं के अलावा काश्मीरी भाषा का साहित्य भी मिलता है। कुछ लोगों का विचार है कि महानय प्रकाश की भाषा काश्मीरी का पूर्वरूप थी। किन्तु हमें जो ठेठ काश्मीरी का स्वरूप मिलता है वह लल्लेश्वरी के वाक्य हैं। जिनका रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी माना जाता है।

साहब कौल का 'कृष्ण अवतार' तथा प्रकाश भट्ट का 'राम अवतार' काश्मीरी शायरी के लिए एक महान देन हैं।

यह एक दिलचस्प बात है कि काश्मीरी भाषा के काव्य साहित्य में प्रसिद्ध स्थान महिलाओं को उपलब्ध है। इनमें से लल्लेश्वरी, हब्बाखातून, अरनीमाल तथा रूप भवानी का नाम उल्लेखनीय है, जिनके बारे में हम आगे लिखेंगे।

मुसलमानों के शासन-काल में काश्मीरी विद्वानों द्वारा फ़ारसी में लिखी हुई तीन सौ से अधिक किताबें मिलती हैं। ये किताबें यहां के दर्शन, धर्म, इतिहास, भूगोल, आयुर्वेद तथा साहित्य आदि विषयों पर लिखी गयी हैं। इनमें से ख्वाजा मिरार बजाज की १५७५ ई० की 'तज्करा‌ए मुरशदीन' बाबा दाऊद मुश्कानी की १६५६ ई० की 'असरार-उल अबरार' तथा मुल्ला ज़िहनी की १६५५ ई० की 'तज़करा-इ-शुआराइ काश्मीर' आदि ऐतिहासिक पुस्तकें उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण हैं।

दर्शन-शास्त्र पर जलालुद्दीन रूमी के जवाब में मिर्ज़ा अकमलुद्दीन कामिल द्वारा लिखी हुई पुस्तक बहार-उल-उरफ़ान है। इस किताब के चार भाग हैं जिनमें ८०,००० शेर हैं।

हकीम मन्सूर ने दवाइयों पर और मुहम्मद मुराद ने घोड़ों की बीमारियों के बारे में एक किताब लिखी। शाहजहां के शासन काल में मुल्ला मुंशी फ़ानी ने दुनिया के धर्मों के बारे में 'दबिस्ताने मज़ाहिब' नामक एक अपूर्व किताब लिखी है। इस किताब का अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है।

फ़ारसी की पुस्तकों के अलावा मुस्लिम काल में संस्कृत भाषा में भी बहुत सी किताबें लिखी गयीं। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि ज़ैनुल-आबदीन के दरबार में संस्कृत के भी विद्वान मौजूद थे और सुल्तान स्वयं भी संस्कृत के अध्ययन का प्रेमी था। जगधर भट्ट ने १३५० ई० में 'स्तुति कुसुमांजली' नाम की एक साहित्यक किताब लिखी। इसके अलावा वल्लभदेव की पद्यावली (१५५० ई०) तथा शिवोपाध्याय की शैव-शास्त्र पर एक मशहूर पुस्तक 'विज्ञान भैरव' (१७७५ ई०) काश्मीरी साहित्य के गौरव को बढ़ाती हैं।

मुसलमानों के शासन-काल में काश्मीर के साहित्य का इतिहास विशेष तौर पर फ़ारसी साहित्य का इतिहास ही माना जायगा। मुगलों के ज़माने में यहां फ़ारसी के कई कवि हुए, जिनमें सरफ़ी, मुल्ला अशरफ़, बहाउद्दीन मट्टू मौलाना मज़हरी, मुल्ला तैयब तथा मुल्ला फरोगी आदि उल्लेखनीय हैं। औरंगज़ेब के शासन काल में फ़ारसी का सबसे बड़ा शायर मोहम्मद ताहिर गनी हुआ, जिसकी काव्य-प्रतिभा की धाक ईरान तक के साहित्य-वर्ग में जम गई थी।

मुसलमानों के अलावा बहुत से काश्मीरी पंडितों ने भी फारसी में अपनी रचनाएं की हैं। मुंशी भवानीदास काचरू की पुस्तक 'बहरे तवील' पठानों के शासन-काल में ही लिखी गई है। पं० ताबराम तुर्की 'बेताब' का जंगनामा १८४० ई० में लिखा गया। पं० राजकौल अर्जबेगी 'दायरी' तथा पं० राजकाक धर 'फ़र्रुख' की रचनाएं भी फ़ारसी की अच्छी कृतियां मानी जाती हैं।

काश्मीर की नाट्य कला

काश्मीरी नाटक का आरम्भ कब और क्यों हुआ? इस सम्बंध में हमारे पास कोई प्रामाणिक विवरण मौजूद नहीं है। कहा जाता है कि संस्कृत कवि एवं नाटककार कालिदास काश्मीरी पंडित ही थे। क्योंकि इनके नाटकों में काश्मीरी जीवन का यथावत वर्णन मिलता है। अवन्तीवर्मन के शासन-काल में प्रसिद्ध साहित्यक और नाटककार शिवस्वामी हुए हैं। यद्यपि इनके नाटक आज

उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी अन्य रचनाओं में यत्र-तत्र उद्धरण मिलते हैं। कलशदेव के शासन-काल में प्रसिद्ध विद्वान् और साहित्यक खेमेन्द्र हुए हैं, जिन्होंने काश्मीरी रंग-मंच को बहुत कुछ दिया है। कहा जाता है कि वह मनोरन्जन के लिए अक्सर प्रतिदिन नाटक देखता था और नायकों तथा अन्य पात्रों के कलमी चेहरे पेश करता था। इससे यह प्रकट होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में काश्मीर में नाटककारों की एक मण्डली भी थी। जिसमें नर्तक, नर्तकी, गायक, साहित्यक, कवि तथा अभिनेता आदि बहुत से पात्र सम्मिलित होते थे।

ग्यारहवीं शताब्दी के आखरी दौर का प्रसिद्ध नाटककार बिल्हण हुआ है। उन्होंने 'विक्रमांकदेव चरित' नामक नाटक लिखा है, जो आजकल कई विश्वविद्यालयों में पढ़ाया भी जाता है। बिल्हण खोनमू का रहने वाला था।

पन्द्रहवीं शताब्दी में काश्मीर के प्रसिद्ध कवि, गायक, साहित्यक और इतिहासकार श्रीधर ने इस बात का पूरा सबूत दिया है कि काश्मीर का अपना रंग-मंच था, जो अच्छे ढंग से काम करता था। श्रीधर जैंनुल-आबदीन का एक मशहूर दरबारी था। उन्होंने वसन्त के त्यौहार के बारे में लिखा है कि "बादशाह चेत के महीने में अवन्तीपुर से विजयवाड़ा पहुंचा। रात को दीपमाला हुई। रात भर संगीत का दौर चलता रहा और नाटक खेला गया। उस समय के नर्तक व नर्तकियां साहित्यक भी थे।" श्रीधर तारा तथा उत्सो नामक नर्तकियों की कला की प्रशंसा करते थे। वह स्वयं भी कलाकार थे। इससे सिद्ध होता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी में काश्मीरी रंग-मंच उन्नति पर था। इसी काल में 'बोध भट्ट' ने 'जीवन प्रकाश' नामक नाटक लिखा। तत्पश्चात बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक काश्मीर में रंग-मंच का अभाव ही दीखता है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'अलफ्रेड नाटकीय कम्पनी' की प्रेरणा से काश्मीर में रंग-मंच फिर कायम किया गया जिसपर आग़ा हशर 'काश्मीरी', अमानत लखनवी और अहसान के नाटक खेले जाने लगे। इस स्टेज की संरक्षकता महाराजा प्रतापसिंह ने की और उनके बाद नूरइलाही मोहम्मद उमर ने कई नाटक काश्मीरी रंग-मंच के लिए लिखे, लेकिन ये सब नाटक उर्दू में लिखे गये। श्रीनगर के साहित्य-प्रेमी नौजवानों ने भी अपनी नाटक कम्पनी बनाई। यहां से काश्मीरी भाषा में नाटक लिखे जाने लगे। इनका कथानक धार्मिक एवं लोककथाओं पर आधारित होता था। श्री नन्दलाल 'नन्ना' द्वारा लिखे हुए 'सतच कहवट' तथा 'अकनन्दुन' ठेठ काश्मीरी में लिखे नाटक बहुत ही सफलता से खेले गये। कई हिन्दी नाटकों के अनुवाद भी रंग-मंच पर लोगों को दिखाए गए।

पाकिस्तानी हमले के बाद नेशनल कलचरल फ्रंट के नेतृत्व में 'काश्मीर यह है', 'जमीन किसान की है', (नादिम का संगीत रूपक), 'तीन बटे चार', 'ब्लैक मारकेट' 'नये काश्मीर की राह पर' नामक छायानाटक और परदेशी का शरणार्थी समस्या पर लिखा हुआ 'सवाली' नामक नाटक खेले गये। हाल ही में काश्मीर के प्रसिद्ध कवि व साहित्यक दीनानाथ 'नादिम' द्वारा लिखा हुआ संगीत नाटक "बम्बुर यम्बरज़ल" कलचरल कान्फ्रेंस की तरफ से पेश किया गया है। जिसमें काश्मीर की नाट्यकला को विकसित होने और उसे एक नयी दिशा में मोड़ने का मौका मिला है।

काश्मीरी भाषा-साहित्य की झांकी

अभी तक यह लिखा जा चुका है कि पुरातन काल से काश्मीर के संस्कृत, फारसी एवं अन्य भाषाओं के साहित्यकारों ने कितनी अपूर्व रचनाएं विश्व-साहित्य को दीं। प्रसंगवश यत्र तत्र काश्मीरी में लिखने वाले साहित्यकारों का भी उनमें उल्लेख आया है; किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि काश्मीरी लेखिकाओं एवं लेखकों का पृथक-पृथक वर्णन किया जाय, ताकि यह मालूम हो कि काश्मीर का लोक-साहित्य किस दिशा में और कैसे प्रगति करता रहा। यह बात इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि काश्मीरी भाषा शुरू से ही राज्याश्रय में नहीं पली। इसे सदा ही लोकाश्रय मिला। लोगों को जानने और उनके हृदय की धड़कनों को ठीक से अनुभव करने के लिए काश्मीरी भाषा के साहित्य को जानना आवश्यक है।

इधर जब से काश्मीर में राष्ट्रीयता की चेतना का आदिर्भाव हुआ, लाज़मी था कि यहां की लोकभाषा को अपना गौरवमय स्थान देने का भी संघर्ष किया जाता। यही एक साधन था जिससे जनमानस को आन्दोलित और प्रबुद्ध किया जा सकता था। राष्ट्रीयता का उत्थान होता ही तब है, जब राष्ट्र की भाषा का पुनरुद्धार हो। ऐसी दशा में काश्मीरी जनता काश्मीरी भाषा के पुराने सरमाये की खोज में लगी। साथ ही नए विचारों द्वारा उसे समृद्ध भी करती रही।

उसी साहित्य का, जिसके बिना काश्मीर की कहानी अधूरी रह जाती है, यहां कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है। यह बात अन्यत्र लिखी गई है कि काश्मीरी काव्य-रचना का आरम्भ महिलाओं द्वारा हुआ है। अतः सबसे पहले इस प्रसंग में आप लल्लेश्वरी का नाम पायेंगे।

लल्लेश्वरी या ललद्यद

काश्मीरी महिलाओं के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व की ललनाओं के लिए यह एक गर्व की बात है कि चौदहवीं शताब्दी में काश्मीरी भाषा में काश्मीरी साहित्य का प्रारम्भ एक साध्वी और कवियत्री ललद्यद से होता है। यह वह समय था जब काश्मीर में हजारों वर्षों के हिन्दू शासन का अन्त हो रहा था। संस्कृत साहित्य अवनति पर था और एक नए साहित्य का जन्म हो रहा था।

लल्लेश्वरी या ललद्यद, जिसे लल्लआरिफ़ा भी कहते हैं, चौदहवीं शताब्दी में एक मध्यवर्गीय काश्मीरी घराने में पैदा हुई। इनके प्रारम्भिक जीवन के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त हो सकी है। कहा जाता है कि बारह वर्ष की आयु में ही इनका विवाह पांपुर में एक ब्राह्मण के लड़के से हो गया था। सास बहुत निर्दयी थी, जो लालेश्वरी के साथ बहुत बुरा बर्ताव करती थी। पति भी उसका पक्ष नहीं करता था। अतः उसका घरेलू जीवन बहुत दुखमय था। अन्य महिलाओं की तरह उस समय के सामन्तवादी समाज की चक्की में वह पिस रही थी। हो सकता है कि इन्हीं कष्टों के कारण निराश होकर वह योगिनी बन गई हो और उन्होंने घर छोड़ दिया हो। वह स्थान-स्थान तथा गांव-गांव में घूमने के पश्चात् शैवमत के उपासक स्यदमोल के प्रभाव में आगयी। शैव दर्शन की ज्ञान-प्राप्ति करके वह उसी मत की उपासिका भी बन गयी।

लल्लेश्वरी पढ़ी-लिखी भी थीं। इसके बारे में वह स्वयं ही लिखती हैं।

परान परान जेयताल फजिम,
तसबीह फेरान उंगजि गजिम।

[पढ़ते-पढ़ते मेरी जबान और तालू छिल गये, अर्थात् थक गये। माला जपते-जपते मेरी उंगलियां घिस गयीं।]

आध्यात्मिकता के साथ-साथ कबीर की तरह लल्लेश्वरी ने आत्मा-परमात्मा की एकता, माया का प्रपंच आदि के बारे में बहुत कुछ लिखा है। ईश्वर को पाने के लिए उनमें एक तड़प थी। ईश्वर को खोजने के विषय में वह लिखती हैं :

छांजाम भवनन बेइ श्यन दीशन,
नेब निशान लोबुम न कुन्ने।
पृछाम मलन त बेइ तप र्‌यशन,
तिम ललि नोजि नोजि रिवने।

[मैंने भगवान् की खोज सब जगहों और छः दिशाओं में की। परन्तु

उसका कहीं पता न चला। मुल्ला व तपस्वी मुनियों से भी पूछा, वे बेचारे भी न बता पाये।]

लल्लेश्वरी धर्म की संकीर्णताओं में उलझी हुई नहीं थीं। उनका दृष्टिकोण उदार था। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता की पोषक थीं, इसके बारे में वह लिखती हैं :

शेव छुइ थलि थलि रोजान,
मो जान ब्योन ह्योंद त मुसलमान।
अखई छुक पननुई पान परजान,
सोइ छय साहिबस सीत असली जान।

[शिव (भगवान) हर जगह रहता है, वह सर्वव्यापक है। इसलिए हिन्दू व मुसलमान को अलग-अलग न समझ, दोनों एक हैं। अपनी ही तरह सबको जानने-पहचानने से ही भगवान् को भी समझने में सहायता मिलती है।]

लल्लेश्वरी नाचकर और गीत गाते हुए एक योगिनी की तरह अपनी शिव-भावना का जगह जगह प्रचार करती थी। उनके इस तरह घूमने से मीरा की तरह कुछ पुरातन-पंथियों ने उसके चरित्र पर आरोप लगाए। परन्तु उसका हृदय उदार था। वह खुशी से यह सब कुछ सहन करती थी। इसका जवाब देते हुए वह लिखती हैं :

युस हो मालि गेलम तमस्खर करयम,
सुहा मालि मनस खरयम न जांह।
शिव पजुन यलि मे अनुग्रह करयम,
लूक हुंद ह्यडुन मे करयम क्याह।

[जो मुझपर ताने कसेगा, मेरा मज़ाक उड़ायेगा, बुरा-भला कहेगा, वह मुझे कभी बुरा न लगेगा। जब मेरे शिव मुझपर अपनी दया करेंगे तो लोगों का बुरा-भला कहना मेरा क्या बिगाड़ सकता है?]

एक अन्य कविता में लल्ली कहती हैं कि, "मुझे चाहे कोई दुख दे या सुख। जिसकी इच्छा जो हो, वह करे। अच्छे आदमी मेरी फूलों से पूजा करें, मुझ पवित्र लली का कोई क्या कर सकता है? मेरे दिल में भी वेदना नहीं होगी, अगर मैं सच्चे पथ की पथिक हूं। अपने प्रभु की सच्ची पुजारिन हूं तो बताओ मेरे दर्पण-से मानस पर बुराइयों की धूल क्या ठहर सकती है? नहीं, कभी नहीं!" लल्ली की इन भावनाओं में उस समय के सामाजिक रूप की झांकी भी स्पष्ट मिलती है।

लल्लेश्वरी ने धर्म के प्रचार के अलावा उस समय के मेहनतकशों, किसानों का भी चित्रण किया है। जिससे हम उस समय के सामाजिक ढांचे के अनुसार लल्ली को प्रगतिशील कवियत्री कह सकते हैं। गरीबों के लिए उसे सहानुभूति थी; क्योंकि समाज में उसने बुद्धिमान तथा मेहनतकशों को भूखे मरते देखा था। वह अपने एक वाक्य में लिखती हैं :

गाटुला अख वुछुम बोछि सीत मरान,
पन ज़न हरान पुहुन वाव ।
निशबुद्ध वुछुम वाज़स मारान,
तन लल बु प्रारान छेन्यम ना शाह ।

[मैंने एक बुद्धिमान को भूख से मरते देखा जैसे पतझड़ की हवा से पत्ते झड़ते हैं। एक बेवक़ूफ़ को अपने खाना ठीक न पकाने के कारण बावर्ची को डांटते-फटकारते देखा। तभी से मैं इस दुनिया से विरक्त हो गयी।]

इसके अलावा कहीं-कहीं ललद्यद की रचना में किसानों का चित्रण भी मिलता है :

कैंचन द्युतुथ ओरइ आलव,
कँचन रॉस गई नालई व्यथ ।
कैंचन मस च्यथ अछ लजि तालौ,
कैंचन पपिथ गई हालौ ख्यथ ।

[कइयों को तुमने पुकारा। कई वितस्ता पीकर भी अतृप्त रहे, कई मदिरा पीकर बेहोश रह गये और कइयों की खेती पककर टिड्डियों की भेंट चढ़ गई।]

ललद्यद के काव्य में मानवों की बेबसी भी मिलती है। वह लिखती है :

अथ मना त्राव खर बा,
लूक हंजि कोंग वारि खेय है ।
तति कुस वर दारि थरबा ?
यति ननिस करतल पेयिहै ।

[अपने गधे को हाथ से न जाने दे, कहीं लोगों की केसर की क्यारी को चर न जाये और जब नंगी तलवार पीठ पर गिरेगी, उस समय कौन तुझे सहारा देगा।]

एक ग्रौर कविता में लली कहती है :

ग्रामि पन सोदरस नावि छेस लमान,
कति बोज़ि दय म्योन म्यति दियि तार ।
ग्राम्यन टाक्यन पोन्य ज़न शमान,
ज़ुव छुम ब्रमान घर गच्छहा ।

काश्मीर के वर्तमान प्रसिद्ध कवि "नादिम" ने इसका हिन्दी में निम्नलिखित ग्रनुवाद किया है :

कच्चे धागे सागर-सों में नैया खेवन जाय ।
जो सुन लेते साजन मेरे मुझको ठौर लगाय ।।
माटी के बासन में जल-जों रिस-रिस के बह जाय ।
घर ग्रावन को जिया मेरा तब घड़ी-घड़ी ललचाय ।।

लली के इस वाक्य को ग्रक्सर झील के किनारे हांजी (मल्लाह) गाते हैं।

पत्थर की पूजा के विरोध में लली लिखती है :

देव वटा दिवर वटा,
हेरि बोन छुय ईक वाट ।
पूज़ कस करक हूम बटा,
कर मनस त पवनस संघाठ ।

[ए पत्थर को पूजने वाले ! तू क्या यज्ञ करने वाला है। तुझे चाहिए कि ग्रपने मन-पवन को एक करके सत्य को ढूंढ़]

लल्लेश्वरी ईश्वर ग्रौर मानव को एक रूप में देखती है। वह लिखती हैं :

ग्रसी ग्रॉस त ग्रसी ग्रासव,
ग्रसी दौर करे पतवथ ।
शेवस सोरि न ज्योन त मरुन,
रवस सोरी न ग्रत गथ ।

[हम (मानव) ही भूत में भी थे ग्रौर हमां भविष्य में भी रहेंगे। हमीं ने भूत व वर्तमान में दौड़-धूप की है, खुशियां मनाई हैं। वैसे ही जैसे सूर्य का उदय व ग्रस्त स्थाई है। सारांश यह कि मानव की परम्परा सदा उसे जीवित रखती है ग्रौर जीवित रखेगी।]

लल्लेश्वरी के वाक्यों से हमें पता चलता है कि उन्होंने उस समय के समाज को प्रगतिशील साहित्य दिया है। उन्होंने अपने काव्य में प्राचीन रूढ़िवादी प्रथाओं का विरोध किया है। सभी धर्मों में एकता का पाठ पढ़ाया है, और मानव को प्रेम की शिक्षा दी है। इतना ही नहीं, ललद्यद पहली महिला थी; जिन्होंने काश्मीर में जन-साहित्य का निर्माण किया। क्योंकि उनका काव्य काश्मीरी भाषा अर्थात् जन-भाषा में ही लिखा गया। उनकी रचना में संस्कृत शब्द काफ़ी मिलते हैं।

लल्लेश्वरी हिन्दू तथा मुसलमान दोनों में सर्वप्रिय थीं। मुसलमान उसे लल्ल आरिफ़ा के नाम से तथा हिन्दू ललद्यद के नाम से पुकारते हैं। आज भी उनके वाक्य काश्मीर भर में बड़ी श्रद्धा और चाव से पढ़े जाते हैं।

शेख नूरुद्दीन

शेख नूरुद्दीन या नुंदऋषि के जन्म और कुटुम्ब के बारे में प्रामाणिक रूप से बहुत कम पता चला है। कहा जाता है कि श्रीनगर से ३७ मील की दूरी पर कैमू में इनका जन्म हुआ था। यह भी कहा जाता है कि इनके पिता शेख सालार का सम्बंध एक मशहूर सय्यद हुसैन सोमनानी से था। इस सैय्यद साहब ने इनके पिता को अपनी जाति में ही सम्मिलित कर लिया। शेख सालार ने एक विद्वान व खूबसूरत स्त्री से विवाह किया। यही विद्वान महिला नूरुद्दीन की माता थीं। वह विदुषी थीं। प्रारम्भ में नूरुद्दीन का नाम 'नन्दाह' रखा जो कि काश्मीर के गामीणों में आज भी अति लोकप्रिय है। परन्तु बाद में मीर मोहम्मद हमदानी ने इनका नाम नूरुद्दीन रख लिया। काश्मीर की जनता में आज नूरुद्दीन नुंदऋषि के नाम से ही प्रसिद्ध हैं।

शेख नूरुद्दीन को शिक्षा ग्रहण करने में दिलचस्पी नहीं थी। वह एकान्त में रहना पसंद करते थे और एकान्त में ही अपना अधिकतर समय व्यतीत करते थे।

जब नूरुद्दीन अपनी यौवनावस्था में पहुंचे, तो उनका विवाह कर दिया गया। बाद मे उनके बच्चे भी हो गये। परन्तु शेख नूरुद्दीन को इन सांसारिक बंधनों से कोई लगाव नहीं था। वे अरण्य-जीवन पसंद करते थे। कहते हैं, जंगलों में रहने के लिए वे घर से चल दिये। घर वालों से भी उनका व्यवहार अजीब तरह का था। उनकी माता ने शेख नूरुद्दीन को यात्रा के लिए जब कुछ चीजें देनी चाही तो नूरुद्दीन ने कहा—"अरी अम्मा! ये चीजें तो आप मेरी

छोटी-सी यात्रा के लिए ही दे रही हैं। मेरे पूरे जीवन अर्थात् मृत्यु तक आप मुझे क्या दे सकती हैं ?"

माता ने उनको इस जीवन से पलटने की बहुत कोशिश की; परन्तु सब बेकार रही। कहा जाता है कि एक बार उनकी माता ने उन्हें बहुत बुरा-भला कहा और नूरुद्दीन की पत्नी और बच्चों की जिम्मेवारी लेने तक से इनकार कर दिया; परन्तु फिर भी नुंदऋषि अपनी भक्तिपरायणता से नहीं टले।

शेख नूरुद्दीन अपने काल के एक बड़े रहस्यवादी कवि और दार्शनिक थे। उन्हें किसी जाति या धर्म विशेष का पक्षपात नहीं था। वह पूरी मनुष्यता को प्रेम का पाठ पढ़ाते थे। ज़ैनुल-आबदीन के समय का यह योगी कवि मुसलमानों और हिन्दुओं के साथ एक-सा प्रेम-बर्ताव करता था। अपने जीवन में उन्होंने लोगों को प्रेम और आत्मिकता के आधार पर सांस्कृतिक एकता का पाठ पढ़ाया।

शेख नूरुद्दीन ने भी अपनी कविता जन-भाषा अर्थात् काश्मीरी में ही लिखी। इनकी लिखी हुई पुस्तक 'रिशी नामा' आज भी काश्मीरी जनता में लोकप्रिय है।

नुंदऋषि की कविताओं में हम रहस्यवादी भावना तथा दर्शन पाते हैं। ईश्वर के प्रति गहरा प्रेम इनकी कविता का आधार है। वह एक जगह कहते हैं, "ईश्वर का प्रेमी वह है जो प्रेम में जल जाता है। प्रेमी को भी भला कभी नींद आ सकती है ?

शेख नूरुद्दीन को हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मों के व्यक्ति प्रेम की दृष्टि से देखते थे। हिन्दू उन्हें सहजानन्द के नाम से पुकारते थे।

शेख नूरुद्दीन की चारि शरीफ में ८४२ हिजरी में मृत्यु हो गयी। वह अपनी मृत्यु के बाद अपने बहुत से शिष्यों को भी छोड़ गये थे। कहा जाता है कि शेख नूरुद्दीन की अर्थी के साथ बादशाह जैनुलआबदीन भी थे।

शेख नूरुद्दीन के मकबरे पर जाति-धर्म के बंधन-रहित सभी काश्मीरी तीर्थ यात्रा के लिए जाते हैं और पूजा करते हैं।

हब्बा खातून

चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में काश्मीरी भाषा में हमें लल्लेश्वरी और शेख नूरुद्दीन की रचनाएं मिलती हैं। सोलहवीं शताब्दी में जन-साहित्य का दूसरा दौर शुरू होता है। काश्मीरी साहित्य में यह समय लोल अर्थात् प्रेम-गीतों

का था। इन प्रेम गीतों की सबसे मशहूर कवित्रियां हब्बा खातून और अरनी माल हुई हैं।

हब्बा खातून सोलहवीं शताब्दी के मध्य में श्रीनगर से आठ मील की दूरी पर 'चोन्दाहार' नामक ग्राम में एक किसान के घर पैदा हुई थीं। कहा जाता है कि इनका बचपन का असली नाम 'ज़ून' था। परंपरा के अनुसार हब्बा खातून के पिता अब्दुल राथर ने कुरान आदि पढ़ाने के लिए उसे एक मक्तब में दाखिल करा दिया। जहां हब्बा खातून ने कुरान के अतिरिक्त फारसी कवियों के साहित्य का अध्ययन करना भी शुरू कर दिया, और विशेष तौर पर उसने शेख सादी की करीमा, गुलिस्तान और बोसतान पढ़ी। अपने विद्यार्थी-जीवन में ही उसने कविता की तुकबन्दी शुरू कर दी थी; परन्तु उस समय उसे प्रोत्साहन नहीं मिला।

हब्बा खातून के माता-पिता उसका कवियत्री अथवा गायिका बनना पसंद नहीं करते थे। इसलिए जल्दी ही उनका विवाह एक किसान के लड़के से कर दिया गया। वह गंवार और अशिक्षित था। सुसराल में ललद्यद की ही तरह उसे भी बहुत कष्ट दिये गए। उसकी सास ने उसके प्रेम-गीत गाने पर पाबन्दी लगा दी। उसके पति ने भी कहा कि, "तू इन प्रेम-गीतों को गाकर हमारे घर की इज्जत खाक में मिला देगी। परन्तु हब्बा खातून घर से बाहर खेतों पर, नदियों के किनारे अपनी सखियों के संग गाया करती थी। सुसराल के कष्टों से वह तंग आकर कहती भी हैं:

वारिव्यन सीथ वार छुम नो
चार कर स्योन मालिनो हो !

[सुसराल में मैं सुखी नहीं हूं, ऐ मेरे मैके वालो ! मेरा कोई उपाय सोचो]

हब्बा खातून एक साधारण नारी का हृदय रखती थीं। वह प्रेम-दीवानी थीं। मानव से उन्हें असीम प्रेम था। वह लिखती हैं:

मे करिमस पोशन दस्तै,
कर इयम बालि बाल यार।
दादि तिहिन्द दिल गोम खस्तै,
कर हाव्यम बालि दीदार।

[मैंने फूल के गुलदस्ते चुन रखे हैं। वह मेरा प्रियतम कब आयेगा ? उसकी विरह-वेदना में मेरा हृदय तड़प उठा है, वह मुझे कब दर्शन देगा ?]

हब्बा खातून के हृदय में प्रेम-पीड़ा कितनी गहरी थी, वह नीचे लिखी पंक्तियों से पता चलता है :

रूठि मितिस तस यार सैं।
वनि तोसी म्यानि विलज़ार ॥

[रूठे हुए मेरे प्रिय साजन को कोई मेरे हृदय की कसक और तड़प समझा आवे। उसे (मेरे साजन को) मेरी सौगंध है, वह जरूर आजाये। मैं उसे अपना जीवन अर्पण कर दूंगी।]

हब्बा खातून के गीतों में जहां उसके दुख-दर्द की कहानी वर्णित है। वहां वह उस समय के समाज के दुखः-दर्दों की कहानी भी है।

प्रेम-गीतों की गायिका हब्बा खातून के गीतों में यथार्थ जीवन की झलक है ही, सादापन और भाव-गंभीरता की पुट भी खूब है।

अपने रूप-लावण्य, संगीत-प्रेम और काव्य-प्रतिभा के बल पर वह किसान कन्या होते हुए राजमहिषी बन सकी। कहते हैं, एक दिन जब वह अपनी सहेलियों के साथ खेतों में गीत गा रही थी, तो बादशाह यूसुफ़ शाह ने उसे देखा और उसके संगीत को सुना। बादशाह कलाप्रेमी था ही, वह उसपर मोहित हुआ। उसने हब्बा खातून को पूर्व पति से तलाक़ दिलवाकर अपनी रानी बनाया।

मलिका बनने के बाद हब्बा खातून ने विभिन्न देशों के संगीतकारों को निमंत्रित किया और संगीत में निपुण होने के लिए उसने खूब परिश्रम किया।

हब्बा खातून की रचनाओं से उसके जीवन की झलक मिलती है। अपने समय में उसने श्रीनगर में एक संगीत-विद्यालय की स्थापना की।

अरनीमाल

हब्बा खातून से लगभग दो शताब्दियों के पश्चात् काश्मीरी साहित्य में हम एक और प्रेम-दीवानी महिला अरनीमाल को पाते हैं। हब्बा खातून की तरह उन्होंने भी प्रेम काव्य ही काश्मीरी साहित्य को प्रदान किया।

अरनीमाल श्रीनगर शहर के वातावरण में पैदा हुई थी और मुंशी भवानी दास काचरू से विवाहित होने के बाद अपने पति के घर रैनावारी में रहती थी। उनके पति मुंशी भवानीदास काचरू फ़ारसी के मशहूर लेखक और कवि हुए हैं। उनकी 'बहरे तवील' नामक पुस्तक फ़ारसी काव्य में नाम पा चुकी है। पति का भी शायर होना अरनीमाल के लिए अपनी कविता को बढ़ाने में

सहायक हो सकता था; परन्तु पति का व्यवहार अरनीमाल के साथ बुरा था, यह उनकी रचनाओं से साफ़ दिखाई पड़ता है। सुसराल में अन्य महिलाओं की तरह उसे भी जीवन-यातनाएं सहनी पड़ी हैं।

अरनीमाल अपने भावमय जगत में मानवता से प्रेम करती थी। अपने प्रियतम के वियोग में प्रेमगीत गाती हुई अपनी सखी से वह पूछती हैं; "बोल सखी ! मेरा प्रियतम क्यों दूर रह गया ? मैंने उसके लिए स्नान किया। लेकिन वह बड़ा बेदर्द है। मेरा नहाना-धोना व्यर्थ ही गया। प्रियतम ! तुम्हारा वियोग मुझ से सहन नहीं हो सकता। मैं तुम्हारे बिना मर जाऊंगी। मैं तेरी प्रतीक्षा नहीं कर सकती। मैं तेरे पीछे चलूंगी।"

अन्यत्र कहती है। "मैं घर से तुझ देखने निकली; लेकिन तुम्हें रूठा हुआ पाया। तू ऐसा ही रहे, पर तेरी आयु लम्बी हो।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि अरनीमाल के साथ पति का व्यवहार अच्छा नहीं था। वह घंटों बैठी हुई उसकी प्रतीक्षा किया करती थी और उसका पति जाने कहां-कहां घूमा करता था। वह कितनी निराश थी ? लेकिन फिर भी कहती है, "वह दूसरों का ही बना रहे परन्तु जिन्दा रहे, सुखी रहे, मुझे आश तो है।" उनकी रचनाओं में स्वाभिमान की पुट भी पायी जाती है। पीहर में भावज के ताने सहन नहीं कर सकती। कहती है :

ड्यक रुस बाल वो माल्युन गयायस,
डेक बजि काकनि दिचनम पाम।
अमि खोत कोनुई बो जेवुनुई मयायस,
बागिनि आयस केहिन्द ताम।

[मैं पति से ठुकराई हुई मैके गयी थी। सौभाग्यवती भावज ने मुझे ताने दिये। मैं जन्म से ही मर क्यों न गयी ? यह ताने तो न सुनती !]

अरनीमाल की रचनाओं से ऐसा भी प्रतीत होता है कि प्रेम के पीछे उसने कितनी वेदनाओं को सहा था ! वह लिखती है :

शाम सोन्दर पामन लाजिस
आम तावन कोताह गॉजिस,
नाम पैगाम तस कुस नीत्रे
कर ईये दर्शन मे दीये,

[मेरे साजन ने मुझसे ऐसा दुर्व्यवहार किया कि मुझे सभी ताने देने लगे।

साजन का विरह-ताप मुझे जला-जलाकर गला रहा है। कौन मेरी इस दशा का संदेश उस (साजन) तक पहुंचावेगा? कब आयेगा, वह दर्शन देने!]

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अरनीमाल अपने पिता के घर रहती थीं और चरखा कातकर अपना समय व्यतीत करती थीं। वहां वह अपने सच्चे प्रेम को दर्शाती हुई एक बार कहती हैं, "मेरे पिता के घर फूल खिले हुए हैं। पर मैं यहां अकेलापन महसूस कर रही हूं। तुम फिर भी तो नहीं आते!"

अरनीमाल की रचनाओं में रहस्यवादी और दार्शनिक विचारधारा नहीं पाई जाती। उसमें मानव के प्रति उनका सादा और स्वाभाविक प्रेम टपकता है।

सोलहवीं शदी के उत्तरार्ध में एक और महिला कवित्री रूपभवानी हुई हैं, जिन्होंने धार्मिक काव्य की रचना की।

१९ वीं सदी के आरम्भ में काश्मीरी काव्य-साहित्य पर एक ओर सूफ़ीवाद की छाप पड़ी तो दूसरी ओर भक्तिवाद और शैवमत के दार्शनिक विचारों का रहस्यवाद छाये रहा। इन दो धाराओं के कवियों का इस बात पर एक मत था कि जगत मिथ्या है और मानव का उद्धार अन्तमुंख होने तथा आत्मभाव में खो जाने से ही सम्भव है। भक्तिवाद के इन प्रणेताओं में श्री परमानन्द मट्टन (मार्तण्ड) तथा उनके शिष्य वासुदेव व लक्ष्मणजी नागाम का स्थान बहुत ऊँचा है। श्री परमानन्द का 'सुदामचरित' एवं 'विज्ञान-प्रकाश' शैव दर्शन और भक्तिवाद की विद्वत्तापूर्ण काव्य-रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त कुरीगाम के प्रकाशराम का "रामावतार' और वनपुह के कृष्णराज़दान का 'शिवपरिणय' भक्ति साहित्य की अपूर्व रचनाएं हैं।

जिस समय ये धाराएं जोरों पर थीं, उन्हीं दिनों महमूद गामी ने पंच गंज, यूसुफ़ ज़ुलैखा, लैला मजनूं की प्रेम-कथायें लिखीं। इससे प्रेम-प्रणय के रोमानी गीतों की धारा का फिर से सूत्रपात हुआ और इस मार्ग का अनुसरण करते हुए वली उल्ला मट्टू ने 'हीमाल' और मक़बूलशाह क्रालवारी ने 'गुलरेज़' की रचना की। वहाबपरे का शाहनामा फिरदौसी का अनुवाद भी इसी दौर की कृति है।

महमूद गामी के पश्चात् रसूलमीर ने काश्मीरी में दर्द-भरे गीत लिखे और फिर से प्रकृति और प्रेम को अपनी रचनाओं में प्रधानता दी। इस कवि की रचनाओं में जो मिठास और भाव-सौन्दर्य भरा था, उससे प्रभावित होकर कवि महजूर ने, जो उनके बाद ही काश्मीरी काव्य साहित्य के गगन पर चमकते नक्षत्र की भांति उदीयमान हुए, यह मान लिया कि जो दर्द और सोज़ लेकर रसूलमीर आये थे, महजूर भी उसी वेदना और प्रेम से प्रेरित हैं।

वर्तमान साहित्य

काश्मीर का वर्तमान साहित्य काश्मीरी जनता के राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जीवन के पुनर्जागरण पर आधारित है।

डोगराशाही के सामन्तवादी शासन की मुसीबतों की प्रतिक्रिया के रूप में काश्मीर की आम जनता जाग उठी। हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरणा पाकर काश्मीर में भी राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात हो गया। सामन्तवादी शासन के खिलाफ़ काश्मीर की जनता के इस आन्दोलन से यहां के साहित्यिक भी अछूते नहीं रहे। देश की राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं ने यहां के लेखकों और कवियों को इस बात के लिए विवश कर दिया कि वे जनता को जन-आन्दोलन के लिए तैयार करें। इसीलिए आधुनिक काश्मीरी काव्य काश्मीर की राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को लेकर ही लिखा गया। इस साहित्य की अगुआई करने वाले सबसे अच्छे कवि और साहित्यिक भी जनता में से ही निकले, जिन्होंने लगातार सामन्तवादी शासन की मुसीबतों को झेला। यही कारण है कि उनके गीत देश के समस्त वर्गों विशेषकर किसान और मज़दूरों की आज़ादी की आशा और क्रान्तिकारी भावना से ओत-प्रोत हैं।

काश्मीर का आधुनिक साहित्य जनता की जन-भाषा में लिखा गया और था भी वह जनता ही के लिए। इसमें प्राचीन साहित्य की तरह आत्मा-परमात्मा, माया-प्रपंच तथा संन्यास-वृत्ति के लिए स्थान न था, किन्तु यह था काश्मीरी किसानों व मज़दूरों को जागीरदारों व ज़मींदारों के शोषण के खिलाफ़ जन-आन्दोलन के लिए तैयार करने के निमित्त। मौजूदा साहित्य सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी की तरह केवल प्रेम-गीतों पर ही आधारित नहीं रहा, किन्तु एक नए समाज की स्थापना की भावना को जनता में जाग्रत करने के लिए लिखा गया। जब आजादी के बाद काश्मीर में साम्राज्यवादियों का हस्तक्षेप होने लगा तो काश्मीर के ये कवि और साहित्यिक भी उसका डटकर मुकाबला करने निकले।

गुलाम अहमद महजूर

गुलाम अहमद महजूर का नाम वर्तमान साहित्य में सबसे पहले लिया जाता है। १९३८ ई० से पहले महजूर ने आम जनता की भाषा में प्रेम काव्य ही लिखा। इसमें भी पुरानी शायरी से भिन्न महजूर ने एक स्वस्थ प्रेम की धारा का सृजन किया। काश्मीर के मशहूर कवि 'नादिम' के शब्दों में, "महजूर वह

शायर हैं, जिन्होंने काश्मीरी काव्य को परम्परागत भोंडी उपमाओं और मुहावरों से आज़ाद करके वास्तविक काश्मीरी भावों से सजाया और जो आध्यात्मिकता हमारे काव्य में फारसी काव्य की नकल से (जागीरदारी युग में-ले०) पैदा हुई थी, वह दूर की। महजूर की शायरी की सबसे बड़ी विशेषता उसका स्वस्थ आशावाद है।"

महजूर अपनी प्रेमभरी कविता में लिखते हैं :

मलाल त्राविथ स साल इस्रना।
बु प्याल ससका बरइ हा लालो॥

[अपने प्रियतम से प्रेयसी कहती है कि क्या तुम रूठना छोड़ के, दावत पर नहीं आओगे ? यदि आओगे तो मैं तुम्हारे लिए शराब के प्याले भर भर कर रखूंगी।]

१६३८ ई० के बाद हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नया उभार आया। काश्मीर की मुस्लिम कान्फ्रेंस नेशनल कान्फ्रेंस में बदल गयी। महजूर जैसा जन-प्रिय शायर या कवि इस नई चेतना से अछूता कैसे रह सकता था ? उनके काव्य को भी एक नई दिशा मिली। तभी महजूर ने सामाजिक असमानता पर चोट करते हुए लिखा।

अमीरस ऐश तय शादी गरीबस खान बरबादी।
अमिस मगरूर आसन वालि सुन्द खानँ मिटावुन छुम॥

[अर्थात् अमीर के लिए आमोद-प्रमोद के सभी साधन सुलभ हैं और ग़रीब का घर नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में है। मुझे इस अहंकारी अमीर का घर मिटा के रखना है।]

महजूर केवल मिटाना ही नहीं चाहते; किन्तु निर्माण की ओर भी उनका ध्यान है। वह कहते हैं :

खसुन छुम अब्र लागिथ आसमां, बारान त्रावुन छुम।
बहारस दाद ह्यु न छुम, शोक सान गुलज़ार छावुन छुना॥

[मुझे बादल बनकर आकाश पर चढ़ना है, शीतल वर्षा से अपने बाग (काश्मीर) को सरसाना है और प्रफुल्लित वसन्त के सौन्दर्य का आनन्द उठाना है।]

महजूर हिन्दू-मुस्लिम एकता का जोरदार समर्थन करते हुए लिखते हैं :

साफ़ थाविव सीन मशिराविव फ़साद,
कीन त्राविव दाद्य बाविव पान वान ।
ज़ात-बुतरात काशिरिन हंज छव कुनी,
ख़ागखा दूर्यर म पाविव पान वान ॥
दुध छु मुस्लिम ह्योंद छु शक्कर साफ़ साफ़,
दोद त ब्यथि शक्कर रलाविव पान वान ।

[झगड़े-फ़साद एक तरफ़ छोड़कर एक-दूसरे के सुख-दुख में शरीक हो जाओ । तुम काश्मीरियों की धरती तो एक ही है । इसलिए एक-दूसरे से दूर मत हो । यदि मुसलमान दूध है तो हिन्दू शक्कर । इस दूध और शक्कर को मिलाओ ।]

प्रतीकों के द्वारा महजूर डोगराशाही की गुलाम काश्मीरी जनता को ललकार कर पुकारता है :

करी कुस बुलबुला आजाद पंजरस मंज च नालां छुख ।
चथ पनने दस्त पनन्यन मुश्किलन आसान पैदा कर ॥

[ऐ बुलबुल (काश्मीरी जनता—ले०), तुमको गुलामी के पिंजरे के इस बन्धन से, जिसमें तुम चीख़-पुकार करती हो, कौन स्वतन्त्र करेगा ? अर्थात् कोई दूसरा नहीं कर सकता । तू ही अपने बाजुओं में शक्ति पैदा करके अपनी इन मुश्किलों को आसान कर सकता है अर्थात् आजाद हो सकता है ।]

महजूर को अपने देश की सताई हुई जनता का कितना दुख था :

आलमिक बेमार घर म्योन आइ वापस गइ बलित,
त्रेशिहत पेमित वतन पेठ जू दिवान बेमार मेन ।
म्यानि घरि योद म्यानि बचनुक आसिहे कांह इन्तजाम ॥
फेरहान मा वन्द रांचन दरबदर बेकार मेन,
जन्नतस मंज जाय हासिल करन बापत दिन नियाज ।
बीम करनावान छि स्वर्गस पाइ बड़ि दीनदार मेन ।

[मेरा देश ऐसा है कि मेरे देश में संसार भर के बीमार आए और ठीक हो गये । परन्तु मेरे देश के बीमार रास्तों पर, चौराहों पर प्यासे जान दे रहे हैं । उनके लिए कोई प्रबन्ध नहीं है । हां, अगर मेरे घर पर मेरे बचाव का कोई

इन्तज़ाम होता, तो सर्दी के मौसम में रात को यहां के बेकार देश से बाहर दरबदर न फिरते। लेकिन फिर भी यहां के कुछ दीनदार लोग जन्नत में जगह हासिल करने के लिए नियाज़ दे रहे हैं। ये दीनदार और धर्म के ठेकेदार स्वर्ग का बीमा करा रहे हैं।]

१९४७ ई० के बाद अर्थात् आज़ादी की खुशी में महजूर लिखते हैं :

गट चज गाश आव गाह त्रोव लालन,
संघर मालन प्यव प्रागाश।

[अन्धेरा भाग गया और प्रकाश का उदय हुआ। हमारी पर्वत-मालाएं प्रकाश से मुस्कराने लगीं।]

महजूर अपनी एक और कविता में इस आज़ादी की खुशी को जाहिर करते हुए कहते हैं कि, "हमने बहुत समय के बाद आज़ादी का मुंह देखा है। आज़ादी द्वारा हम खुशहाल हो सकते हैं। पहले हम ज़मीन को जोतते थे, पैदावार बढ़ाते थे। घर के दसों व्यक्ति पानी के घूंट पी-पीकर अपने शरीर को जमीन जोतने में खपा देते थे। लेकिन फसल पैदा होने के बाद ज़ालिम ज़ागीरदार और चकदार एक-एक दाना हमसे छीन ले जाते थे। उन्हें आज तक कब हमारी बुरी हालत पर तरस आया! लेकिन अब जुल्म और शोषण का समय खत्म हो गया। लम्बरदार और चकदार कमजोर हो गये। ये शुभ समाचार हमने अभी-अभी सुना है। अब हम सुख के साथ जीवन व्यतीत करेंगे, अब कोई भी हमें सता नहीं सकता, क्योंकि हमने बहुत समय के बाद आज़ादी देखी है।

आज़ादी की उन्होंने प्रशंसा तो की; किन्तु जब कुछ समय तक काश्मीर में आज़ादी के नाम पर धांधली ही चलती रही, तब जनता का प्रतिनिधि कवि चुप न रह सका। उसने नये राजतन्त्र को भी चेतावनी दी कि जिस प्रयोजन के लिए लोकराज स्थापित हुआ, वह अगर पूरा नहीं किया जाता तो कलाकार की तेज धार उसे भी ललकार सकती है, वह लिखते हैं :

गरीबी मुफलिसी बेबूज सीत ह्यथ खान वीरानी।
अमी रचि् त्रायि असि प्यठ आयि त्रावान सायि आज़ादी॥

[गुर्बत, अफरातफरी और हमारे घरों की तबाही बनकर 'आज़ादी' अपनी छाया हमपर छोड़ने लगी।]

महजूर जंगबाजों पर चोट करते हुए लिखते हैं :

ततित ति छा इनसान मारन बापत, इनसान गरान हथियार,
तततित छा जनानन मासूम बचन प्यठ, इनसान करन बमबार ।

[गुले लाला से संबोधन करते हुए—क्या वहां भी मनुष्य मनुष्य के मारने के लिए शस्त्र बनाता है ? क्या वहां भी स्त्रियों और नन्हे मासूम बच्चों पर मनुष्य बमबारी करता है ?]

नये काश्मीर के इस महान् कवि का जन्म ३ सितम्बर १८८५ ई० में पुलवामा के मित्रीगाम गांव में हुआ। इनके पिता फ़ारसी के विद्वान थे। इन्हें 'त्राल' नाम के गांव में मशहूर विद्वान और कवि मौलाना अली गनाई 'आशिक' के पास पढ़ने का अवसर मिला। यहीं महजूर ने अपनी शायरी का श्रीगणेश किया। १९०५ ई० में महजूर अमृतसर गये। वहां एक विद्वान मौलवी अबीद-उल्ला बिसमिल से फारसी शिक्षा प्राप्त की। अमृतसर में महजूर को शायरों के वातावरण में उठने-बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और यहीं पर इन्होंने अपना उपनाम 'महजूर' रख लिया। यहां इनकी भेंट मौलाना शिबली से भी हुई।

काश्मीर वापिस आकर वे बहुत दिन तक फारसी में ही कविता करते रहे। २९२७ ई० में इन्होंने उर्दू में शायरी करना शुरू कर दिया; लेकिन जल्दी ही महजूर ने यह महसूस किया कि काश्मीरी जनता की सेवा के लिए काश्मीरी भाषा में ही लिखना जरूरी है। तबसे उन्होंने लगातार काश्मीरी में ही कविता लिखने का क्रम रखा। महजूर पटवारी के पद पर सरकारी नौकरी भी करते थे।

अब्दुल अहद आज़ाद

'आजाद' महजूर के समकालीन कवि थे। चालीस वर्ष की आयु में पेट की बीमारी से इनकी मृत्यु हो गई। 'आजाद' की शायरी का काश्मीरी काव्य में एक ऊंचा स्थान है।

'आज़ाद' के लिए जिन्दगी क्या थी ? उन्हीं के शब्दों में सुनिए :

जिन्दगी क्या ? इन्क़लाबन हुंज़ किताब,
इनक़लाबो इनक़लाबो इनक़लाब ।

[जीवन क्या है ? यह क्रान्तियों की एक पुस्तक है, लगातार होने वाली क्रांतियों की।]

आज़ाद सचमुच आज़ाद ही था। वह खुले आम जागीरदारी और नौकर-शाही के ख़िलाफ़ आज़ादी का प्रतीक बन कर ललकारता रहा :

बो नोकर छुस न कांह अफ़सर ल्यख्यम नाक़ाबिलन अन्दर ।

[मैं किसी अफ़सर का नौकर नहीं, जो मेरा नाकाबिल लोगों में नाम लिखे।]

गुलामा छुस न कांह थाव्यम मे पंजरन हांकलन अन्दर।

[मैं गुलाम नहीं हूं कि मुझे कोई पिंजरे में या बेड़ियों में जकड़कर क़ैद रखे।]

इसलिए 'आजाद' राजा व नवाबों को घृणा की दृष्टि से देखता है।

म्यनिश राजाह, नावाबाह, सायलाह अख सायलन अन्दर।

[मेरे लिए राजा और नवाब एक प्रार्थी से ज्यादा नहीं।]

आज़ाद नई दुनिया और नई मन्जिलों की भी बात करता है :

पनन्य नरमी त गर्मी मंजिलन मंज वातनावान छ्यम,
नव्यन मंजिलन त सफरन मंजय नोवुइ दुनिया म्य हावान छ्यम।

[मुझे अपनी गर्मी और जोश मंजिलों तक पहुंचानी है, जो नई मंजिलों और नई यात्राओं में मुझे एक नई दुनिया दिखाती है।]

आज़ाद ने आधुनिक काश्मीरी काव्य में पहली बार भाग्यवाद का खंडन किया और अवतारों तथा पैगम्बरों पर भी विश्वास नहीं रखा। वह जानते थे कि इन्सनान खुद अपने भाग्य का विधाता है। इसीलिए वह कहते हैं :

वोथ पान पनुन संज़ कर बन पान पनुन रहबर
औतार त पैगम्बर, ईवान आस्य पथ काले।

[उठ और अपने उत्थान का स्वयं उपाय कर। तू अपना नेता खुद बन। औतार और पैगम्बर भूतकाल में आया करते थे, आज नहीं।]

आज़ाद ने व्यंग शैली का भी प्रतिपादन किया। काश्मीरी समाज की आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक विषमता पर चोट करते हुए वह लिखते हैं :

त्यमाज़न व क्युत ति म्योनुय पान,
नियाज़न क्युत ति म्योनुय पान।
यिवान यलि ओरमाहि-रमजान,
बिहान म्याने गरे बुम्बरो।

[मुझ जैसे ग़रीबों के लिए ही नमाज़ और नियाज़ का आडम्बर रखा गया है। और जब रमज़ान का महीना आता है, तो वह भी मेरे ही घर आता है।]

दीनदार च्य छुय दीन पनुन, छुम म्य पनुन दीन,
ईमान, मशदन धरमसालन, चोन खुदा खोश।
लोलस त कुनिरस दरदि दिलस राज़ि खुदा म्योन।

[हे धर्म के ठेकेदार, तुम्हारा अपना और मेरा अपना धर्म है। तुम्हारा ईमान खुदा है, और मेरा इनसान। तुम्हारा खुदा मन्दिरों, मसजिदों और धर्मशालाओं में खुश है और मेरा खुदा प्यार, हमदर्दी और एकता में खुश है।]

जागीरदारी और रजवाड़ाशाही में किसान पर शोषण करने वाले तत्व होते हैं पटवारी, फारैस्टर, रेंजर, तहसीलदार तथा साहूकार आदि-आदि। इन-पर भी व्यंग की चोटें देखिये :

यियम यलि राखह फ़ारिस्टर, दिमखनय कॅह अनन रेंजर,
गच्छयम विरि ज्युन ति सरकारी।

[यदि मैं जंगल के गार्ड और फारैस्टर को कुछ नहीं दूंगा, तो वे रेंजर को साथ लायेंगे। और तब मेरी जलाने की लकड़ी भी सरकारी बना दी जायेगी।]

पकन छिम कार बेगारस, बरुन छुम जिन्स सरकारस,
यियम वुगरायि बापारी।

[मुझ से बेगार लेने सरकार के कारिन्दे आ रहे होंगे। मुझे सरकार को मुजविज़ा भी भरना है। और साहूकार भी रुपयों को आता ही होगा।]

आजाद पीरों और मुल्लाओं के शोषण पर भी व्यंग करता है :

पगाह छुम हदियि छुन पीरस, यव्यम कन तोबह तकसीरस,
क़यामच् दोह कर्‌यम यारी—

[कल मुझे पीर साहब को दक्षिणा देनी है, क्योंकि मैं जो गुनाहों का तोबाह करूंगा। उसको वह सुनने की कृपा करेगा। और फिर क़यामत के दिन वह मुझपर रहम खायेगा।]

मजदूर पर होती हुई क्रूरता को भी आज़ाद देखे बिना नहीं रह सका :

शाहान रखतन चूनि जरान खूनि जिगर चोन,
चम ताम दज़इ तति ताप सीत ननवारि मज़ूरो।

[शाहों और अमीरों की चमचमाती वेष-भूषाओं को तो तुम्हारे खून की

बूंदें ही सजाती हैं, और हे मेरे नंगे पांव फिरने वाले मजदूर, तुम्हारा चमड़ा भी कड़ी धूप से जल गया है।]

आज़ाद ने प्रेम-कविता भी लिखी। लेकिन आज़ाद का प्रियतम अपनी प्रेयसी से पुराने किस्सों और सामाजिक जंजीरों को तोड़ कर आज़ाद होने की बात कहता है :

आवि प्रानी कस्स त अफसानै,
थावि ज़ाल्य-ज़ाल्य पंज़र त ज़ोलानै।
छावि यावनुक श्रावुन त हार व्यसिये,
नेरि छावनि गुल त गुलज़ार व्यसिये।

[मेरी प्रियतमे ! पुराने इन किस्से-कहानियों को छोड़ दे और तुम्हें जिन सामाजिक बेड़ियों और पिंजरों ने जकड़ रखा है, उनको जलाकर भस्म कर दे। फिर अपने यौवन के वसन्त को महका दे। मेरी प्यारी! इन खिले हुए फूलों और पौधों का आनन्द तो ले।]

'आज़ाद' को अपने काश्मीर की हर जगह से प्यार था :

स्वर्गच दोद कोल मानिथ त ज़ानिथ, वोंद म्योन छुन मशरावान,
स्यन्दि,, रॅबआरस, व्यथि, वेरनागस, गंगायि त जमुनाये।

[मैं स्वर्ग की दूध की नदियां तो जानता हूं, कितनी पवित्र और मीठी हैं—लेकिन फिर भी मेरा दिल अपनी सिन्धु, वितस्ता (झेलम) वेरीनाग, गंगा और यमुना को नहीं भूल पाता।]

हिन्दू-मुस्लिम एकता पर तो 'आज़ाद' ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है :

होशकर पैदा लोल देवानै, गोश थाव बोज़ अफसानै म्योन,
युथ म्य निश ह्योंद तय त्युथ मुसलमानै।

[हे प्रेम के दीवाने ! ज़रा होश में आ और मेरे इस सन्देश को ध्यान से सुन; मेरे लिए जैसा हिन्दू है वैसा ही मुसलमान है।]

दीन म्योन मिलचार, धर्म यकसाना।

[मेरा धर्म है 'एकता' और मेरा मजहब 'एकजहती'।]

युथ म्यनिश काबा त्युथ छु बुतखानय।

[जैसा मेरे लिए 'काबा' है, वैसे ही मेरे लिए मन्दिर।]

अबदुल सतार 'आसी'

अबदुल सतार 'आसी' एक मज़दूर कवि थे। उन्होंने मज़दूरों के जीवन पर कुछ अच्छी कविताएं लिखी हैं। आसी पहले फ़ारसी भाषा में कविता लिखते थे; लेकिन जनता के प्यार और सेवा की खातिर इन्होंने काश्मीरी में भी काव्य-रचना शुरू की। इन्होंने पहले पहल सामाजिक विषयों—"विधवा" इत्यादि पर कविताएं लिखीं : "विधवा" नाम की कविता का एक मार्मिक अंश यहां प्रस्तुत करते हैं :

हियि-तन नोज़ुक-बदन अख मसवला मन्दरस अन्दर,
ठोकरस निशि आॅस हारान अशि कनि ख़ूने जिगर।

[चमेली के फूल के सदृश्य एक नाज़ुक बदन स्त्री मंदिर में ठाकुर की मूर्ति के सामने आंसुओं के रूप में अपना ख़ून बहा रही थी।]

बाद में स्व० आसी ने मजदूरों और ग़रीबों का प्रतिनिधित्व अपनी कविता में किया। सन् १९४७ के राष्ट्रीय आन्दोलन के बाद आसी ने लिखा :

यिम आस्य गुलाम अज़ताम, तिमनुय छु वोन्य करून राज,
गमगीन दिलन चलन गम, थदि शान काशिर्यन हुन्द।

[जो आज तक गुलाम थे, उन्हें ही अब राज करना है। अब उदास दिलों की उदासी दूर होगी और काश्मीरियों का मस्तक उन्नत होगा।]

मिरजा गुलाम हसन बेग 'आरिफ़'

मिरजा गुलाम हसनबेग 'आरिफ़' भी महजूर के समकालीन कवि रहे हैं और बराबर काव्य-सृजन करते हैं।

'काश्मीर छोड़ो' के राष्ट्रीय आन्दोलन में डोगराशाही की सेना का दमन 'आरिफ़' वर्णन करते हैं :

बगावत करुख नाव आहन त नालन,
जनानन शुर्यन लत मोंड़ कर रिसालन।
दोपुख जेल-खानन नमव सीत वालन,
वुछिथ बेकसन ज़ुलुम आलम त्रचान गव।

[लोगों की आहो फ़रियाद को उन्होंने बगावत का नाम दिया। स्त्रियों और बच्चों को घुड़सवार फ़ौज ने रौंद डाला। उन्होंने कहा कि (क़ैदी)

जेलखानों को नाखूनों से खोद कर फेंक देंगे; और यह दमन और जुल्म देखकर तो दुनिया कांप उठी।]

१९४७ ई० के कबायली हमले के दिनों में 'आरिफ़' ने काश्मीरियों को अपने सुन्दर बाग की रक्षा के लिए पुकारा :

चमन छु लालज़ार म्योन, निशात, शालमार म्योन,
यि ज़ुव यि दिल निसार म्योन, वतन रछ़न छु कार म्योन।
फिदा गच्छुन छि ज़िन्दगी, करव न ज़ांह ति बन्दगी,
ज़रव न जांह दरिन्दगी मरिथ वनान मज़ार म्योन।
वतन रच्छुन छु कार म्योन॥

[मेरा चमन कितना सुन्दर है, फूलों से सुसज्जित! निशात मेरा है। शालामार मेरा है! इन सबपर मेरा दिल और जीवन बलिहारी हो! मेरा काम क्या है? अपने देश की रक्षा ही तो! बलि चढ़ने का नाम ही तो जीवन है और हम कभी फिर झुककर गुलामी का जीवन नहीं बिता सकते, हम कभी भी यह बर्बरता सहन नहीं करेंगे। यह सन्देश तो मर कर मेरा मजार भी कहेगा। मेरा काम है देश की रक्षा।]

इससे आगे निर्माण की ओर भी कवि का ध्यान जाता है :

छु कश्मीर असि पूर जन्नत बनावुन,
गुलामी हुन्दुय दागि लानत मिटावन।
करव पान तामीर आज़ाद कोमुक,
गरव पान तक़दीर आज़ाद कोमुक।

[हम काश्मीर को पूरा स्वर्ग बनाएंगे। गुलामी का काला दाग मिटाकर हम अपने स्वतंत्र राष्ट्र का स्वयं निर्माण करेंगे और इसके स्वतंत्र भाग्य का भी।]

और जब शेख अब्दुल्ला की सरकार गरीबों की समस्याओं को हल करने में असफल रहती है तो कवि 'आरिफ' निराश होकर लिखते हैं :

अवामी राज खोत जीपन त कारन,
वतन फर्याद बोछि ननवोर लारन।
बरिथ आव गर्दि वोननस छुख बुल्योमुत,
छु क्या वोन्य वाठ बाकारन ब्यकारन।

[अवामी राज आज जीपों और कारों पर सवार है। फर्यादी मुट्ठियां भींचे

हुए नंगे पैर कार के पीछे भागता जाता है। उसका मुंह गर्द से ढक गया है। और वही गर्द उससे मानो कह रही है, तू बेवकूफ़ है, अब बाकारों (कार वालों) और बेकारों का आपस में क्या सम्बंध ?]

'आरिफ़' की इस शानदार काव्य-परम्परा के सामने आज हमें यह देखकर दुख होता है कि यही कवि आज उसी रहस्यवाद का दामन पकड़े हुए अपनी रचनाएं करता है जिसकी उन्होंने स्वयं धज्जियां उड़ाई हैं। 'आरिफ़' आज काश्मीर के सांस्कृतिक आन्दोलन से भी दूर हटते जा रहे हैं।

मास्टरजी (ज़िन्द कौल)

श्री ज़िन्द कौल, जो मास्टर जी के नाम से प्रसिद्ध हैं, एक भक्त कवि हैं। वे काश्मीरी काव्य की भक्ति-धारा के शायद अन्तिम कवि हैं। इनकी कविता में हिन्दी शब्दों की खासी पुट है। रहस्यवाद इनका प्रिय विषय है। इसलिए इनकी कविता एक सीमित वर्ग में ही प्रिय है। आयु इनकी ७५ वर्ष से अधिक है। एक कविता "स्मरण पनिन दिचोनम, प्रेमुक निशान व्यसिये" बहुत प्रसिद्ध हुई है। इस कविता का पहला दोहा इस प्रकार है :

स्मरण पनुन दिचोनम प्रेमुक निशान व्यसिये,
रच्छु न तोगुम न रोवुम, श्रोसुम न बान व्यसिये।

[हे सखी, उसने (ईश्वर ने) प्रेम की निशानी के रूप में स्मरण (माला) दी थी, लेकिन आह ! मैं अभागा था, वह प्रेम-चिह्न मैं सुरक्षित न रख सकी। वह मुझसे कहीं खो गया।]

मास्टरजी प्रेम को कहीं-कहीं ईश्वर से भी ऊँचा मानते हैं। अपनी एक कविता में उन्होंने कहा है कि, "हे भव्य प्रेम ! मैंने तुम्हारी शक्ति को देखा और परखा है। अब मैं तुम्हारे बिना भगवान को भी याद नहीं करूंगा। अब तुम आओ मेरे मित्र, और मेरे हृदय में अपना मन्दिर बनाओ। मैं तुम्हारी ही आराधना करूंगा।"

काश्मीरी साहित्य में नया मोड़

श्री दीनानाथ 'नादिम'

स्वर्गीय महजूर ने जिस काश्मीरी काव्य को आधुनिकता प्रदान की; उसी काव्य में श्री दीनानाथ 'नादिम' आज के नए युग का प्रतिनिधित्व और नेतृत्व करते हैं।

श्री 'नादिम' निम्न मध्यमवर्ग से आए हैं। शोषित जीवन का जितना व्यक्तिगत अनुभव उन्हें है और जिस धैर्य और निर्भीकता के साथ वह उस संकटमय जीवन का मुकाबला कर रहे हैं, वह आश्चर्यजनक तो है ही, साथ ही सर्वहारा वर्ग को उससे उत्साह मिलता है।

प्रारम्भ में 'नादिम' उर्दू और हिन्दी में रचनाएं करते थे। इस हिन्दी-उर्दू काल में 'नादिम' की कविताओं पर कहीं-कहीं रहस्यवाद और छायावाद का प्रभाव साफ़ दीखता है। यह कोई अस्वाभाविक-सी बात भी नहीं, क्योंकि यह काल इनके जीवन का शायद विषमतम भाग था। एक ही वर्ष में अपने कुटुम्ब के चार सदस्यों का देहान्त होना और फिर उसके बाद ही प्रिय माता का स्वर्ग सिधारना इसीकी यह प्रतिक्रिया थी। परन्तु इस काल में भी उनकी कविता का मुख्य भाग प्रगतिवादी ही रहा।

'नादिम' ने जल्दी ही यह समझ लिया कि काश्मीरी जनता तक अपना सन्देश पहुंचाने के लिए, उसे काश्मीरी का ही माध्यम अपनाना चाहिए। १९४० ई० में 'नादिम' ने पहली काश्मीरी कविता "मोज-कशीर" (काश्मीर माता) लिखी थी। इस कविता में "देश की निराश जनता को आशा का सन्देश मिला।" इस कविता में लिखा है।

> चय कम्य वोननय, च़ छुख बेकस त बेबस,
> चय कम्य वोननय, छि बुलबुल चॉन्य हारिथ।
> बिहिथ वीराननय मंज़ कॉर मारिथ,
> च़ छख हीमालि हंज़ जि़ठ टाठ हिश कूर।
> तवय छिय नूर आभूषण च्य भरपूर॥

[तुमसे (काश्मीर माता से) किसने यह कहा कि तुम निस्साहय और विवश हो ? तुम्हें यह किसने कहा कि तुम्हारे बुलबुल, वीरानों में अपनी गर्दनें मोड़कर बैठे हुए हैं ? तुम तो हिमालय की बेटी हो, इसीलिए देख, तुम आभूषणों से भरपूर लदी हुई हो।]

१९४७ ई० के कबायली हमले के समय 'नादिम' ने देश के युवकों को शत्रु पर बरसने के लिए ललकारा :

> च़ छुख कशीरि हुन्द जवां, तुलन च्य छुय अलुक निशाँ,
> बुछान च्य कुन छु व्रुस जहाँ—

वुशुन वुशुन वोज़ुल वोज़ुल,
वोज़ुल वोज़ुल वुशुन वुशुन ।
छू खून म्योन,
जवान छुस तूफान ह्यू, तूफान ह्यू जनून म्योन ।
म्य शोख छुम कशीरि प्यठ फिदा गच्छुन त जान द्युन ॥

[गर्म-गर्म और लाल-लाल मेरा खून है। लाल-लाल, गर्म-गर्म मेरा लहू है। मैं जवान हूं, तूफान जैसा और मेरा जनून भी तूफान जैसा है। मेरी यह अभिलाषा है कि मैं अपने काश्मीर पर अपने प्राणों की भेंट चढ़ा दूं।]

"नारै शबाब" (यौवन का नारा) में 'नादिम' सिपाही बनकर गाने लगा :

लडुन छुम महाज़न अन्दर, सरहदन प्यठ,
खयन, खन्दकन प्यठ, वतन, वतपद्यन प्यठ।
पलन प्यठ, कन्यन प्यठ,
ब क़ौमी सिपाह छुस, वतन छुम बचावुन।

[मुझे मोर्चों, सीमाओं, गिरि-गह्वरों में लड़ना है। मुझे चट्टानों और पत्थरों पर लड़ना है। मैं एक राष्ट्रीय सैनिक हूं, मुझे अपना देश बचाना है।]

[तुम काश्मीर के नवयुवक हो। आओ, तुम हल वाले झंडे को उठाकर आगे बढ़ो, सारे संसार की आखें तुम्हारी ओर ही लगी हैं।]

उन दिनों में 'नादिम' की एक कविता "इरादा" काश्मीरी जनता में बहुत लोकप्रिय हुई। यह कविता, लगभग राष्ट्रीय गीत का रूप धारण कर गई।

'नादिम' की सचेत चेतना और तेज दृष्टि ने साम्राजियों के भयानक रूप को जनता के सामने रख दिया। वह लिखते हैं :

छि हुशियार अस्य, दोस दुशमन ति ज़ानौ,
यि कौंसिल, यि अंजमन, यि कमिशन ति ज़ानौ।
निमिट्ज़, मेकनाटन त डिक्सन ति ज़ानौ,
यिमय गाजितिम बेड़ि ब्ययि बम गरव क्याह।
ज़रव मा ज़रव मा, ज़रव मा, ज़रव क्याह ?

[हम सचेत हैं और हम शत्रु और मित्र को पहचानते हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि ये कौंसिल (यू० ऐन० ओ०) कमीशन आदि क्या हैं? और हम ऐडमिरल निमिट्ज़, मैकनान और डिकसड्न को भी जानते हैं कि वे कौन

हैं?......जो जंजीरें सदियों से हमने काट-काट कर समाप्त कीं, क्या उनको हम फिर खुद ही पहन लेंगे? नहीं, कभी नहीं, ऐसा हम बरदाश्त नहीं कर सकते।]

इसके बाद 'नादिम' ने पहला शांति-गीत "बो ग्यव न अज़" (मैं आज नहीं गाऊंगा।)

ब ग्यव न अज़,
ति क्या ज़ि अज़ छि जंगबाज़, जालसाज़ होल गंडिथ।
कशीरि म्यानि ज़ाग ह्यथ।

[मैं रहस्यवादी और प्रेमगीत नहीं गाऊंगा क्योंकि आज धोखेबाज-जंगबाज मेरे काश्मीर को हड़पने के लिए घात लगाए बैठे हैं।]

आगे 'नादिम' "बो दिम न रथ पनुन कनुन" (मैं अपने रक्त को बिकने नहीं दुंगा) शीर्षक की कविता में जंगबाजों को ललकार कर कहते हैं, "मैं अपने रक्त को बिकने नहीं दूंगा। मेरे रक्त में वह १९३१ ई० की आजादी की लड़ाई सुलग रही है। वह १९३८ ई० का जनवादी आन्दोलन उबल रहा है और वह सामन्त-विरोधी आंदोलन ठाठें मार रहा है। तभी मैं अपना रक्त बिकने नहीं दूंगा। क्या मैं उन्हें अपना रक्त बेच दूं जिन्होंने कोरिया को पीस कर खत्म करना चाहा था, जिनके पास अशरफियां हैं, मगर काटने के लिए अजगर भी हैं। मैं उन्हें अपनी प्यारी वितस्ता (झेलम) को नहीं बेचूंगा और न ही अपना उत्पन्न पुत्र वेचूंगा। मैं अपने रक्त को बिकने नहीं दूंगा।

'नादिम' ने काश्मीरी साहित्य को एक और अनुपम देन दी। वह है गीतिरूपक (Opera)। सदियों से चली आती हुई लोककथा के आधार पर 'नादिम' ने एक रूपक—'-बोंबुर यंबरज़ल' (भौंरा और नरगिस) लिखा। काश्मीरी काव्य-साहित्य में यह पहला गीतिरूपक है, जो श्रीनगर में सफलता के साथ खेला भी गया। इसका भाव भी अमन ही है।

'नादिम' ने काश्मीरी काव्य में पहला सॉनेट लिखा—"ज़ून च़ख चोट हिश" (रोटी जैसा चांद उदय हुआ)। इसमें बिल्कुल नई उपमाओं को 'नादिम' ने जन्म देकर काश्मीरी साहित्य को अमर बनाया।

हाल ही में 'नादिम' ने एक और शान्तिगीत "अमन अपीलि प्यठ दस्खत" शान्ति-अपील पर दस्तखत) लिखा है।

काश्मीरी साहित्य के आधुनिक युग के इस प्रवर्तक ने केवल कविता तक ही अपने आपको सीमित नहीं रखा, बल्कि गद्य, लेख, नाटक, कहानी और

आलोचना आदि की ओर भी इन्होंने ध्यान देना शुरू किया है। इनकी कहानी "शीन प्यतो प्यतो" आज संसार की अच्छी कहानियों में गिनी जा सकती है। इनकी इस और एक अन्य कहानी 'जवाबी कार्ड' का हिन्दी में अनुवाद भी हो चुका है।

आज काश्मीर का यह ईमानदार कवि सशक्त और सक्रिय "अखिल काश्मीर अध्यापक मण्डल" का प्रधान है। 'नादिम' स्वयं भी अध्यापक हैं। काश्मीर का अध्यापक आज शायद पहली बार अपनी महत्ता और अभिमान को महसूस करने लग गया है। इसमें 'नादिम' का कितना बड़ा हाथ है। यह समय बतायेगा।

रहमान 'राही'

काश्मीर के आधुनिक प्रतिभाशाली कवियों में 'राही' का नाम प्रायः 'नादिम' के बाद लिया जाता है—और ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

रहमान 'राही' पहले उर्दू में कविता करते थे और उर्दू कवि होने के नाते काफी प्रसिद्ध भी हुए। लेकिन एक सचेत कवि होने के कारण और यहां के राष्ट्रीय आन्दोलन के उभार ने इनको भी काश्मीरी भाषा में ही कविता लिखने के लिए प्रेरित किया। सन १९४९, '५० ई० से 'राही' ने काश्मीरी में कविता लिखनी शुरू की और दो-चार ही वर्षों में इन्होंने काश्मीरी काव्य-गगन में अपना एक निश्चित स्थान बना लिया।

'नादिम' की 'शांति' पर लिखी गई कविताओं के बाद 'राही' ने भी इस भाव पर अपनी लेखनी उठाई और इन्होंने "ब मा जरह" (मैं नहीं सहन करूंगा) की प्रसिद्ध कविता को जन्म दिया। लिखते हैं :

"ब मा जरह; ब मा जरह
अगर शोर ह्यथि कांह ववुन शालमारस
अगर लूठ यच्छि कांह करून लालज़ारस
अगर कांह ज़ज़ुर चानि स्यानिस बहारस—"

[मैं सहन नहीं कर सकता......नहीं सह सकता : यदि कोई मेरे सुन्दर शालिमार बाग में (फूलों के बदले) बारूद बो दे। यदि कोई मेरे पुष्पों से भरे पूरे बाग़ (काश्मीर) को लूटने आए ! यदि कोई मेरे फले-फूले वसन्त को पतझड़ में बदल दे !]

'राही' ने भी मुक्त-छन्द में लिखने का प्रयत्न किया है और काफी सफल रहे हैं। लेकिन इन्होंने 'गजल' के रूप को ही ज्यादा अपनाया है :

"आव सोंतुक वाव बागस यावनज श्यछ बावने,
द्राव साक़ी पान अज़ पैमान लोलुक चावने "

[वसन्त की वायु यौवन का सन्देश बाग को कहने के लिए आई। आज साक़ी खुद मधु-प्याला लेकर प्रेम की हाला पिलाने निकला।]

उर्दू के कवि होने के नाते और फारसी के विद्वान होने के नाते 'राही' की काश्मीरी भाषा पर इन भाषाओं का काफी प्रभाव है; लेकिन अब 'राही' ठेठ काश्मीरी लिखने में खासी सफलता पा चुका है।

अभी-अभी मुक्त-छन्द में 'राही' ने एक बहुत ही सुन्दर कविता की सृष्टि की है। यह कविता हमारे रफ़ूगर (कपड़े के रफू करने वाले कारीगर) से सम्बन्धित है। रफ़ूगर को काम और निर्धनता ने चारों ओर से घेरा है और इस पर सितम यह कि बैसाखी का महोत्सव आता है। सब लोग तांगों, मोटरों, नावों इत्यादि पर 'डल' और 'निशात बाग' की ओर जाते हैं, लेकिन वह कैद है, जा नहीं सकता। कविता का नाम है "वैशाख्य त रफगर" (बैसाखी और रफ़ूगर) कुछ भाग ये हैं :

सोंत कालाह वोत, बालन शानह वोगनेय, पोश फल्य,
आसमानस ऑन-पोट गव, खोश हवावन नाफ़ बोगुर आलमस।
आफताबन होव मोख, यंबरज़लव मस-खास्य बरि......
... ...
आयि परसुक्य पाठ्य वेशाक्य, प्रान्यन हावसन दुबदुब करान,
ड़ेढ़ि अज़ मुचरन निशातस, मारि छोह अज़ शालमारच आबशार।

[बहार आई। पर्वतों के शिखर जैसे उठ खड़े हुए। फूल खिल उठे! आकाश दर्पण जैसा बना। सुगंधि से युक्त पवण ने सारे संसार को नाफा (कस्तूरी) बांटना शुरू किया। सूर्य ने अपना मुंह दिखाया। नरगिस ने अपने प्यालों में हाला उंड़ेलनी आरम्भ कर दी। ....

......पिछले साल की तरह आज फिर 'बैसाखी' आगई, हमारी पुरानी अधूरी अभिलाषाओं को स्पन्दित करती हुई! आज निशात-बाग़ के दरवाज़े खोले जायेंगे—और आज शालामार बाग़ के झरने मचल उठेंगे !!]

'राही' ने कविता लिखने के अलावा कुछ गद्य भी लिखा है। इन्होंने 'गोर्की' की विश्व-प्रसिद्ध कहानी "A Man was Born" का काश्मीरी में "यलि सु थन प्यव" का सफल अनुवाद किया है।

'राही' से काश्मीरी साहित्य को बहुत-सी आशाएं हैं।

नूर मुहम्मद 'रोशन'

नूर मुहम्मद 'रोशन' हमारे पुराने और मंझे हुए प्रसिद्ध काश्मीरी कवियों में से एक हैं। इनकी भाषा को हम शुद्ध-काश्मीरी का नाम दे सकते हैं; और काश्मीरी भाषा पर इनका काफ़ी अधिकार है, आधुनिक काश्मीरी काव्य-साहित्य को 'रोशन' ने संख्या की दृष्टि से काफी कवितायें दी हैं। 'ट्रुक' इनकी नई देन है, जो उर्दू की रुबाई का रूप है लेकिन 'ट्रुक' में व्यंग्य की ही प्रधानता रहती है। इन 'ट्रुकों' की लोकप्रियता इतनी ज़्यादा हो रही है कि कवि-सम्मेलनों में 'रोशन' से पहली मांग—दो-चार 'ट्रुक' कहने के लिए होती है। इन्होंने भी मुख्यतः गज़ल और नज़म के रूपों को ही अपनाया है। लेकिन 'नादिम' द्वारा प्रतिपादित मुक्त-छन्द की छाप से ये भी अछूते नहीं रहे।

'रोशन' ने "शहीदह सन्ज़ मोज" (शहीद की मां) लिखकर एक आश्चर्य-युक्त भाव को काश्मीरी काव्य-साहित्य में भर दिया। 'रोशन' की यह कविता अनुभूति और भावनाओं की दृष्टि से एक अमर कविता कही जा सकती है।... एक शहीद (जिसको देशभक्ति के लिए) महाराजा हरिसिंह के सिपाहियों ने गोली से मारा था के मज़ार पर उसकी मां फूल चढ़ाने और सलाम कहने आई :

"छसय मोज आमच् शहीदो सलामे"

(मेरे शहीद बेटे, तुम्हारी मां तुम्हें सलाम कहने आई है) मां आगे कहती है :

"ज़रत मा च्य वतनच गुलामी ज़रत मा
च्य इफलास, सानी गरीबी ज़रत मा
गरीबन हंजिय आहो ज़ारी ज़रत मा—"

[तुमने अपने देश की गुलामी सहन नहीं की। न तुमने हमारी गरीबी को ही सहन किया। और तुमने अपनी निर्धन जनता के आहों को भी नहीं सहन किया...]

'रोशन' की एक कविता "शांति" पर भी मिलती है : "काशुर ज़रि मा" (काश्मीरी नहीं सह सकता)।

"जंगबाज़ त्रहर्यव, काशुर ज़रि मा"

[जंगबाज़ भयभीत हुआ है और काश्मीरी भी (टक्कर लेने के लिए तैयार है) काश्मीरी सह नहीं सकता (कि काश्मीर जंगी अड्डा बने)।]

कवि होने के अतिरिक्त 'रोशन' आधुनिक काश्मीरी कहानी के जन्मदाताओं में से एक हैं। इनकी दो-तीन ही काश्मीरी कहानियों ने काश्मीर के कहानी-साहित्यको दस क़दम आगे बढ़ाया।

आशा है, 'रोशन' बहुत देर तक काश्मीरी साहित्य को रोशन करते रहेंगे।

अमीन 'कामिल'

अमीन 'कामिल' भी काश्मीरी आधुनिक कवियों में से एक हैं। ये भी 'राही' की तरह पहले उर्दू में कविता लिखते थे—लेकिन इसके साथ ही इन्होंने काश्मीरी भाषा को भी अपनाया। अभी-अभी इन्होंने अपनी काश्मीरी कविताओं का एक संग्रह "मस-मलर" (शराब की लहरें) छाप लिया है। इसमें 'कामिल' की गज़लें, नज़में और मुक्त छन्दों के रूप देखने को मिलते हैं। इनकी कुछ कविताओं पर डाक्टर इक़बाल का प्रभाव—सा झलकता है। लेकिन इनकी मौलिक कवितायें काफी प्रभावित करने वाली हैं, जिनके भाव आधुनिक काश्मीरी जीवन का प्रतिबिम्ब कहे जा सकते हैं। कुछ कविताओं के उद्धरण नीचे दिए जाते हैं:

"या होरकुन या योरकुन" (उस ओर या इस ओर) :—

"छुम साफ बावुन, नोन वनुन, चोक या मधुर बोज़ुन च्य छुय"

[आज मुझे स्पष्ट और दृढ़ता से बोलना है। चाहे मैं मधुर बोलूं या खट्टा—तुम्हें सुनना ही पड़ेगा।]

"हुमि तरफ छी ज़रदार कॅह, छोन् छोन् करान, सोन बॉगरान,
यमि तरफ छी लुख फाक़फर, हम हम करान जानन गिन्दान।
या होरकुन, या योरकुन॥"

[उस ओर तो चन्द पूंजीवाले हैं जो अपनी दौलत को खनखना रहे हैं और सोना बांट रहे हैं। और इस ओर भूखे-तड़पते असंख्य लोग हैं जो अपने जीवनों पर खेलते हैं।

[........या उस ओर रहो, या इस ओर आव !]

एक प्रणय-गीत "यिखना ज़ून गाशे" (काश तुम इस छिटकी चांदनी में आते) में कवि की कोमलता देखिए :

"तोतह बूज़ुम वनान ओस हारे,
आश नय रोज़ि, दूर्यर मारे।

वाति मंज़लिस युसुय पान कारे,
लोलह्-गुल तस फोलन पोशिवारे ॥"

[मैंने सुना, तोता मैना से कह रहा था आशा नहीं रहेगी तो प्रियतमा का विरह मार डालेगा। हां, अपने प्यार की मंज़िल तक वही पहुंचेगा जो प्रेम-परीक्षा में अपनी आहुति देगा। उसी की बगिया में प्यार के फूल खिलेंगे।]

साम्राज्यवादी हैं जो काश्मीर को हड़पने की साज़िश लगातार कर रहे हैं, कवि ने अपनी "होश-खबरदार" कविता में उनके गंदे रूप को स्पष्ट किया है:

"दल्यन तल ह्यथ पकान तिम मौत करतल,
छि खूनक्य दाग़ नन्य तिहज़न ज़चन प्यठ।
तिहुन्द सोन प्रज़लवुन, तल्य कन्य छे सरतल,
म्य क्याह तारन, म्य खोरुम कहवचन प्यठ।"

[वे (जंगबाज़ साम्राजी) अपने दामन में मौत की कटार छिपाए फिरते हैं और उनके वस्त्रों पर अभी खून के दाग़ साफ झलक रहे हैं। उनका सोना तो बाहर से चमकीला लगता है, लेकिन यथार्थ में वह पीतल है। लेकिन वे मुझे क्या धोखा देंगे? मैंने तो उनके उस सोने को कसौटी पर परखा है...]

गुलाम नबी 'फिराक़'

गुलाम नबी 'फिराक़' दो एक वर्षों से ही काश्मीरी काव्य संसार में आए हैं। लेकिन इस अल्प समय में ही इन्होंने यहां के काव्य-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाना शुरू किया है। भाषा पर अभी ज्यादा अधिकार नहीं और गज़ल के रूप को ही अपनाए हुए हैं। हाल ही में मुक्त छन्द की ओर आए हैं। इनकी दो कवितायें बहुत ही प्रसिद्ध हैं: एक "कशीर" (काश्मीर) और दूसरी "साज़-न्दरस कुन" (संगीतकार से)। दोनों के उद्धरण नीचे दिए जाते हैं:—

"ह्योतुन प्रज़लुन यि लोलुक नार, यि नोव यावुन, यि नोव लोकचार,
ड्यकस नोव नूर, दिलस नोव नार, अछिन मंज़ छुम नोवुय खुमार।"

[प्रेम की नई आग चमकने लगी और इसी के साथ नया यौवन और नई जवानी पनपने लगी। मेरे माथे पर नई आभा और हृदय में नई आग सुलग उठी है। मेरी आंखों में (नई मदिरा का) नया खुमार टपकने लगा है।]

इसी कविता (कशीर) में यह दोहा भी मिलता है:

"म्य कननच अज़ छि नव साज़िश, खबर छ्यम नावि कम्य वाजिस,
बु यस्य अथ तावनस लाजिस, सु चलरावन, करस लूरह्-पार।"

[मेरे बेचने की आज नई साज़िश हो रही है। मुझे मालूम है कि मेरे बेचने वाले कौन हैं! मैं उसको भगाकर तहस नहस करूंगी जिसने मुझे बेचने की ठान ली है।]

"संगीतकार" से 'फिराक़' कहते हैं :—

"छु समसारन त्रकुरथुत बुथ, पज़िस अपज़िस छु जंग लोगमुत,
च़ युथ नो पोज़ वनुन त्रावख, खसुन आसी अगर दारस।
नविय मीज़ान गय क़ायिम, जंगक्य अमनक्य जहानस मंज़,
च्य छय ह्यन् काम तोफन हुंज़, नटिस तबलस त सेतारस॥"

[आज संसार का मुंह तमतमा उठा है और सच और झूठ में जंग छिड़ी है। इसलिए तुम सचाई को कभी मत छोड़ना, यदि फांसी पर भी चढ़ना हो! संसार में आज अमन और जंग के नए माप स्थापित हो गए हैं और तुम्हें भी तोपों का काम अपने सितार, तबले और गढ़े से लेना है।]

इस समय काश्मीर में कवियों और लेखकों की एक खासी टोली साहित्य-रचना कर रही है। इनमें प्रेमनाथ 'प्रेमी', अर्जुन देव 'मजबूर', उमेश कौल, मखनलाल 'बेकस' अब्दुल सतार 'रंजूर', आरिज़, चमनलाल 'चमन', अखतर मुहीउद्दीन और सोमनाथ ज़ुत्शी आदि ने काश्मीरी साहित्य में अपना स्थान बना लिया है और कुछ बना रहे हैं। यदि ये लेखक और कवि मिलकर, एकता के दृढ़ आधार पर काम करते रहेंगे तो काश्मीर अपना साहित्य किसी भी विश्व-साहित्य की पंक्ति में कम-से-कम समय में ला खड़ा करेगा। इन सभी लेखकों ने पद्य और गद्य दोनों में अनुपम और कलापूर्ण कृतियां भेंट की हैं।

कुछ काश्मीरी कलाकारों ने अपनी भाषा और साहित्य को समृद्ध करने तथा काश्मीर की सांस्कृतिक परम्परा को क़ायम रखने के उद्देश्य से भारत की राजधानी दिल्ली में काश्मीरी बज़्मे अदब की मार्च १९५३ में स्थापना की।

पिछले दो वर्ष में बज़्म की पाक्षिक तथा विशेष गोष्ठियां होती रहीं, जिनमें बज़्म के अनेक सदस्यों ने अपनी गद्य और पद्य की रचनाएं पढ़ीं। समय-समय पर काश्मीर से आये हुए साहित्यकों और कवियों का स्वागत बज़्म की ओर से किया गया।

बज़्म में जो साहित्यिक और कवि भाग लेते हैं और जिनकी रचनाओं को काश्मीर के साहित्यकों तथा दिल्ली के नागरिकों ने सराहा है वे हैं : श्री विश्वम्भरनाथ कौल—काश्मीरी गद्य तथा आलोचना के सफल लेखक, कविता भी अच्छी करते हैं। श्री शम्भुनाथ भट्ट 'हलीम'—काश्मीरी में कविता और गद्य

साधिकार लिखते हैं। श्री प्रेमनाथ 'हर्मेन',–'ग्रीसकूर' शीर्षक संगीत-रूपक बहुत अच्छा लिखा है। श्री 'कुंदन' काश्मीरी में कविता करते हैं। इनके अलावा श्री खलीलडार 'खलील' भी काश्मीरी में बहुत अच्छी गज़लें लिखते हैं। श्री सोमनाथ साधु ने काश्मीरी में 'पोशिमाल' लिखी है और मुहावरों का संकलन-सम्पादन किया है। गद्य, कथाएं तथा अनुवाद कार्य करने वाले और भी बज़्म के कई साहित्यक काश्मीरी भाषा एवं साहित्व को समृद्ध करने में लगे हैं।

काश्मीर के बाहर और भीतर साहित्य-सृजन का यह कार्य निश्चय ही काश्मीर को सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नति के शिखर पर पहुंचावेगा।

राष्ट्रीय आन्दोलन और नेशनल कान्फ्रेंस

डोगरा शासन के प्रारम्भिक काल से ही काश्मीर की आम जनता की आर्थिक और सामाजिक हालत खराब थी। पठानों और सिखों के शासन-काल की ही तरह इस जमाने में भी जनता पर टैक्सों का बोझ अधिक था। काश्मीर की ९० फ़ीसदी जनता के जीवन व्यतीत करने का मुख्य साधन ज़मीन थी। इस पूरी ज़मीन पर जागीरदारों, ज़मींदारों और बड़े-बड़े साहूकारों का ही अधिकार था। किसानों को इन जागीरदारों की जमीन पर खेत-मज़दूर का काम करना पड़ता था।

राज्य के अफ़सर भ्रष्टाचारी थे और ग्रामीण किसानों पर अत्याचार करने में आनन्द प्राप्त करते थे। इन अफ़सरों के अत्याचार के अलावा महाराजा गुलाब सिंह और महाराजा रणवीर सिंह के शासन-काल में किसानों और खेत मज़दूरों से 'बेगार' नाम की जबरदस्ती मज़दूरी भी करायी जाती थी।

जागीरदारों के अत्याचार से तंग आकर बहुत से किसानों ने दस्तकारी का काम शुरू कर दिया था और बहुत से नौकरियों की तलाश में अपना प्यारा देश छोड़कर चले गये थे।

सदियों की गुलामी और सामन्तवादी शासन के अधीन होने के कारण काश्मीर में उद्योग-धन्धों की प्रगति होना भी सम्भव नहीं था। पशमीने का उद्योग काश्मीर में सबसे बड़ा उद्योग था, जिसमें लाखों गरीब मज़दूरों को सर्दी में काम मिलता था। परन्तु इतना बड़ा उद्योग महाराजा हरिसिंह के काल में नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

सबसे बड़े शाल उद्योग की जब यह हालत हो गयी तो छोटे उद्योगों को

तो इससे भी बुरी हालत थी। कागज़ के काम का उद्योग महाराजा प्रताप सिंह के ज़माने में ही लगभग समाप्त हो गया था। सरकार से कोई सहायता न मिलने के कारण गब्बा, नमदा तथा पट्टू का उद्योग भी अवनति करता गया। इनके अलावा श्रीनगर की जेवरात की कला अर्थात चांदी के काम की भी कोई तरक्की न हो सकी। इन सभी उपर्युक्त उद्योगों के दस्तकारों और कारीगरों की आर्थिक हालत इतनी खराब हो गयी जिसका वर्णन करना मुश्किल है।

अभी भी काश्मीर में उद्योग-धंधों की संख्या बहुत कम है। श्रीनगर में गवर्नमेंट ऊनी मिल, सिल्क वीविंग फैक्टरी, सिल्क फैक्टरी तथा पामपुर की जाइनरी मिल नामक चार कारखाने हैं। इनके अलावा बारामूला में एक मैच फैक्टरी और जम्मू में सरकारी रेशम का कारखाना, गवर्नमेंन्ट सिल्क फैक्टरी तथा जम्मू व काश्मीर ड्रग रिसर्च लैबोरेटरी हैं! इन उद्योग-धंधों के बारे में १६३२ ई० के प्रारम्भ में ग्लान्सी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि, "राज्य की सरकार को उद्योग-धंधों की प्रगति की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। मौजूदा समय में उद्योगों की तरक्की सबसे महत्वशाली काम है। क्योंकि यह बेकारी को दूर करने का एक बहुत अच्छा साधन है।"

काश्मीर में खनिज पदार्थ के अध्याय में हमने यह बताया था कि १६२३ ई० में भूगर्भ-वेत्ताओं की खोज के आधार पर जम्मू व काश्मीर राज्य में बहुत मूल्यमान खनिज पदार्थों का पता चला है। इन खनिज पदार्थों के होते हुए भी डोगरा सरकार ने देश की औद्योगिक उन्नति के लिए कोई कदम नहीं उठाया। बहुत से कारीगर जो घरेलू उद्योग-धंधों पर आश्रित थे, कच्चे माल की कमी के कारण बेकार पड़े हुए थे।

सरकार की आय के मुख्य जरिये कस्टम, चुंगी और जंगलात थे। रेवेन्यू की पूरी आमदनी लगभग दो करोड़ ७५ लाख थी। इसमें से केवल ६१ लाख रुपये जन-कार्यों पर खर्च किये जाते थे। ४१ लाख शासन-प्रबंध में खर्च होते थे और लगभग एक करोड़ रुपया महाराजा और उसके कुटुम्भ के ऐश-आराम के लिए खर्च होता था। बाकी रुपया डोगरा फौज पर खर्च होता था, जिससे महाराजा के सामन्तवादी शासन की रक्षा तथा जनता के आन्दोलन को दबाने का काम लिया जाता था।

इन्हीं आर्थिक व सामाजिक हालात में काश्मीर के राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरूआत होती है।

१६३० ई० में श्रीनगर में उच्च-वर्ग व मध्य-वर्ग के मुसलमानों के शिक्षित

नौजवान सरकारी नौकरियां न मिलने के कारण बेकार थे। उनमें से कुछ शिक्षित मुसलमानों ने फतहकदल अर्थात् झेलम के तीसरे पुल के पास एक रीडिंग रूम स्थापित कर लिया। इसी रीडिंग रूम के द्वारा इन नवयुवकों ने राजनैतिक कार्यों में भी भाग लेना शुरू कर दिया।

११ सितम्बर १९३० ई० को फतहकदल रीडिंग रूम के तीन सदस्य मुसलमानों की नौकरियों के बारे में शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में महाराजा की कार्यकारिणी से मिले। शेख अब्दुल्ला कुछ समय पहले अलीगढ़ विश्व-विद्यालय से एम० एस-सी० की परीक्षा पास करके काश्मीर लौटे थे और फतहकदल रीडिंग-रूम के सरगर्म कार्यकर्ता बन गये थे।

यह वह समय था जबकि हिन्दुस्तान में वहां की सबसे बड़ी संस्था कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास कर दिया था और अंग्रेज़ों के विरुद्ध असहयोग-आन्दोलन छेड़ दिया था। इसके अलावा लाहौर में राज्यों के प्रतिनिधियों की भी कान्फ्रेंस हुई थी, जिसमें काश्मीर के नौजवानों ने भी हिस्सा लिया था। यही काश्मीरी नवयुवक एक नयी भावना और जोश लेकर स्वदेश लौटे थे।

फतह कदल रीडिंग-रूम के सदस्य आन्दोलन शुरू करना चाहते थे। परन्तु उस समय मंच पर भाषण देने की आज़ादी नहीं थी और अखबार निकालने की भी स्वतंत्रता नहीं थी। इन हालात में वे अपने लेख तथा समाचार लाहौर के अखबारों में ही प्रकाशित कराते थे।

जल्दी ही रीडिंग-रूम के इन सदस्यों के साथ जामा मसजिद के मीरवाइज़ मौलवी यूसुफ़शाह मिले। मुसलमानों में इनका काफी प्रभाव था। काश्मीरी मुसलमानों के प्रतिनिधि चुनने के लिए २१ जून, १९३१ ई० को रीडिंग-रूम पार्टी के सदस्यों ने एक मीटिंग बुलाई, जो कि प्रारम्भिक आन्दोलन के इतिहास की एक महत्वशाली सभा थी। इस मीटिंग में सात प्रतिनिधियों में से एक शेख अब्दुल्ला और दो सदस्य जामा मसजिद के मीरवाइज यूसुफ़शाह तथा मीरवाइज़ हमदानी थे। इसी मीटिंग के बाद एक दुर्घटना हो गई। एक विदेशी मुसलमान पठान अब्दुलकदीर को सरकार के विरोध में भाषण देने के अपराध में गिरफ़्तार कर लिया गया।

१३ जुलाई १९३१ ई० को अब्दुल कदीर के मुकद्दमे के समय हज़ारों की संख्या में मुसलमान जेल के दरवाजे पर जमा हो गये। यह भीड़ जब पुलिस के काबू से बाहर हो गई, तो पुलिस ने गोली चलानी शुरू कर दी। जिसमें बहुत से मुसलमान मारे गये तथा अनेकों घायल हुए।

राजनीतिक और ऐतिहासिक तौर पर १३ जुलाई काश्मीर के राष्ट्रीय आन्दोलन का सबसे महत्वपूर्ण दिन माना जाता है। आज भी नेशनल कान्फ्रेंस प्रति वर्ष १३ जुलाई को शहीदों के दिन के नाम से मनाती है।

वास्तव में १३ जुलाई १९३१ ई० का आन्दोलन आम मुसलमानों की असंतुष्टि के कारण सरकार के विरुद्ध था। हिन्दुओं के खिलाफ नहीं था। हां, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस आन्दोलन का नेतृत्व मुसलमानों के उच्च वर्ग तथा साम्प्रदायिक व्यक्तियों के हाथ में था।

१३ जुलाई १९३१ ई० के बाद लोगों में बेचैनी और असन्तोष बढ़ने लगा। इन झगड़ों की जांच-पड़ताल करने वाली दलाल कमेटी से भी शेख अब्दुल्ला आदि मुस्लिम-नेताओं ने सहयोग नहीं किया। इस तरह सरकार से झगड़ा बढ़ता ही गया। अब जनता भी आन्दोलन में आ चुकी थी और सामन्त-वादी शासन को समाप्त करने पर तुली हुई थी। कानून के द्वारा जनता को दबाने का भरसक प्रयत्न किया गया; परन्तु सब बेकार रहा। काश्मीर के इस प्रारम्भिक आन्दोलन के समय आन्दोलन की बागडोर उच्च व मध्य वर्गों के हाथों में थी। इन उच्च वर्ग के लोगों ने ही अपने स्वार्थ के लिए आन्दोलन में साम्प्रदायिकता का बीज बो दिया था। परन्तु आन्दोलन के दौरान में कुछ नौजवान कार्यकर्त्ता अवश्य ऐसे पैदा हो गये थे जो जनता के साथ थे।

ग्लान्सी रिपोर्ट के प्रकाशित होने के बाद और १९३२ ई० की गर्मियों में मुस्लिम-नेताओं ने यह सोचा कि तमाम मुसलमानों के स्वार्थों की रक्षा करने के लिए एक संस्था कायम की जाय। इसीलिए १९३२ ई० में आल जम्मू व काश्मीर मुस्लिम कान्फ्रेंस की स्थापना हो गयी। जिसका सबसे पहला अधिवेशन १५, १६ व १७ अक्तूबर १९३२ ई० को श्रीनगर में हुआ। इस अधिवेशन में हजारों की संख्या में लोगों ने हिस्सा लिया था।

आल जम्मू व काश्मीर मुस्लिम काफ्रेंस १९३२ ई० से जून १९३८ ई० तक कायम रही। इस काल में अधिकतर मुस्लिम-कान्फ्रेंस का इतिहास अपने स्वार्थों के लिए उच्च वर्ग और मध्य वर्ग के मुसलमानों के संघर्ष का ही इतिहास रहा। परन्तु जनता अब इन तत्वों को समझती जा रही थी। ग्लान्सी कमीशन की सिफारिशों के अनुसार भी उच्च वर्गों के व्यक्तियों को ही लाभ हुआ था। इसी वर्ग के शिक्षित नौजवान सरकारी अफसर तथा अन्य पदों पर नियुक्त हो गये थे। इन अफसरों ने भी डोगरा-शासन के हिन्दू अफसरों की तरह किसानों पर अत्याचार करने शुरू कर दिये थे। कहने का तात्पर्य है कि आम

जनता की हालत में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसीलिए जनता के दबाव से काश्मीर के आंदोलन ने धीरे-धीरे राष्ट्रीय जन-आन्दोलन की शकल धारण करना शुरू कर दी। मुस्लिम कान्फ्रेंस के शुरू के दस्तावेजों में भी यह लिखा हुआ है कि, "काश्मीर का आन्दोलन साम्प्रदायिक नहीं है, किन्तु जनता के सभी वर्गों की समस्याओं को हल करने का आन्दोलन है। हम अपने हिन्दू और सिख भाइयों को यह आश्वासन दिलाते हैं कि हम मुसलमानों की तरह उनकी भी सहायता करने के लिए तैयार हैं। हमारा देश प्रगति नहीं कर सकता जबतक कि हम साथ-साथ रहना नहीं सीखेंगे।"

८ मई १९३६ ई० को मुस्लिम कान्फ्रेंस ने प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना के लिए पूरे राज्य में एक दिवस मनाया। कान्फ्रेंस के सभापति ने इस दिन को सफल बनाने के लिए हिन्दू और सिखों से अपील की। इस अपील के अनुसार काश्मीर के बहुत से स्थानों में भाषण देने वाले विशेष तौर से हिन्दू और सिख थे। इतना ही नहीं, १९३६ ई० में काश्मीर यूथ लीग नामक नौजवानों की एक संस्था भी कायम हुई, जिसमें जाति-धर्म के भेदभाव के बिना कोई भी शामिल हो सकता था। अगस्त, १९३७ ई० में श्रीनगर में जनता की अगुआई करने वाले मज़दूर और किसानों की मज़दूर सभा तथा किसान सभा की भी स्थापना हो गई। नवम्बर, १९३७ ई० में काश्मीर में विद्यार्थियों की कान्फ्रेंस भी हुई।

२६ मार्च १९३८ ई० में जम्मू व काश्मीर मुस्लिम कान्फ्रेंस के छठे अधिवेशन में सभापति ने अपने भाषण में निम्नलिखित विचार प्रगट किये थे।

"हमारी तरह हिन्दू और सिखों की बहुत बड़ी संख्या इस सामन्तवादी शासन में अनेकों मुसीबतें झेल रही है। वे भी राज्य का टैक्स और साहूकार का कर्जा अदा करते हैं और भूखे मरते हैं। जनता के राज्य का कायम होना उनके लिए भी उतना ही जरूरी है, जितना हमारे लिए। जल्दी या बाद में एक दिन उन्हें भी हमारे साथ मिल कर काम करना है। कोई भी गलत प्रचार उन्हें हम से अलग नहीं कर सकता"।

उन्होंने आगे कहा :

"मैं आज फिर उस बात को दुहराता हूँ जो अक्सर मैं कहता रहा हूं। सबसे पहले हमें राजनीतिक समस्याओं पर विचार करते हुए मुसलमान और गैर-मुसलमानों के भेदभाव को मिटाकर साम्प्रदायवाद को समाप्त करना चाहिए। आप यह शिकायत करते हैं कि हिन्दुओं के स्वार्थ सामन्तवादी शासन से सम्बंधित हैं और वे प्रतिक्रियावादी हैं तथा हमारी प्रगति में बाधक हैं। लेकिन क्या हमें

जागीरदार और उच्च वर्गों के मुसलमानों का भी वही अनुभव नहीं है ? बहुत-सी मुसीबतों के बावजूद कुछ हिन्दू व सिखों ने हमें सहयोग दिया है चाहे उनकी संख्या कितनी भी कम हो। उनकी लगन और नैतिक साहस हममें शक्ति प्रदान करता है। इसलिए हमें उन हिन्दू और सिखों के लिए दरवाजे खोल देने चाहिए जो हमारी ही तरह सामन्तवादी-शासन को समाप्त करने तथा अपने देश की आजादी में विश्वास रखते हैं।"

२८ जून १९३८ ई० को श्रीनगर में मुस्लिम कान्फ्रेंस की कार्यकारिणी ने ५२ घण्टे की गर्मागर्म बहस के बाद निम्नलिखित प्रस्ताव पास कर दिया।

"कार्यकारिणी के विचार में अब वह समय आ गया है जब कि देश की समस्त प्रगतिशील शक्तियां जनता की सरकार कायम करने के संघर्ष में एक झण्डे के नीचे इकट्ठी हो जायें। कार्यकारिणी कान्फ्रेंस की जनरल कौंसिल से सिफ़ारिश करती है कि आगामी वार्षिक अधिवेशन में संस्था के नाम और विधान में इस प्रकार परिवर्तन और संशोधन किया जाय ताकि वे सब व्यक्ति जो इस राजनीतिक संघर्ष में भाग लेना चाहते हैं, बिना जाति-धर्म के भेदभाव के कान्फ्रेंस के सदस्य बन सकें।"

इसी उपर्युक्त कार्यकारिणी के प्रस्ताव के आधार पर १० जून १९३९ ई० को मौजूदा स्वास्थ्य और शिक्षा मंत्री गुलाम मोहम्मद सादिक के सभापतित्व में मुस्लिम कान्फ्रेंस का एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया। इस सम्मेलन में १७६ प्रतिनिधि मौजूद थे। १० जून की रात्रि की गर्मागर्म बहस के बाद ११ जून के प्रातः २ बजे कार्यकारिणी का प्रस्ताव पास हो गया और मुस्लिम कान्फ्रेंस से नेशनल कान्फ्रेंस की स्थापना हो गयी।

११ जून १९३९ ई० राज्य के इतिहास में सबसे महत्वशाली दिन माना जाता है क्योंकि इसी दिन से काश्मीर की जनता का असली राष्ट्रीय आन्दोलन शुरू होता है।

इसी नेशनल कान्फ्रेंस के नेतृत्व में १९४४ ई० में 'नया काश्मीर' के नाम से देश के लिए कार्यक्रम बनाया गया। यह कार्यक्रम डोगरा सामन्तवादी शासन और जागीरदारी व चकदारी को काश्मीर से सदा के लिए समाप्त करने का ही कार्यक्रम था। किसानों, मज़दूरों, कारीगरों तथा बुद्धिजीवियों ने इस कार्यक्रम में अपनी आज़ादी और सच्चे जनतन्त्र को पाया। इसीलिए सामन्तवादी शासन को जड़ से खत्म करने के संघर्ष के लिए सब एक हो गये।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद जब हिन्दुस्तान की तमाम जनता अंग्रेज साम्रा-

जियों के खिलाफ उठ खड़ी हुई, तब काश्मीर की जनता भी पीछे नहीं रही। १९४६ ई० की गर्मियों में महाराजा के सामन्तवादी-शासन को समाप्त करने के लिए नेशनल कान्फ्रेंस ने 'काश्मीर छोड़ो' का नारा लगा दिया। महाराजा की पुलिस और उसके अंग्रेज अफसरों के अत्याचार को बरदाश्त करते हुए हजारों की संख्या में काश्मीरी लोग जेलों में गये।

इस "काश्मीर छोड़ो" आन्दोलन ने डोगरा शासन की नींव को हिला दिया। हिन्दुस्तान की जनता की पार्टियों ने भी इस आन्दोलन को पूरी सहायता दी। नेशनल कान्फ्रेंस के लगभग सभी नेताओं को जेलों में डाल दिया गया, परंतु जनता पीछे नहीं हटी।

अगस्त १९४७ ई० में हिन्दुस्तान की जनता के आन्दोलन के दबाव से अंग्रेज़ हिन्दुस्तान छोड़ने के लिए मजबूर हो गये। परन्तु हिन्दुस्तान को राजनीतिक ताकत देने के साथ-ही-साथ देश को हिन्दुस्तान व पाकिस्तान नाम के दो भागों में विभक्त कर दिया। इसलिए अन्य राज्यों की तरह काश्मीर के महाराजा के सामने भी यह समस्या खड़ी हो गई कि वह पाकिस्तान में शामिल हो या हिन्दुस्तान में! अंग्रेज-साम्राजियों ने काश्मीर के महाराजा को आजाद रहने की सलाह दी।

साम्राजियों की सलाह पर महाराजा हरिसिंह के "आज़ाद काश्मीर के विचार का प्रजापरिषद के मौजूदा नेताओं ने भी समर्थन किया।

परन्तु महाराजा के इस "आज़ाद काश्मीर" के नारे को काश्मीर की जनता और हिन्दुस्तान की जनता सहन नहीं कर सकती थी। स्वयं भारत की सरकार भी काश्मीर को बाकी हिन्दुस्तान से अलग करने के लिए तैयार नहीं थी।

जनता के दबाव से महाराजा हरिसिंह को कांग्रेस के नेताओं से बातचीत शुरू करनी पड़ी। परन्तु अंग्रेज़ इस बातचीत के विरुद्ध थे। महाराजा भी अपनी डावांडोल अवस्था में था और नेशनल कान्फ्रेंस के देशभक्त राजनीतिक नेता जेलों में पड़े हुए थे। परन्तु बाद में जनता के दबाव के कारण महाराजा ने उन्हें जेल से रिहा कर दिया।

काश्मीर की इस स्थिति का लाभ उठाकर और काश्मीर को जबर्दस्ती हथियाने के विचार से, २० अक्तूबर, १९४७ ई० को अंग्रेज़ों ने पाकिस्तान सरकार से काश्मीर पर हमला करा दिया। इन कबायली हमलावरों ने मुजफ्फराबाद, ऊड़ी, बारामूला और पट्टन को अपने अधिकार में कर लिया। इन

कस्बों में आग लगाकर वहां के व्यक्तियों का कत्ले-आम और नव युवतियों और महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया।

जनता की मेहनत पर आनन्द लूटने वाला महाराजा हरिसिंह, जनता को इन कबायली हमलावरों के पंजे में छोड़कर स्वयं जम्मू भाग गया और आक्रमणकारी श्रीनगर के दरवाज़े तक पहुंच गये।

काश्मीर के इतिहास के इस बुरे समय में नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यकर्त्ता ही थे, जिन्होंने आगे आकर राज्य के शासन-प्रबन्ध की बागडोर अपने हाथ में ले ली। नेताओं ने हमलावरों से टक्कर लेने और पूरे देश की रक्षा के लिए जनता को पुकारा। हज़ारों की तादाद में काश्मीरी लोग जो "नया काश्मीर" की स्थापना के लिए संघर्ष कर रहे थे, अपने-अपने घरों से निकल पड़े। उन्होंने यह महसूस किया कि ये हमलावर हमारे आन्दोलन को नष्ट कर देंगे। वे यह भली-भांति समझ गये थे कि अपने खूबसूरत देश को बचाने से ही वे 'नया काश्मीर' के स्वप्न को पूरा कर सकेंगे। महाराजा के भाग जाने से भी उनमें एक जोश पैदा हो गया। क्योंकि वे यह जानते थे कि अब महाराजा को दुबारा गद्दी पर नहीं बैठने दिया जायेगा। इसलिए किसान, मजदूर, दस्तकार, कलाकार, विद्यार्थी तथा देशभक्त बुद्धिजीवी अपने-अपने फ़ौजी दस्तों में हथियारों सहित शहर को बचाने के लिए तैयार हो गये। इन कबायली हमलावरों से लड़ते हुए बहुत से कार्यकर्त्ता और देशभक्त अपने देश की आज़ादी की रक्षा करते हुए शहीद हो गये। इन शहीदों में से एक नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यकर्त्ता महमूद मकबूल शेरवानी का नाम काश्मीर के इतिहास में अमर रहेगा। शेरवानी एक महीने पहले ही महाराजा की जेल से छोड़े गये थे। कहा जाता है कि श्रीनगर को बचाने में उनका बहुत बड़ा हाथ था। कबायलियों ने शेरवानी को एक खम्भे से बांध दिया और गोली का निशाना बांधते हुए उससे नेशनल कान्फ्रेंस की जगह 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे लगाने के लिए कहा। किन्तु देशभक्त शेरवानी ने निर्भय होकर 'हिन्दू-मुस्लिम एकता ज़िन्दाबाद' के नारे लगाये। इस नारे के साथ ही हमलावरों की कई गोलियों ने उसके शरीर को छेद दिया। शेरवानी की यह कहानी जब पूरी घाटी में फैली तो काश्मीरी जनता में दुशमन के खिलाफ गुस्सा और जोश पैदा हो गया। आज भी प्रत्येक काश्मीरी देशभक्त शेरवानी का नाम प्रेम और इज्ज़त के साथ लेता है। शेरवानी के अलावा एक अन्य देशभक्त मास्टर अब्दुल अज़ीज़ थे, जो मुजफ्फराबाद में कबालियों से लड़ते हुए मारे गये थे।

जब कबायली हमलावर श्रीनगर के आस-पास पहुंच गये तो नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं ने भारतीय सरकार से फौजी सहायता मांगी। शेख अब्दुल्ला तथा अन्य नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं की सलाह पर और उन्हीं की मौजूदगी में महाराजा हरिसिंह से जरूरी दस्तावेजों पर हस्ताक्षर कराकर भारत सरकार ने काश्मीर को बचाने के लिए भारतीय सेना भेज दी।

भारत की सेना ने बहुत जल्दी काश्मीर के हिस्सों को कबायलियों से मुक्त कराना शुरू कर दिया और जब काश्मीर के दो तिहाई भाग को भारतीय सेना ने जीत लिया तो गिलगित को साम्राजियों के अधीन करने के उद्देश्य से उन्हीं की सलाह पर यू० एन० ओ० की सुरक्षा-परिषद ने १ जनवरी १६४६ को युद्ध बंद करा दिया। यहां यह बता देना भी जरूरी है कि भारत के प्रधान मंत्री काश्मीर का मसला पहले से ही यू० एन० ओ० के सुपुर्द कर चुके थे।

इस काश्मीर के दो-तिहाई भाग पर नेशनल कान्फ्रेंस के नेतृत्व में एक सरकार कायम हो गयी जिसके पहले प्रधान मंत्री शेख अब्दुल्ला बने।

आज़ादी और उसके बाद

कबायली हमले ने काश्मीर की आर्थिक स्थिति को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। अधिकतर काश्मीरी ज़मीन, दस्तकारी, व्यापार तथा यात्रियों पर ही आश्रित रहते थे। आक्रमणकारियों ने किसानों की फसलों और उनकी जमा की हुई पैदावार को जलाकर खत्म कर दिया था। इस युद्ध के दौरान में किसान आसानी से अपनी खेती का काम भी नहीं कर सकते थे।

कबायली लड़ाई के कारण यहां के शिल्पकारों तथा बुनकरों को नये माल की कमी होने से अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। झेलम वैली रोड के बन्द हो जाने से काश्मीर के व्यापार तथा अन्य उद्योग-धन्धों को भी बहुत धक्का लगा, क्योंकि झेलम वैली रोड बर्फ के मौसम में भी खुली रहती थी। जिससे काश्मीर और हिन्दुस्तान का रास्ता हमेशा खुला रहता था। इसीके कारण फलों के उद्योग का भी भारी नुकसान हुआ। इस तरह अचानक आने-जाने का रास्ता बन्द हो जाने से नमक, चीनी, कपड़ा तथा मिट्टी का तेल आदि आवश्यक वस्तुएं मंहगी हो गयीं।

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के इस झगड़े के दौरान में अर्थात १९४८-४९ ई० में देश-विदेश के टूरिस्टों की संख्या भी बहुत कम हो गयी। इन हालतों में टूरिस्टों पर ही अपना जीवन बसर करने वाले लोगों की आमदनी का कोई साधन नहीं रहा। शिकारे वाले, तांगे वाले तथा टूरिस्टों से संबन्धित अन्य पेशे-वर व्यक्तियों को अपना तथा अपने कुटुम्ब का जीवन चलाना मुश्किल हो गया!

उपर्युक्त कारणों से १९४८-४९ ई० में काश्मीर में एक भयानक आर्थिक संकट था और नेशनल कान्फ्रेंस की सरकार को शासन की बागडोर सम्भालते ही इन सब कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ा। नेशनल कान्फ्रेंस की सरकार कायम होने पर काश्मीर की जनता को यह आशा

थी कि वह 'नया काश्मीर' कार्यक्रम को जल्दी ही कार्य-रूप में परिणत करेगी जो कि उनकी आर्थिक समस्याओं को हल करके खुशहाली का जीवन बना देगा। लेकिन नेशनल कान्फ्रेंस में अवसरवादी और ऐसे स्वार्थी लोगों ने आना शुरू कर दिया, जो राष्ट्रीय आन्दोलन के समय सामन्तवादी-शासन के साथ थे। इन्हीं अवसरवादियों ने नेशनल कान्फ्रेंस को एक नौकरशाही संस्था में बदल दिया और आम जनता को फिर मुसीबतों का सामना करना पड़ा।

इसमें कोई संदेह नहीं कि नेशनल कान्फ्रेंस की सरकार ने जनता की खुशहाली के लिए बहुत से सुधार किये। सरकार ने बिना मुआवज़ा जागीरदारी व चकदारी ख़त्म करने और ज़मीनें किसानों में बांटने का बीड़ा उठाया। जनता से कर्ज का बोझ कम करने के लिए डैट कान्सीलियेशन-बोर्डों की स्थापना की। आवश्यक वस्तुओं को लाने तथा व्यापारिक माल को बाहर भेजने के लिए स्वयं अपनी मोटर बसें चालू की। कारीगरी और बुनकरों की चीज़ों को बेचने के लिए हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न शहरों में एम्पोरियम कायम कर दिये। सुधारों को कानूनी शक्ल देने के लिए एक विधान-सभा कायम की, जिसके सभापति श्री गुलाम मोहम्मद सादिक चुने गये। इस विधान-सभा द्वारा डोगराशाही के खानदानी शासन को समाप्त कर दिया गया। विधान सभा ने यह पास कर दिया कि राज्य के सबसे ऊंचे पद के लिये भी विधान-सभा द्वारा चुनाव किया जायगा, जिसे 'सदरे रियासत' के नाम से पुकारा जायगा।

इसमें कोई शक नहीं कि उपर्युक्त सुधार प्रगतिशील थे। परन्तु जनता की समस्याओं के सामने बहुत थोड़े थे और इन सुधारों को भी जनता के सहयोग तथा सही तरीके से लागू नहीं किया गया था।

बिना मुआवज़े के ज़मींदारी समाप्त करने तथा किसानों में ज़मीन मुफ़्त बांटने का सुधार सबसे महत्वशाली था। लेकिन यह दुख की बात है कि काश्मीर की सरकार शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में इस सुधार को लागू करने में असफल रही। उसका सबसे बड़ा कारण था कि ज़मीन को किसानों की सहायता से अर्थात किसान-सभाओं द्वारा तकसीम नहीं किया गया। कुछ जागीरदार अपनी ज़मीन को अपने बेटों तथा अन्य सम्बंधियों के नाम करने में सफल हुए। कुछ ज़मींदारों ने झूठे कागजात ही भर दिए। इसलिए खेतिहर मज़दूरों को बहुत कम जमीन मिल सकी। जिस किसान के नाम ज़मीन लिखी जाती थी उसको काफी रुपया कर्ज़ लेकर अफ़सरों को रिश्वत देनी पड़ती थी। इस भ्रष्टाचार के अलावा ज़मीन की तकसीम के कानून में भी कुछ ख़ामी थी।

इन्हीं कारणों से काश्मीर के गरीब किसानों को इस महत्वपूर्व सुधार से बहुत कम लाभ हुआ।

सामन्तवादी शासनकाल से ही 'मुजवज़ा' की प्रथा थी। इस प्रथा के अनुसार क़िसानों को अपनी पैदावार का कुछ हिस्सा बहुत ही सस्ते दामों पर सरकार को जरूरी बेचना पड़ता था। इस मुजवज़ा को वसूल करने में इस बात का कोई ध्यान नहीं रखा जाता था कि फसल की पैदावार अच्छी है या नहीं। और वह किसान के कुटुम्ब के खाने के लिए पूरी है या नहीं। किसानों के चावल आदि खरीदने की कीमतें जो सरकार द्वारा निश्चित की गयी थीं, वे भी बाज़ार की कीमतों के अनुसार नहीं थीं। मुजवज़े के कारण किसानों को कभी-कभी चोरबाज़ार से उंची कीमतों पर चावल खरीदकर देना पड़ता था। यह प्रथा शेख अब्दुल्ला के शासनकाल में भी बराबर जारी रही। सरकार के भ्रष्टाचारी अफसर मुजवज़ा ग़रीब किसानों से ज़बरस्ती वसूल करते थे। सहकारी संस्थाएं तथा अन्य प्राइवेट संस्थाएं कायम कर दी गयीं किंतु किसानों को इन्हें भी अपनी पैदावार का कुछ हिस्सा देना पड़ता था और इन संस्थाओं के अफसर गरीब किसानों से ज़बरदस्ती चावल और कुछ नज़राना वसूल करते थे।

वज़ीर कमेटी के अनुसार किसानों की सरकार से यह मांग थी कि उन्हें किसी तरह इन सहकारी संस्थाओं के अत्याचार से छुटकारा दिलाया जाय। मुजवज़ा के जबरदस्ती वसूल करने की प्रथा का वजीर कमेटी ने भी निम्नलिखित शब्दों में विरोध किया है:

"जो व्यक्ति अपनी ज़मीन पर साल में तीन महीने खाने के लिए भी पैदावार नहीं कर पाते थे, मुजवजा देने के लिए बाध्य किये जाते थे। इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था कि उनकी पैदावार के अनुसार उनके बीबी-बच्चों के खाने के लिए भी कुछ छोड़ दिया जाय। कई बार मुजवज़ा का भाग अदा करने के लिए किसान चोर-बाज़ार से सरकार की निश्चित कीमतों से भी दुगने-तिगुने दामों पर अनाज खरीदने को विवश हो जाते थे।

मुजवजा के साथ ही सरकार ने किसानों से सरप्लस शाली लेने की प्रथा भी चला दी। भूतपूर्व माल मन्त्री अफ़ज़लबेग साहब अपनी पुलिस के साथ इस शाली को वसूल करने गांव-गांव जाते थे और गरीब किसानों तथा उनके बीबी-बच्चों को चिथड़ों में भूखे रोते हुए छोड़ जाते थे। इन किसानों और आम जनता के साथ उस समय भी नेशनल कान्फ्रेंस के पुराने ईमानदार तथा प्रगतिशील

कार्यकर्ता ही थे, जो बराबर बेग की इन जनता-विरोधी नीतियों का मुकाबला कर रहे थे।

इसी तरह किसानों मे "डेट कन्सीलियेशन बोर्डों" के द्वारा कर्जे तो कुछ अवश्य कम हो गये, परन्तु किसानों और दस्तकारों को सरकार ने कर्जा देने की कोई सहूलियतें पेश नहीं की।

शेख अब्दुल्ला की सरकार ने पुलिस, रैवेन्यू तथा अन्य सीधे जनता से सम्बन्धित विभागों के भ्रष्टाचार को मिटाने की कोशिश नहीं की। भ्रष्टाचार दिन-पर-दिन बढ़ता ही गया। नेशनल कान्फ्रेन्स के पुराने ईमानदार कार्यकर्ताओं की जगह ग्रामों में अफजलबेग की सलाह पर शेख अब्दुल्ला ने जागीरदारों का साथ देने वाले लम्बरदारों और खड़पंचों को नेशनल कान्फ्रेंस के ऊंचे-ऊंचे पदों पर नियुक्त कर दिया।

इन्हीं उपर्युक्त असफलताओं और कमजोरियों के कारण नेशनल कान्फ्रेंस और उसकी सरकार के खिलाफ जनता में असन्तोष बढ़ने लगा। यह वही नेशनल कान्फ्रेंस थी, जिसके नेतृत्व में जनता ने सामन्तवादी शासन के खिलाफ संघर्ष किया था और "नया काश्मीर" बनाने का स्वप्न देखा था। उनको नेशनल कान्फ्रेंस की सरकार से यह आशा थी कि वह "नया काश्मीर" कार्यक्रम को कार्यरूप में परिणत करने का बीड़ा उठायेगी। परन्तु उन सब नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यकर्ताओं से, जिन्होंने "काश्मीर छोड़ो" के आन्दोलन तथा कबायली हमले के अवसर पर संघर्ष किया था, जनता में निराशा होने लगी।

प्रजा-परिषद्

काश्मीर की विधान सभा ने बिना मुआवज़ा ज़मीन समाप्त करने तथा डोगरा राजाओं के खानदानी शासन को समाप्त करने आदि के अनेक प्रगतिशील सुधारों का फैसला लिया, जिनके कारण राज्य के अन्दर तथा बाहर के प्रतिक्रियावादियों में बेचेनी पैदा हो गई। जम्मू में इन प्रतिक्रियावादियों ने प्रजा-परिषद के नेतृत्व में काश्मीर सरकार के खिलाफ और विधान सभा के इन उपर्युक्त फैसलों के विरोध में आन्दोलन शुरू कर दिया। वास्तव में यह पहला अवसर था जबकि इन जनवादी सुधारों के खिलाफ, जिनके लिए काश्मीर की जनता ने संघर्ष किया था, एक संगठित विरोध कायम हो गया।

यदि हम प्रजा-परिषद के आन्दोलन की मांगों को सामने रखें तो उसका चरित्र जनता में साफ प्रकट हो जाता है।

प्रजा-परिषद की सबसे पहली मांग थी कि भारत के विधान को जम्मू-काश्मीर राज्य पर पूरी तरह से लागू किया जाय या जम्मू को काश्मीर वैली से अलग करके 'बी' राज्यों के ग्रुप में भारत में मिला दिया जाय। भारत की एकता के लिए यह मांग ऊपर-ऊपर से सही मालूम पड़ती है। परन्तु जब हम इस मांग पर ध्यानपूर्वक विचार करते हैं तो हमें पता चलता है कि यह मांग पुराने शासकों की स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही रखी गई थी।

भारतीय संविधान की जो धाराएं काश्मीर राज्य पर लागू नहीं की गयीं, वे २३८ और ३१ हैं। भारतीय विधान की धारा २३८ राजप्रमुखों की प्रिवी पर्स तथा पार्ट 'बी' राज्यों में शासन-प्रबन्ध करने के उनके अधिकार को कायम रखती है। इस धारा के लागू करने का अर्थ है कि महाराजा हरिसिंह को राजप्रमुख बनाकर जम्मू व काश्मीर की राजगद्दी पर दुबारा बिठा दिया जाय। भारत विधान की ३१ वीं धारा के अनुसार कोई भी जमींदार बिना पूरा मुआवज़ा दिये, ज़मीन से अलग नहीं किया जा सकता। इस धारा को लागू करने से राज्य की विधान सभा द्वारा बनाये गए ज़मीन सुधार-कानून का असली मतलब ही खत्म हो जाता था, क्योंकि काश्मीर के किसान मुआवज़ा देने के बिल्कुल अयोग्य थे।

प्रजा-परिषद की दूसरी मांग थी: "काश्मीर और भारत के लिए एक प्रधान और एक झंड़ा हो 'एक प्रेसीडैन्ट' की मांग से भी साफ जाहिर है कि विधान सभा द्वारा चुने हुए सदरे रियासत की जगह राजप्रमुख हरिसिंह को गद्दी पर बिठा दिया जाय, जो पार्ट 'बी' राज्यों की तरह भारत के राष्ट्रपति के अधीन हो। इसके साथ ही प्रजा-परिषद ने जनता के संघर्षो का प्रतीक काश्मीर की विधान सभा द्वारा अपनाये गए नए झंड़े को हटाने की मांग की। इन प्रजा परिषद के नेताओं ने महाराजा के पीले झंड़े के खिलाफ कभी नारा नहीं दिया था। जबतक महाराजा के सामन्तवादी शासन का प्रतीक झंड़ा कायम रहा, इन प्रतिक्रियावादियों ने एक झंडे का नारा नहीं दिया और जब महाराजा के झंडे की जगह किसान और मजदूरों के लाल झंडे ने अपना स्थान ग्रहण किया तो इन्हें बहुत दुख हुआ।

प्रजा-परिषद की यह मांग कि जम्मू को काश्मीर से अलग करके हिन्दुस्तान में शामिल कर लिया जाय, राज्य के विभाजन की खतरनाक मांग थी। इस मांगसे विदेशी साम्राजियों को राज्य में हस्तक्षेप करने का साफ रास्ता मिल जाता था। इसलिए प्रजा परिषद का आंदोलन महाराजा, जमींदारों

तथा साम्राजियों के स्वार्थों को पूरा करने के लिए ही था। काश्मीर में शुरू से ही जनवादी आन्दोलन के विरुद्ध प्रजा-परिषद जैसी प्रतिक्रियावादी पार्टियों का काम चला आ रहा है।

१९३१ ई० में हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के फैलने के कारण जम्मू में भी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखाएं कायम हो गयीं। इस संघ का उद्देश्य महाराजा के सामन्तवादी-शासन की रक्षा करना था। जुलाई, १९४७ ई० में संघ के इन नेताओं ने काश्मीर को हिन्दुस्तान में शामिल करने का विरोध किया था। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संचालक मौजूदा जनसंघ के सभापति पं० प्रेमनाथ डोगरा थे, जिनके नेतृत्व में संघ ने 'आज़ाद काश्मीर' के लिए आन्दोलन करना शुरू किया। जम्मू में जनवादी आन्दोलन के कमजोर होने के कारण इन साम्प्रदायवादी संघियों ने १९४७ ई० में साम्प्रदायिक दंगे करा दिये, जब कि जम्मू के अलावा पूरे काश्मीर में शान्ति थी। पूरे राज्य में जनवादी आन्दोलन को कमजोर करने के लिए जमीदारों तथा सामन्तवाद के इन पिट्ठुओं ने ये झगड़े कराए थे। गांधी जी की हत्या के बाद राष्ट्रीय सेवक संघ पर राज्य में पाबन्दी लगा दी गई। परन्तु मार्च १९४९ ई० में उन्हीं नेताओं और कार्यकर्त्ताओं के साथ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की जगह प्रजा-परिषद ने ले ली।

१९४९ ई० में प्रजा परिषद ने साम्प्रदायिकता के आधार पर जम्मू और काश्मीर राज्य के विभाजन की मांग रखी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रजा परिषद ने इस मांग के लिए काश्मीर सरकार के खिलाफ़ आन्दोलन किया जबकि यू० एन० ओ० के प्रतिनिधि काश्मीर में मौजूद थे। उसी समय काश्मीर में अमरीकी साम्राजियों के प्रतिनिधि डिक्सन भी आये थे। बाद में 'ग्राहम' के सामने भी प्रजा-परिषद ने विभाजन की मांग ही रखी थी। साम्राजी तो पहले से ही हिन्दुस्तान की तरह काश्मीर के भी दो टुकड़े करने के पक्ष में थे।

काश्मीर सरकार के जनवादी सुधारों के खिलाफ़ जब प्रजा-परिषद ने आन्दोलन शुरू किया तो हिन्दुस्तान की सभी प्रतिक्रियावादी पार्टियों तथा व्यक्तियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। इस आन्दोलन को अकाली पार्टी, जनसंघ, हिन्दू महासभा तथा अन्य पार्टियों के प्रतिक्रियावादियों ने पूरी सहायता दी। हिन्दुस्तान की ये तमाम प्रतिक्रियावादी पार्टियां प्रजा-परिषद की मांगों पर अपने स्वार्थों के लिए इसलिए एक हो गयीं, क्योंकि उन्हें यह भय उत्पन्न हो गया

था कि कहीं हिन्दुस्तान की जनता भी बिना मुआवजे के जमींदारी खत्म करने के लिए आन्दोलन न कर दे और राज्यों की जनता राज-प्रमुखों को हटाने की मांग का आन्दोलन खड़ा न कर दे। यह है प्रजा-परिषद के आन्दोलन का इतिहास, जिसने काश्मीर की जनता को बराबर तबाही के रास्ते पर ले जाने की कोशिश की है।

जम्मू में प्रजा-परिषद के इस आन्दोलन तथा काश्मीर सरकार की कमजोरियों और असफलताओं के कारण, काश्मीर की जनता में बेचैनी पैदा हो गयी। जनता को अपना भविष्य अंधेरे में नज़र आने लगा। हिन्दुस्तान का जनवादी आन्दोलन देश की प्रतिक्रियावादी ताकतों के विरुद्ध प्रचार करने में अपना कर्तव्य पूरी तरह से अदा न कर सका। इस असफलता के कारण काश्मीर और भारत की जनता के आन्दोलनों की एकता के सम्बंध ढीले पड़ने लगे। इन्हीं हालतों में काश्मीर की जनता की बेचैनी का फायदा उठाकर घाटी के साम्प्रदायिक तथा प्रतिक्रियावादी तत्व लोगों को गलत रास्ते पर ले जाने का प्रयत्न करने लगे। जनता के इस संकट का फायदा उठाने के लिए मुसलमान सम्प्रदायवादियों ने काश्मीर में खुले आम अपना सिर उठाना शुरू कर दिया और 'काश्मीर पोलिटिकल कान्फ्रेंस' के नाम से एक पाकिस्तानी पार्टी कायम हो गयी।

साम्राजी साजिश

१९४७ ई० में हिन्दुस्तान को दो भागों में विभक्त कर अंग्रेज़ साम्राजियों ने काश्मीर के महाराजा को आज़ाद रहने की सलाह दी। जनता के आन्दोलन के कारण जब अंग्रेज़ काश्मीर को 'आज़ाद राज्य' कायम करने में असफल रहे तो उन्होंने अंग्रेज अफ़सरों के नेतृत्व में कबायली हमला करा दिया। यह सबको मालूम है कि सीमान्त प्रदेश के अंग्रेज गवर्नर कनिंघम तथा पश्चिमी पंजाब के गवर्नर फ्रांसिस मूदी ने कबायलियों की भरती करने में एक विशेष भाग लिया था। अंग्रेज अफसरों ने ही काश्मीर पर हमला करने के समय इन कबायलियों को शिक्षा दी थी।

काश्मीर पर कबायली हमले के कुछ दिन बाद दिसम्बर, १९४८ ई० में काश्मीर के इस झगड़े को यू० एन० ओ० की सुरक्षा-परिषद के सामने पेश कर दिया गया। इस विश्व राष्ट्र संघ पर साम्राजियों की इजारेदारी होने के कारण काश्मीर की समस्या का कोई सही हल नहीं निकाला गया। साम्राजी यह चाहते थे कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सरकार को इस झगड़े में फंसाकर काश्मीर के आवश्यक मामले को खटाई में डाल दिया जाय।

१९४८ ई० में सुरक्षा समिति के आदेशानुसार काश्मीर के झगड़े की समस्या को हल करने के उद्देश्य से युद्ध-विराम संधि की गई, जिसकी देखभाल के लिए कमीशन ने बहुत से फ़ौजी अफ़सरों को काश्मीर में प्रेक्षक के तौर पर नियुक्त कर दिया।

सुरक्षा समिति में अंग्रेज-अमरीकी साम्राजियों का बहुमत होने के कारण डा० ग्राहम को काश्मीर के लिए यू० एन० ओ० का प्रतिनिधि बना दिया गया और इसी 'ग्राहम' और उसके फौजी सलाहकारों ने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान से काश्मीर में विदेशी फौजों की स्थापना की आज्ञा मांगी।

जनवरी १९५२ ई० में सुरक्षा समिति में रूस के प्रतिनिधि 'जेकब मलिक' ने इन साम्राजियों की चालबाज़ियों को दुनिया की जनता के सामने पेश कर दिया। उन्होंने अपने भाषण में साम्राजियों की आक्रमणकारी भावनाओं को खुलासा तौर पर सुरक्षा-समिति के सामने रखा और कहा—"अमरीका और अंग्रेज काश्मीर की जनता की इच्छा के द्वारा काश्मीर की समस्या को हल करने में बाधाएं डाल रहे हैं। अक्तूबर, १९५० ई० में जब जम्मू व काश्मीर की नेशनल कान्फ्रेंस ने अपनी आम बैठक में काश्मीर के भविष्य का निर्णय करने के लिए एक विधान सभा स्थापित करने का प्रस्ताव पास कर दिया तो अमरीका और बर्तानिया ने काश्मीरी जनता को अपने भाग्य का स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय करने के मामले में हस्तक्षेप किया।"

डा० ग्राहम ने १९५३ ई० में काश्मीर की समस्या के बारे में "आज़ाद काश्मीर" नाम की एक साम्राजी योजना रखी। इस "आज़ाद काश्मीर" की योजना के बारे में ही अमरीका के मंत्री जॉन फोस्टर डलेस ने मई १९५३ ई० को भारत और पाकिस्तान के प्रधान मंत्रियों से बातचीत की थी। दिल्ली में 'न्यूयार्क टाइम्स' के संवाददाता ने ५ जुलाई १९५३ ई० के न्यूयार्क टाइम्स में लिखा था कि डलेस ने दोनों प्रधान मंत्रियों के सामने "आज़ाद काश्मीर" की नई योजना रखी थी।

दुनिया की शान्तिप्रिय जनता को यह अच्छी तरह मालूम है कि अमरीका अपने अन्य मित्रों के साथ सोवियत रूस और जनवादी चीन के चारों ओर फ़ौजी अड्डे बनाना चाहता है। इसीलिए उसने दक्षिणी पूर्वी एशिया सुरक्षा संस्था 'सीडो' खोलकर टर्की और पाकिस्तान आदि मध्यपूर्व के देशों से फ़ौजी गठबंधन किये हैं।

काश्मीर विधान सभा के प्रधान श्री गुलाम मोहम्मद सादिक ने १९५१ ई० में काश्मीर मज़दूर संघ की कान्फ्रेंस में भाषण देते हुए कहा था, "अंग्रेज-

अमरीकी साम्राजियों का उद्देश्य काश्मीर को रूस और नए चीन के खिलाफ़ फ़ौजी अड्डों में बदलने के अलावा और कुछ नहीं है।"

काश्मीर में अंग्रेज़-अमरीकी साम्राजियों की इन साम्राजी-योजनाओं के संक्षिप्त वर्णन से यह साफ जाहिर है कि साम्राजियों ने काश्मीर की समस्या को सुलझाने के बजाय उलझन में डाल दिया और काश्मीर राज्य की जनता में एक अनिश्चितता पैदा कर दी। अमरीकी साम्राजी अपनी चालबाजियों से काश्मीर की जनता के आन्दोलन की एकता को नष्ट करने में कुछ हद तक कामयाब भी हो गये।

शेख अब्दुल्ला की नजरबन्दी और उसके बाद

नेशनल कान्फ्रेंस की सरकार ने अपनी असफलताओं और कमज़ोरियों से कोई सबक हासिल नहीं किया। प्रजा-परिषद् के आन्दोलन और सरकारी अफ़सरों के भ्रष्टाचार के कारण देश की जनता में असन्तोष पैदा हो गया था। काश्मीर की जनता पर आर्थिक संकट था, जिसे शेख अब्दुल्ला की सरकार ने हल करने की कोशिश नहीं की, किन्तु इन असफलताओं और कमज़ोरियों को छिपाने के लिए शेख अब्दुल्ला ने "आज़ाद काश्मीर" का नारा बुलन्द कर दिया। यह हम ऊपर बता चुके हैं कि १९५२ ई० में ग्राहम ने भी सुरक्षा-समिति के सामने 'आजाद काश्मीर' की योजना रखी।

मई १९५३ ई० में अदलाई स्टीवैन्सन काश्मीर आये और उन्होंने "आज़ाद काश्मीर" की योजना के बारे में शेख अब्दुल्ला से लम्बी बातचीत की।

शेख अब्दुल्ला और स्टीवैन्सन की बातचीत के बाद शेख अब्दुल्ला ने नेशनल कान्फ्रेंस की कार्यकारिणी की बैठक बुलाई और कार्यकारिणी के सामने "आज़ाद काश्मीर" की योजना रखी। उसने अपने साथियों से इस "आज़ाद काश्मीर" की योजना को बिना शर्त मंज़ूर करने के लिए दबाव डाला। कार्यकारिणी में उसके कुछ प्रगतिशील साथियों ने जन-विरोधी इस योजना का सख्त विरोध किया। विधान सभा के प्रधान ग़ुलाम मोहम्मद सादिक ने शेख अब्दुल्ला को आगाह किया कि यह योजना देश के लिए खतरनाक साबित होगी।

शेख अब्दुल्ला और उसके साथी अफजल बेग ने 'आज़ाद काश्मीर' का आन्दोलन ज़ोरों से शुरू कर दिया। उन्होंने देश के आर्थिक संकट तथा अपनी असफलताओं को छिपाने के लिए काश्मीर की जनता का ध्यान 'आजाद काश्मीर' नारे की तरफ आकर्षित करने की कोशिश की।

शेख अब्दुल्ला ने जब जनता में 'आजाद काश्मीर' की योजना लेकर भाषण देने शुरू किये तो नेशनल कान्फ्रेंस और पूरी रियासत में एक गहरा संकट पैदा हो गया। नेशनल कान्फ्रेंस की कार्यकारिणी का बहुमत "आज़ाद काश्मीर" के विरोध में था। शेख अब्दुल्ला ने नेशनल कान्फ्रेंस पर कब्ज़ा करने की योजना बनाई और अपनी सरकार को भी इस "आज़ाद काश्मीर" के नारे को जबरदस्ती मनवाने का प्रयत्न किया।

शेख अब्दुल्ला ने साम्राजियों की सहायता पर आश्रित होकर अपनी जनता पर विश्वास नहीं किया और वह अपनी योजना को कामयाब बनाने के लिए आगे बढ़ते ही गये।

इस समय यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जब शेख अब्दुल्ला "आज़ाद काश्मीर" के नारे को लेकर जनता में आन्दोलन कर रहे थे तो उनके कुछ साथी अमरीका की इन चालों से जनता को चेतावनी भी दे रहे थे।

१९ जुलाई १९५३ ई० को बड़गांव में बोलते हुए काश्मीर विधान सभा के सभापति श्री गुलाम मोहम्मद सादिक ने कहा था कि "आज़ाद काश्मीर का नारा एक बचपने का नारा है; जिससे काश्मीर हमेशा विदेशी साम्राजियों के षड़यन्त्रों का अड्डा बन जायगा।" बख्शी गुलाम मोहम्मद ने, जो उस समय उप प्रधानमंत्री थे, कुलगाम की एक आम सभा में भाषण देते हुए कहा : "हमारे आन्दोलन का अन्तिम उद्देश्य, उसके असाम्प्रदायिक चरित्र, उसके सामाजिक व आर्थिक कार्यक्रम और उसकी सामन्त-विरोधी व साम्राज्य-विरोधी परम्पराओं ने ही इसे हिन्दुस्तान के साथ रहने में हमें रास्ता दिखाया। जो भी इसके खिलाफ़ आवाज़ उठाता है। (शेख अब्दुल्ला के लिए—ले०) वह हमें आर्थिक संकट और राजनीतिक गुलामी में फेकना चाहता है।"

शेख अब्दुल्ला ने अपने साथियों की चेतावनी की तरफ़ ध्यान न देकर २४ जुलाई १९५३ ई० को नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यकर्ताओं की एक सभा में कहा कि, "मैं केवल काश्मीर और हिन्दुस्तान में ही एकता नहीं चाहता, किन्तु काश्मीर, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की भी एकता चाहता हूं।" इससे पहले ३१ जुलाई '५३ को गान्धरबल के किसानों में बोलते हुए उन्होंने कहा, "ये देश (हिन्दुस्तान और पाकिस्तान) हमारे पड़ोसी हैं और हमारी सीमाओं पर स्थित हैं। यह स्वाभाविक है कि काश्मीर की प्रगति इन्हीं पर आश्रित है। हमें दोनों देशों से मित्रता रखनी चाहिए, तभी हम इज्ज़त की जिन्दगी बसर कर सकते हैं। मैं आपको आश्वासन दिलाता हूं कि मैं और मेरी पार्टी आपकी खुशहाली का उपाय निकालने जा रही है।" (आज़ाद काश्मीर—ले०)

इन हालात में काश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस के अन्य देश-भक्त नेता शेख अब्दुल्ला का साथ छोड़ने के लिए मजबूर हो गये और उन्होंने देश की सुरक्षा और आज़ादी के संघर्ष का रास्ता अपनाया।

९ अगस्त १९५३ ई० को सदरे रियासत श्री कर्णसिंह ने सब कोशिशों के बाद मज़बूर होकर देश को साम्राजियों के पंजे से बचाने के लिए शेख अब्दुल्ला को प्रधान मंत्री के पद से अलग करके नजरबंद कर दिया। सदरे रियासत ने बख़्शी गुलाम मोहम्मद को शेख अब्दुला की जगह नया प्रधान मंत्री नियुक्त किया।

शेख अब्दुल्ला अपनी गिरफ़्तारी से पहले जनता में साम्प्रदायिक और हिन्दुस्तान-विरोधी भावनाओं को उभारने में सफल हो चुके थे। नेशनल कान्फ्रेंस के अन्य नेता शेख अब्दुल्ला की "आज़ाद काश्मीर" की जनता-विरोधी योजना के घातक परिणामों को जनता के सामने नहीं रख पाये थे। इसीलिए शेख अब्दुल्ला की अचानक गिरफ़्तारी पर काश्मीर के कुछ लोगों ने नई सरकार के विरोध में प्रदर्शन किये। इन प्रदर्शनों को संगठित करने में साम्राजियों का एक विशेष हाथ था।

काश्मीर के नए प्रधानमंत्री बख़्शी गुलाम मोहम्मद ने अगस्त १९५३ ई० में बहुत से महत्वशाली सुधारों की घोषणा की। उन्होंने मुजवजा को हमेशा के लिए समाप्त करने तथा खाने की चीज़ों की कीमतों में कमी करने की घोषणा की। परन्तु इन घोषणाओं से जनता को विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि जनता को पुरानी नेशनल कान्फ्रेंस की सरकार के वायदों का एक कटु अनुभव था।

इन हालात में नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं ने जनता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए और अपनी संस्था को मज़बूत बनाने के विचार से श्रीनगर में नेशनल कान्फ्रेंस का एक विशेष अधिवेशन बुलाया।

इस अधिवेशन ने देश की एकता को नष्ट करने वाले साम्राजियों के एजेन्टों, प्रतिक्रियावादियों और साम्प्रदायवादियों की नीतियों की कड़ी आलोचना की और उन्हें भविष्य के लिए चेतावनी दी। इस अधिवेशन ने नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यकर्ताओं तथा देश की जनता से अपील की कि वे काश्मीर से गरीबी, बेकारी और आर्थिक शोषण को मिटाने और देश को मजबूत बनाने के लिए एक हो जायं।

इस अधिवेशन के बाद नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यकर्ताओं ने जनता से सम्पर्क स्थापित कर लिया और धीरे-धीरे नेशनल कान्फ्रेंस के अन्य कार्यकर्ता तथा

जनता को यह विश्वास हो गया कि शेख अब्दुल्ला का 'आज़ाद काश्मीर' का नारा वास्तव में देश के लिए घातक था।

मुजवजा समाप्त होने, राशन की कीमतें कम होने और अन्य आवश्यक सुधारों के कारण साम्राज्य-विरोधी व सामन्त-विरोधी कार्यक्रम के लिए एक स्वस्थ वातावरण तैयार होने लगा।

पाकिस्तान के अन्दरूनी हालात ने भी काश्मीर की जनता की आंखें खोल दीं। अमरीका की पाकिस्तान को फौजी सहायता और पूर्वी पाकिस्तान की सरकार को खत्म करने आदि की साम्राजियों की चालें काश्मीर और दुनिया की जनता के सामने हैं। इसलिए यदि काश्मीर पाकिस्तान में शामिल होता है तो साम्राजियों की गुलामी और उनके स्वार्थों के लिए फ़ौजी अड्डा बन जाता है। यदि वह शेख अब्दुल्ला के नारे के अनुसार "आज़ाद राज्य" होता है तो अमरीकी साम्राजियों के सीधा अधीन हो जाता है जो काश्मीर के जनवादी आंदोलन को कुचल देंगे। इसलिए काश्मीर का भारत के साथ सीमित सम्मिलन ही ठीक है।

शेख अब्दुल्ला की गिरफ़्तारी के बाद से अमरीकी साम्राजी अपने एजेन्टों के द्वारा देश की शान्ति व एकता को नष्ट करने की बराबर कोशिश कर रहे है।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी

अमरीकी साम्राजियों की 'आजाद काश्मीर' की योजना का भेद खुल जाने पर हिन्दुस्तान और काश्मीर के देश-भक्तों ने अमरीकी साम्राज्यवाद के खिलाफ़ आवाज उठायी। काश्मीर के अन्दरूनी मामलों में अमरीकी साम्राजियों के इस हस्तक्षेप से देश की जनवादी शक्तियों ने अपना विरोध प्रगट किया।

काश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस के नेता साम्राजियों के षडयन्त्रों को खाक में मिलाकर अपने, देश को मज़बूत बनाने में लगे हुए थे। ऐसे समय में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने नेशनल कान्फ्रेंस का साथ देने के बजाय काश्मीरी जनता के आन्दोलन की एकता को नष्ट-भ्रष्ट करने की नीति अपनाई। नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यकर्ताओं की एकता को भंग करने के लिए इस पार्टी ने काश्मीर में कम्यूनिस्टों के षड़यन्त्र का नारा लगा दिया; लेकिन अमरीकी साम्राजियों की नीतियों के विरोध में एक शब्द तक नहीं कहा। साम्राजियों की नीतियों को छिपा कर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने काश्मीर पर चीन की फौजों के आक्रमण का भय उत्पन्न करना चाहा। इस पार्टी ने काश्मीर में हमेशा से प्रतिक्रियावादियों का ही साथ दिया है।

बम्बई में ८ फवरी, १९५३ ई० के 'फ्री प्रेस जनरल' के एक प्रकाशित लेख में आचार्य कृपलानी ने प्रजा-परिषद की मांगों का समर्थन किया था। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के एक अन्य उच्च कोटि के भूतपूर्व नेता डा० राम मनोहर लोहिया ने शेख अब्दुल्ला की "आज़ाद काश्मीर" की योजना का समर्थन किया था।

९ अगस्त १९५३ ई० के बाद जब पूरा देश काश्मीर में अमरीकी साम्राजियों के षड़यन्त्र के खिलाफ अपना विरोध प्रकट कर रहा था तो प्रजा सोशलिस्ट पार्टी नें काश्मीर की स्थिति का अध्ययन करने के लिए एक प्रतिनिधि मंडल काश्मीर भेजा, जो काश्मीर में लगभग १५ दिन रहा। इस प्रतिनिधि मंडल का उद्देश्य काश्मीर की जनता की आज़ादी के लिए अमरीकी साम्राजियों के षड़यंत्रों का पता लगाना नहीं था। किन्तु आज़ादी के आन्दोलन की एकता को नष्ट करने के लिए तथाकथित कम्युनिस्ट षड़यन्त्र का पता लगाना था। इसके लिए प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के कुछ नेताओं ने दिल्ली में "काश्मीर कमेटी" की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य काश्मीर में कम्युनिस्टों का विरोध करना था।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के इन कार्यों से साफ़ जाहिर था कि वह काश्मीर और हिन्दुस्तान के जन-आन्दोलन के सम्बंघो को मज़बूत बनाने की इच्छुक नहीं थी। इस पार्टी ने काश्मीरी जनता की खुशहाली, राष्ट्रीय प्रगति तथा आर्थिक समस्याओं के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा। यह तो केवल 'कम्युनिस्ट-षड़यंत्र' के नाम से अमरीकी षड़यन्त्र को ही कामयाब बनाने के लिए रास्ता खोलना चाहते थे।

शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी के कुछ महीने बाद प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता आचार्य कृपलानी ने भारतीय पार्लिमेंट में बोलते हुए कहा था कि, 'बख्शी सरकार ने काश्मीर की जनता का गला घोंट दिया है। जनता को बोलने की आजादी नहीं है, जनता दुखी है और परेशान है। बख्शी सरकार और उसके दफ़्तरों में कम्युनिस्ट-ही-कम्युनिस्ट छाए हुए हैं। बख्शी गुलाम मोहम्मद कम्युनिस्टों के ही प्रभाव में हैं"।

आचार्य कृपलानी की इस आलोचना का उत्तर देते हुए पार्लियामेंट में प्रधानमंत्री नेहरू ने कहा था, "काश्मीर की जनता ने इन कुछ महीनों में काफी प्रगति की है। काश्मीर दिन-प्रतिदिन उन्नति के रास्ते पर है। यह कहना गलत है कि काश्मीर की जनता को आज़ादी नहीं है। काश्मीर जाने वाले टूरिस्टों और अन्य व्यक्तियों ने काश्मीर की इस प्रगति के बारे में मुझे बताया है। जहां

तक काश्मीर में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का संबंध है, वह काश्मीर और हिन्दुस्तान के लिए एक दुशमन का पार्ट अदा कर रही है।"

इससे साफ प्रकट होता है कि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने काश्मीर और हिन्दुस्तान की जनता के सम्बंधों को कमजोर करने के प्रयत्न में अमरीकी साम्राजियों का साथ दिया है।

जम्मू व काश्मीर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी आज साम्राजियों के सच्चे एजेन्ट, शेख अब्दुल्ला के प्यारे साथी और बेगम अब्दुल्ला के पुराने प्राइवेट सेक्रेटरी ख्वाजा उमर भट्ट हैं। इन ख्वाजा साहब ने शुरू से ही "आजाद काश्मीर" के नारे का समर्थन किया है और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने इन्हें ही काश्मीर में पार्टी के संगठन का नेता बनाया है।

अगस्त, १९५३ के बाद

अगस्त, १९५३ के संकट के बाद नेशनल-कान्फ्रेंस के नेताओं ने "नया काश्मीर" कार्यक्रम को पूरा करने के लिए जनता को संगठित करना शुरू कर दिया। प्रधान मंत्री बख्शी गुलाम मुहम्मद ने आवश्यक सुधारों की घोषणा की। धीरे-धीरे नई सरकार को जनता का समर्थन भी प्राप्त होने लगा।

नेशनल कान्फ्रेंस की सरकार 'मुजवज़ा' खत्म करने, चावलों की कीमतों में कमी करने तथा स्कूलों और कालिजों में मुफ़्त शिक्षा देने आदि सुधारों तक ही सीमित नहीं रही, वरन् उसने इन सुधारों के अतिरिक्त जनता की खुशहाली के लिए बहुत से आवश्यक सुधार किए। सरकार का सबसे महत्वपूर्ण सुधार कस्टम को समाप्त करना था। कस्टम के कारण, पहले काश्मीर की जनता को दवाइयां, कपड़ा, चमड़े का सामान, चीनी, चाय, मिट्टी का तेल तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं हिन्दुस्तान से अधिक कीमतों पर ख़रीदनी पड़ती थीं; इससे रियासत को लगभग आधी आमदनी प्राप्त होती थी परन्तु काश्मीर की जनता को ही इसका अधिकांश देना पड़ता था। इस महत्वपूर्ण सुधार से काश्मीर की जनता की आर्थिक स्थिति काफी संभली।

सरकार ने पूरी रियासत में शिक्षा के फैलाने का भी विशेष प्रबन्ध किया। मुफ़्त शिक्षा के अतिरिक्त विद्यार्थियों की पुस्तकें भी सस्ते दामों में मिलने लगीं। कम वेतन वाले अध्यापकों का वेतन बढ़ा दिया गया। जम्मू और काश्मीर में नए स्कूल खोले गये। जिन विद्यालयों को शेख अब्दुल्ला की सरकार ने आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया था, नई सरकार ने उन स्कूलों को फिर से सहायता देनी शुरू की। पहाड़ों की पिछड़ी जातियों—गुजरों, बकरवालों इत्यादि—के बच्चों के लिए मुफ्त और तुरन्त शिक्षा के साधन जुटा लिए। नई सरकार ने

खेती की सिंचाई के उपयुक्त साधन और सुधार अमल में लाए। "शेख सरकार" द्वारा बढ़ाये गए आबियाने की दर काफी कम कर दी गई।

विधान सभा के निर्णय के अनुसार नई सरकार ने एक "भ्रष्टाचार-विरोधी ट्रिब्यूनल" की स्थापना की है। यह संस्था भ्रष्टाचारी अफसरों को नौकरी से अलग करके सज़ा देने का प्रयत्न करेगी।

लगभग साढ़े सात हज़ार फुट की ऊंचाई पर बनिहाल पहाड़ के बीचों बीच डेढ़ मील लम्बी टनल खोदने का काम चल रहा है। इसके पूरा होने से काश्मीर और हिन्दुस्तान के बीच सभी मौसमों के लिए रास्ता खुला रहेगा। फासले में भी बीस से अधिक मीलों की कमी होगी। आजकल सर्दी के लगभग तीन-चार महीनों के लिए पहाड़ी सड़क बन्द होने से काश्मीरी व्यापार को काफी हानि पहुंचती है। टनल के पूरा होने से काश्मीरी व्यापार और आर्थिक-दशा पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

काश्मीर में बाढ़ के आने से बहुत से खेत और किसान उजड़ जाते हैं। नई सरकार ने इन बाढ़ों को रोकने के आयोजन आरम्भ कर दिए हैं। पहले जो मध्यस्थ ठेकेदार ये काम चलाया करते थे, अब उनको अलग कर दिया गया है ताकि धन वास्तविक कार्य में ही खर्च हो—ठेकेदारों की जेबों में न जाए। इन आयोजनों से मजदूरों की मज़दूरी पहले से कई गुना बढ़ गई है।

पहली पंच वर्षीय-योजना के अन्तर्गत "सिन्ध वेली बिजली योजना" का काम लगभग पूरा कर दिया गया है जिससे न केवल सारे श्रीनगर को ही वरन् बहुत से गांवों को भी बिजली मिल सकेगी। ऐसी ही एक योजना जम्मू में लगभग पूरी हो चुकी है।

दूसरी पंच वर्षीय-योजना में अन्य बिजलीघर बनाने, रेशम, शाल, जंगलात तथा शहद आदि के उद्योगों की प्रगति की ओर विशेष ध्यान दिया जायगा।

काश्मीर में नई सरकार की स्थापना के बाद टूरिस्टों की संख्या भी हर वर्ष बढ़ती जा रही है। इस साल (१९५५ ई० की गर्मियों में) ५०,००० से ऊपर टूरिस्ट यहां आए थे। यहां यह कहना आवश्यक है कि टूरिस्टों पर काश्मीर की एक बहुत बड़ी जन-संख्या का जीवन आधारित है।

जम्मू में शरणार्थियों को घर और ज़मीन देकर बसा दिया गया है और आटा केवल साढ़े बारह रुपये प्रति मन कर दिया गया है। यहां प्राथमिक शिक्षा में डोगरी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए एक कमेटी की स्थापना की गई है।

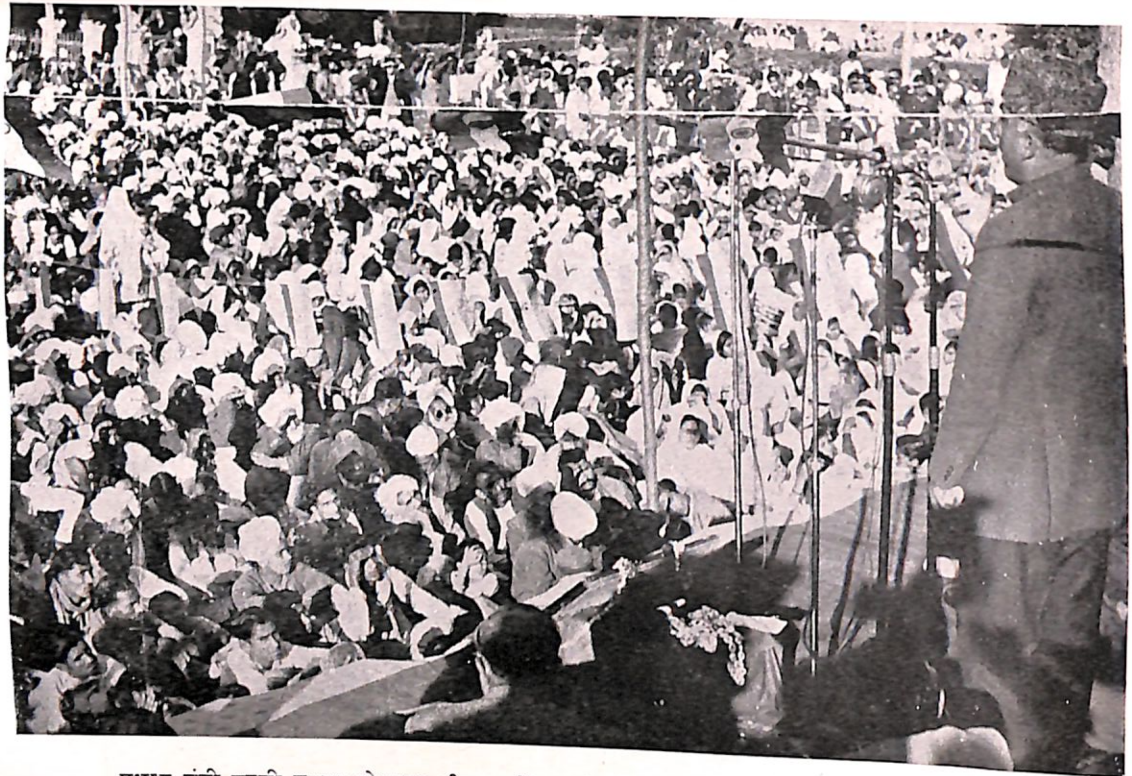
'लद्दाख' जम्मू व काश्मीर राज्य का सबसे पिछड़ा हुआ प्रान्त है। शेख अब्दुल्ला की सरकार ने इस प्रान्त की प्रगति की ओर बहुत कम ध्यान दिया। और जो अफ़सर वहां भेजे गए उन्होंने चोर-बाज़ारी और घूस का बाज़ार गर्म कर दिया। इससे यहां के निवासी शोषण की चक्की में कराहने लगे थे।

लेकिन मौजूदा सरकार ने लद्दाखियों की हालत सुधारने के लिए कुछ बहुत महत्वपूर्ण क़दम उठाए। राज्य के मंत्रि-मंडल में पहली बार लद्दाख का एक उप-मंत्री लिया गया। लद्दाख की राजधानी को श्रीनगर की हवाई सर्विस से मिला दिया गया। यहां पहली बार कुछ सड़कें बनाई जाने लगीं। शिक्षा के फैलाव की ओर भी काफी ध्यान दिया जाने लगा। नई सरकार ने यहां पांच लाख से ज़्यादा रुपये के कर्ज़ से ऊन और पशमीना के लिए एक सिंडीकेट स्थापित कर दिया है। खेती-बाड़ी के लिए 'करगिल' और 'लेह' में दो नहरें बनवाने का काम चल रहा है। 'लेह' से 'खाल से' तक एक मोटर सड़क पहली बार बनाई जा रही है। यहां के छोटे-छोटे व्यापारियों को सरकार ने कर्ज़े भी दिए हैं।

नेशनल-कान्फ्रेंस को मज़बूत बनाने तथा उसके कार्यकर्ताओं को सैद्धान्तिक शिक्षा देने के लिए सरकार ने आवश्यक क़दम उठाए हैं। इन कार्यकर्ताओं तथा साधारण जनता की शिक्षा के लिए काश्मीर में साम्राजी हस्तक्षेप, पाक-अमरीकी सैनिक गठजोड़ और मध्यपूर्व के इस्लामी देशों में साम्राजी चालों आदि विषयों पर सरकार ने छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं ने अपने कार्यकर्ताओं को राजनैतिक शिक्षा देने के लिए राजनीतिक स्कूल भी संगठित किए हैं। कान्फ्रेंस ने साढ़े सात लाख सदस्य बना लिए हैं।

सन् १६५४ ई० के अपने अधिवेशन में नेशनल कान्फ्रेंस ने कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये हैं, जिनके कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं।

राजनीतिक प्रस्ताव में अपनी पुरानी सफलताओं और कमज़ोरियों की आलोचना करने के बाद यह कहा गया कि...... "काश्मीर की जनता की हालत तबतक सुधर नहीं सकती, जबतक नेशनल कान्फ्रेंस की हल्का कमेटियां और सरकार इन बुराइयों को दूर नहीं करती। सरकार की नीतियां और सुधार प्रगतिशील होने के बावजूद भी जनता को तबतक कोई लाभ नहीं होगा जब तक कि सरकार को चलाने वाली मशीनरी अपना काम ईमानदारी से न करे"......। अपने देश के शत्रुओं को नंगा करते हुए प्रस्ताव में कहा गया है कि "हमारा प्यारा देश आज शत्रुओं से घिरा हुआ है। हमारा पड़ोसी



प्रधान मंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद श्रीनगर में एक विशाल जन-समूह के समक्ष काश्मीर के भारत में विलय का ऐलान कर रहे हैं।



शिक्षा व स्वास्थ्य मंत्री श्री गुलाम मोहम्मद सादिक नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यकर्ताओं में भाषण दे रहे हैं।

पाकिस्तान अमरीकी साम्राज्य के बंधन में बंध चुका है। पूर्वी पाकिस्तान की चुनी हुई एसेम्बली को तोड़ दिया गया है और अमरीकी साम्राजियों द्वारा जनवादी आन्दोलन को कुचलने के लिए एक फौजी शासन की स्थापना कर दी गई है। संक्षेप में पाकिस्तान साम्राजी षड्यंत्रों का एक केन्द्र बन चुका है। अमरीकी सरकार के नेतृत्व में अन्य इस्लामी देशों में फौजी अड्डे स्थापित किये जा रहे हैं और इस तरह उन्हें गुलाम बनाया जा रहा है। दक्षिण पूर्वी एशिया में पश्चिमी ताक़तों का 'सीटो' नामक एक सैनिक संगठन बन चुका है। साम्राजियों के इस फौजी संगठन में पाकिस्तान भी शामिल हो गया है।

"हमारे राज्य में भी जनता की एकता को नष्ट करने वाले व्यक्ति अपने कार्यों द्वारा साम्राजियों की सहायता कर रहे हैं और हमारी जनता को जनवादी और स्वस्थ राज-नीति से अलग करने पर तुले हुए हैं। इसलिए हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय राजनीति पर अपना दृष्टिकोण साफ़ करें—

"हमारे आन्दोलन का इतिहास और इसके बुनियादी दस्तावेज हमारे आन्दोलन के साम्राज्य-विरोधी चरित्र को साबित करते हैं। हमारे 'नया काश्मीर' कार्यक्रम का आधार सामन्त-विरोधी और साम्राज्य-विरोधी है। विदेशी शक्तियां जो हमारे देश को गुलाम बनाने तथा उसे फौजी अड्डे में बदलने का प्रयत्न कर रही हैं, वे हमारी शत्रु हैं और हम उनसे कोई सम्बंध नहीं रख सकते...।

"हमारी हमेशा उन लोगों के साथ सहानुभूति रही है और रहेगी, जो अपनी आज़ादी के लिए बराबर संघर्ष कर रहे हैं। हम उन सब व्यक्तियों और ताक़तों को अपना मित्र समझते हैं जो राष्ट्रों की आज़ादी को स्वीकार करते हैं और दूसरे राष्ट्रों के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करते। हमारे प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू और चीन के प्रधानमंत्री श्री चाऊ-एन-लाई ने 'पंचशील' को जन्म दिया है। 'पंचशील' ही विश्व-शांति का आधार है। हमें इन्हीं पांच सिद्धान्तों की कसौटी पर अन्तरराष्ट्रीय राजनीति पर विचार करना चाहिए।"

विश्व-शान्ति के प्रस्ताव में कहा गया है कि: "दुनिया में युद्ध का खतरा होने के कारण हमें अपनी पूरी शक्ति विश्व-शांति की स्थापना के लिए लगा देनी चाहिए। हमारे लिए शांति का सवाल हमारी आजादी के प्रश्न से सम्बंधित है। कुछ स्वार्थी विदेशी ताकतें हमारे देश को फौजी-अड्डे के रूप में बदलकर हमको युद्ध में घसीटना चाहती हैं। युद्ध और शांति का प्रश्न हमारे जीवन और

मृत्यु का प्रश्न है। पंडित नेहरू की शांति-नीति का हम स्वागत करते हैं। पं० नेहरू की चीन-यात्रा तथा वहां की जनता द्वारा उनका स्वागत दोनों देशों की मित्रता को दृढ़ करता है। चीन और हिन्दुस्तान की दोस्ती विश्व-शांति के हमारे संघर्ष में सहायता करती है।"

काश्मीर में "साम्यवादी षड्यन्त्र" का शोर उठाने वाले साम्राजी दुमछल्लों को नंगा करते हुए दूसरे प्रस्ताव में कहा गया है कि :

"राज्य के अन्दर और बाहर कुछ ऐसे खतरनाक अवसरवादी व्यक्ति और समूह हैं जो हमारे कार्यक्रम और नीति का विरोध करते हैं। जम्मू में ये 'प्रजा परिषद्' के नाम से साज़िशें करते हैं और काश्मीर में इसी प्रकार के व्यक्ति मुस्लिम-साम्प्रदयिकता को भड़काना चाहते हैं जो शेख अब्दुल्ला की रिहाई की मांग करते है। इसी प्रकार के कुछ लोग और तत्व काश्मीर में 'साम्यवादी षड्यन्त्र' का नाम लेते हैं। ये लोग कभी 'जनवादी-समाजवाद' और कभी 'अवामी-समाजवाद' का नाम लेकर आते हैं। लेकिन इन सभी लोगों का एक ही उद्देश्य है—साम्राजियों और सामन्तों की सहायता के लिए जनवादी आन्दोलन की एकता को नष्ट करना ... हम अपने सदस्यों और कार्यकर्ताओं से अपील करते हैं कि वे इस कम्युनिस्ट और गैर कम्युनिस्ट के चक्कर में न पड़ें। बल्कि वे अपने राष्ट्रीय कार्यक्रम के अनुसार काम करें......।"

इन महत्वपूर्ण प्रस्तावों के अतिरिक्त एक और अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रस्ताव 'भूमि-सुधार' के सम्बंध में था। अधिवेशन में इस सुधार के बारे में यह आलोचना की गई कि पुरानी भ्रष्टाचार नौकरशाही के कारण जमीन का बटवारा ठीक से नहीं हुआ। बहुत से किसानों को जमीनें नहीं मिली। इस सुधार के लिए एक कमेटी नियुक्त कर दी गई है।

इसी तरह के प्रस्ताव बेकारी, कर, स्वास्थ्य तथा शिक्षा आदि के विषयों पर पास हुए।

सोवियत-नेताओं का स्वागत

नेशनल कांन्फ्रेंस के नेतृत्व में काश्मीर की आम जनता ने नौ व दस दिसम्बर १९५५ ई० को सोवियत-नेताओं का भव्य स्वागत किया।

काश्मीर में सोवियत के महान अतिथियों का जैसा स्वागत किया गया, उसकी तुलना काश्मीर के इतिहास में शायद न मिले।

काश्मीर की राजधानी श्रीनगर पूरी आभा से सजी थी। नगर के बच्चे बच्चे के लिए जैसे कोई अपूर्व त्यौहार का अवसर आ गया था। श्रीनगर ही नहीं, दूर दूर से ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों और घाटियों को पार कर बहुत से लोग इस अपूर्व समारोह का दृश्य देखने के लिए जम्मू और लद्दाख तक से आये थे।

स्वागत-समारोह का सबसे आकर्षक अंग सोवियत नेताओं का नौका-जलूस था। 'परिन्दे' नाम के खूब सजाये हुए बजरे में जिसे पुराने जमाने में काश्मीर के महाराजा लोग प्रयोग में लाते थे, सोवियत नेताओं को झेलम में सैर कराई गयी।

हवाई अड्डे से छतबल घाट तक के दस मील के रास्ते पर दोनों तरफ़ हर्ष-ध्वनि करती हुई जनता ने सोवियत नेताओं का स्वागत किया। रास्ते में रेशम और सुन्दर कपड़ों से दस हजार तोरण-द्वार बने हुए थे।

चार लाख जन-संख्या का लगभग पूरा शहर यह अपूर्व दृश्य देखने के लिए अपने घरों से निकलकर नदी के किनारे आ गया था। नदी के किनारे तमाम घरों पर भारत और सोवियत के राष्ट्रीय झंडे फहरा रहे थे। इन घरों के छज्जों में स्त्रियाँ और बच्चे भरे हुए थे। जो नारे लगा रहे थे तथा हर्ष-ध्वनि कर रहे थे। किनारे की नावों पर बाजे बज रहे थे। औरतें मधुर गीत गा रही थीं, पटाखे छूट रहे थे। हर एक की ज़बान पर केवल ये ही शब्द थे: "बुल्गानिन ख़ुश्चेव ज़िन्दाबाद" हिन्दी-रूसी भाई-भाई।"

नौका जलूस के बाद सदरे रियासत द्वारा आयोजित स्वागत-समारोह में हर्ष-ध्वनि के साथ बुलगानिन ने कहा कि, "अगर हम भारत के इस उत्तरी भाग को न देखते तो हमारी यात्रा अधूरी रह जाती।"

काश्मीर के प्रधान मंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद से बातें करते हुए श्री बुल्गानिन ने कहा कि, "हमारे देश में आपको कोई विदेशी नहीं समझ सकता। आप बिल्कुल वैसे ही हैं जैसे हमारे दक्षिणी एशियाई प्रजातन्त्रों के लोग।"

श्री बुल्गानिन ने काश्मीर के एक मंत्री से बातें करते हुए कहा कि, "हम तो आपके पड़ौस में है। आप बस किसी पहाड़ी पर चढ़कर हमें इशारा कीजिए या पुकारिये और हम यहां फौरन पहुंच जायेंगे।"

श्रीनगर में प्रधान मंत्री द्वारा आयोजित सार्वजनिक समारोह में सोवियत कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रधान मन्त्री निकिता खुश्चेव का ऐतिहासिक व महत्वपूर्ण भाषण

प्यारे दोस्तो,

सबसे पहले मुझे इस बात की इज़ाज़त दीजिए कि मैं जम्मू व काश्मीर के सदरे रियासत युवराज कर्ण सिंह के प्रति, प्रधान मन्त्री बख्शी गुलाम मोहम्मद के प्रति और आप सबके प्रति जो यहां आए हैं तथा इस रियासत के तमाम लोगों के प्रति, जिन्होंने हमारा हृदय से स्वागत किया है, कृतज्ञता प्रकट करूं।

खास तौर पर उस हार्दिक प्रेम को हम कभी नहीं भूल सकते, जिस प्रेम के साथ काश्मीर की जनता ने हमारा स्वागत किया। हम जब नदी में नावों पर जा रहे थे तो नदी के दोनों किनारों पर खड़ी जनता की अपार भीड़ ने हमारा स्वागत किया। यही हाल श्रीनगर की खचाखच भरी गलियों के लोगों का था। भारत के उन सब शहरों और राज्यों की जनता की तरह जहां-जहां हम गये, काश्मीर की जनता की सोवियत संघ की जनता के साथ सच्ची दोस्ती और भाईचारे की भावना को देखकर हमारे दिल गद्‌गद् हो गये।

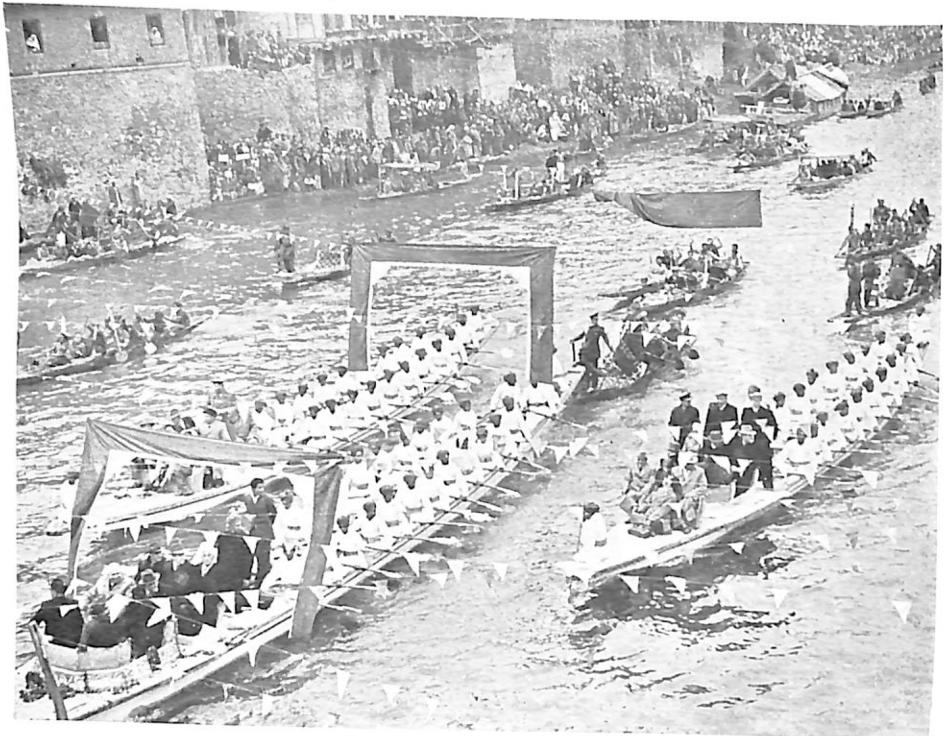
आपकी रियासत मध्य एशिया के सोवियत जनतन्त्रों, ताजकिस्तान, तुर्कमानिस्तान और उजबेकिस्तान के सबसे ज़्यादा नज़दीक है। इसीलिए हमने कृतज्ञता के साथ, आपकी रियासत के प्रधान मान्यवर युवराज कर्ण सिंह का निमंत्रण काश्मीर आने के लिए, स्वीकार किया। हमें आपकी रियासत में आने की एक खास खुशी यह भी है कि यह भारत के प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू का घर है जिनकी हम बहुत इज्जत करते हैं।

इसके अलावा, आपके देश की जलवायु वैसी ही है जैसी कि हमारे मध्य एशिया के जनतन्त्रों की। और खेती की पैदावार भी यहां दोनों जगह लगभग एक-सी है। यहां आने पर हमें ऐसा लगा जैसे कि यह हमारा ही प्यारा देश हो, हमारा दक्षिणी मध्य एशिया का कोई देश हो।

काश्मीर और उसकी राजधानी श्रीनगर की आबादी मिली-जुली है। यहां काश्मीरी और डोगरा रहते हैं। काश्मीर निवासियों में हिन्दू, मुसलमान, सिख और दूसरी जातियों के धर्मों के लोग भी हैं। लेकिन जब हम श्रीनगर की गलियों से गुजरे तो हमने देखा कि सभी धर्मों व जातियों के लोग एक समान प्रेम के साथ हमारा स्वागत कर रहे थे। यह प्रेम स्वागत के उन



सोवियत अतिथियों के सम्मान में आयोजित 'नादिम' के गीत-रूपक समाप्त होने के बाद श्री बुल्गानिन कलाकार नव-युवतियों को गुलदस्ते भेंट कर रहे हैं ।



श्रीनगर में सोवियत अतिथियों के स्वागतार्थ अपूर्व नौका जलूस ।

नारों में भी चमक रहा था, और उन शब्दों में भी झलकता था जिनसे श्रीनगर की जनता ने हमारा स्वागत किया।

और इस सबका भारतीय गणतंत्र के प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू के नाम के साथ सम्बन्ध है। भारत के दूसरे राज्यों की तरह वह यहां भी बहुत लोकप्रिय और प्रभावशाली हैं।

इससे यह जाहिर है कि अलग-अलग धर्मों व जातियों की जम्मू व काश्मीर की जनता आपस में दोस्ताना तरीक़े से रहती है और अपने प्यारे देश भारतीय गणतंत्र की खुशहाली के लिए मिलकर काम करना चाहती है।

अलग-अलग जातियों के इस परस्पर मित्रतापूर्ण सहयोग को हम बहुत पसन्द करते हैं और हम इसे अच्छी तरह समझते भी हैं। हमारे देश में भी बहुत-सी जातियां हैं। सोवियत संघ में अलग अलग धर्मों के मानने वाले लोग रहते हैं। लेकिन इससे वहां एक-दूसरे के साथ कोई ग़लत फ़हमी पैदा नहीं होती और सोवियत रूस की भारी जनता एक सुखी परिवार की तरह साथ साथ रहती है और काम करती है। धर्म का सवाल तो व्यक्ति की अन्तरात्मा से सम्बंधित है, वह चाहे जिस देश का हो।

हमारे प्रतिनिधि मण्डल में उज़बेकिस्तान और ताजकिस्तान के प्रतिनिधि जब्बार रसूलोव, जोहरा रहीमबाबावोव, शरीफ रशीदोव हैं। इन जनतंत्रों की जनता इस्लाम धर्म को मानती हैं। लेकिन हमारे देश में इस्लाम धर्म मानने वालों और दूसरे धर्म मानने वालों में क्या भेद है? हमारे यहां इस तरह का कोई भेद नहीं है, क्योंकि हमारे देश के तमाम लोग महान सोवियत संघ के योग्य नागरिक हैं और हमारे देश की जनता के एक परिवार के सदस्य हैं।

सोवियत संघ में जातियों और धार्मिक विश्वास की आज़ादी के दोनों सवालों का हमने अच्छा हल निकाल लिया है। हमारे देश में हर नागरिक जिस तरह ज़रूरत समझे अपने धार्मिक जीवन की व्यवस्था कर सकता है। मैं यह इसलिए कह रहा हूं कि जिसमें इस सवाल पर अपनी बात साफ-साफ बता दूं।

आप देखते हैं कि कुछ राज्य जातीय विरोध की आग भड़का कर और लोगों में धर्म-सिद्धांत के आधार पर फूट डालकर भारत की जनता में अब भी विद्वेष के बीज बोना चाहते हैं। ऐसे राज्यों के सरकारी प्रतिनिधि झगड़े पैदा करने की सक्रिय कोशिश कर रहे हैं। लेकिन क्या यह भारत और उनकी जनता के हित में होगा? हम सोचते हैं कि उससे पूरे देश और उसकी जनता दोनों के हितों को नुकसान पहुंचेगा।

जनता चाहती है कि अपने सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा उठाने और अपनी भौतिक सुरक्षा को निश्चित करने के लिए काम करने का उसे अवसर मिले। वह चाहती है कि साम्राजी शक्तियों की मनमानी से मुक्त, उनका अपना स्वतंत्र राज्य हो। लेकिन क्या इस सबका कहीं उससे भी सम्बंध है कि कौन लोग किस धर्म को मानते हैं ? मेरा ख़याल है कि ऐसी बात नहीं है।

राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए या शिक्षा के स्तर को लगातार बढ़ाने के लिए अथवा भौतिक सुरक्षा की गारन्टी करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि एक धर्म के सिद्धांत के आधार पर राज्य की स्थापना की जाय। इसके लिए जरूरी यह है कि जनता स्वतंत्र हो और यह भी कि मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण खतम कर दिया जाय। सोवियत समाजवादी देश की स्थापना करके हमने इसे अपने ढंग से पूरा किया।

हमने अपने देश में उस स्थिति को ही ख़त्म कर दिया है जिसमें मनुष्य का शोषण सम्भव था। लेकिन हमने अपने विचारों को या अपने राज्य का स्वरूप न किसी पर लादा है और न हम लादते हैं।

हर देश की जनता को ख़ुद ही यह तय करना है कि उसके राज्य का स्वरूप क्या हो और उसकी विचारधारा क्या हो। लेकिन यह बात तो हम ज़रूर कहेंगे कि हमारी जनता ने जो रास्ता चुना है उससे हमारी रचनात्मक शक्ति फूली-फली है और भविष्य की प्रगति के लिए हमारे सामने अपार सम्भावनाएं आ गयीं हैं। इससे हमारी अर्थ-व्यवस्था और संस्कृति का भी विकास हुआ है और आम तौर पर जनता की भलाई बढ़ती जा रही है।

काश्मीर का सवाल क्यों उठा ? जनता ने इसे नहीं उठाया। जो देश अपने को उपनिवेशवाद से मुक्त कर लेते हैं और विदेशी अत्याचारियों की युगों पुरानी दासता के बन्धनों को तोड़ देते हैं, कुछ राज्य उनमें झगड़े लगाने में अपना फ़ायदा देखते हैं।

ऐसा करके इजारेदार अपने लक्ष्यों को ही पूरा करने की कोशिश करते हैं। वे जनता के एक हिस्से में दूसरे हिस्से के खिलाफ़ जहर भरते हैं, जिसमें वे इन देशों को अपने अधीन कर सकें, ख़ास कर आर्थिक दृष्टि से, और उन्हें अपनी मर्ज़ी के आसरे रख सकें। मेरे लिए यह साफ़-साफ़ कहने की ज़रूरत नहीं हैं कि कौन से राज्य काश्मीर के सवाल को बराबर गम्भीर बना रहे हैं, क्योंकि यह बात सबको मालूम ही है। इससे भी बड़ी बात तो यह है कि ये राज्य दरअसल यह बात भी नहीं छिपाते कि वे इस समस्या को और गम्भीर बनाने में दिलचस्पी रखते हैं।

सुरक्षा परिषद में एक बार काश्मीर के सवाल पर बहस हुई थी। उस समय सोवियत प्रतिनिधि ने इस सवाल पर सोवियत संघ के मत को रखा था। इस सवाल पर हमारी राय बहुत साफ और निश्चित है। सोवियत संघ ने काश्मीर के राज्य के सवाल को हमेशा ही इस तरह देखा है कि इसका फैसला खुद काश्मीर की जनता को करना है। क्योंकि यह जनतन्त्र के सिद्धांतों के अनुकूल होगा और इससे इस इलाक़े की जनता में मित्रतापूर्ण सम्बंधों को मज़-बूत करने में मदद मिलेगी।

सोवियत संघ ने इस सवाल को हमेशा निष्पक्ष और यथार्थवादी दृष्टि से देखा है, उसने हमेशा काश्मीर की जनता और उसकी शांति-प्रेमी जनवादी शक्तियों के प्रति हार्दिक मित्रता की भावना प्रकट की है, जो भारतीय गणतंत्र की प्रगतिशील और शांति-प्रेमी शक्तियों के साथ, जो कश्मीरी जनता की राष्ट्रीय आकांक्षाओं को साफ़-साफ़ समझती है और उनकी सराहना करती है, अपने मित्रतापूर्ण सम्बंध जोड़ चुकी है। जैसा कि तथ्यों से साफ है, काश्मीर की जनता साम्राज्यवादी शक्तियों के हाथ का खिलौना नहीं बनना चाहती। लेकिन साम्रा-ज्यवादी शक्तियां काश्मीर के सवाल पर पाकिस्तान का समर्थन करने के बहाने यही करने की कोशिश कर रही हैं।

आपकी अनुमति से मैं भारत के दो राज्यों के बंटवारे के सवाल पर अपनी राय रखना चाहूंगा।

भारतीय मित्रो ! साम्राज्यवादी शक्तियां भारत को जब भारत और पाकिस्तान के दो हिस्सों में बांटने में सफल हो गयी, तो हमें गहरा दुख हुआ। दरअसल, भारतीय जनता के स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पहले, एक ही संयुक्त भारत था। भारत का दो हिस्सों में बंटवारा भारतीय जनता के हित में नहीं किया गया था। ठीक इसीके लिए भारतीय जनता के धार्मिक भावों को भड़काया गया था। यद्यपि किसी राज्य के निर्माण में धार्मिक विश्वास का सवाल कोई महत्वपूर्ण कारण नहीं रहा है।

हम अपने देश का एक उदाहरण दे सकते हैं। सोवियत संघ में डेढ़ करोड़ से ज़्यादा मुसलमान रहते हैं। इसके साथ ही दूसरे धर्मों के मानने वाले भी हैं। धार्मिक विश्वासों में भेद के बावजूद हमारे देश की जनता भाई-भाई जैसी मित्रता के साथ रहती है। उन्होंने समाजवाद के देश, सोवियत समाजवादी जनतन्त्र संघ के अपने एक राज्य की स्थापना की, और बराबर उसे मजबूत करते जा रहे हैं।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि पाकिस्तान का निर्माण और भारत के संयुक्त राज्य से उसके अलग किये जाने के पीछे मुख्य कारण धार्मिक मतभेद का नहीं था। कुछ राज्यों ने, जिन्होंने बहुत दिनों से 'फूट डालकर राज करो' की नीति अपना रखी है, इसमें सक्रिय रूप से मदद दी थी। अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए उन्होंने धर्म और मत के भेदों का फ़ायदा उठाया।

हमें पूरा विश्वास है कि जब उत्तेजना शांत हो जायगी और लोग देखेंगे कि इस नकली बंटवारे का क्या महत्व है, तो वे इसपर पछतायेंगे। लेकिन भारत और पाकिस्तान के दो स्वतंत्र राज्यों के निर्माण का सवाल तो पहले ही तय हो चुका है। मैंने इस बारे में अपनी साफ़-साफ़ राय रख दी है; लेकिन इसके यह क़तई माने नहीं है कि इस सवाल पर कहीं भी फिर से विचार किया जाय। मैंने तो सिर्फ़ एक वास्तविक बात बता दी है। जहां तक ये दोनों राज्य क़ायम हैं और बढ़ रहे हैं, यह बिलकुल ज़रूरी नहीं है, जैसा कि कुछ राज्य चाहेंगे, कि उनकी सीमा फिर से तय की जाय। सभी जानते हैं कि सीमा बदलना हमेशा कष्टदायक होता है और बिना हिंसा या ख़ून-ख़राबी के नहीं होता।

भारतीय गणतंत्र के एक राज्य के रूप में काश्मीर के सवाल का फ़ैसला काश्मीर की जनता कर चुकी है। यह जनता का अपना मामला है। मैं समझता हूं कि दोनों पक्षों के लिए अब ज़रूरी है कि इस इलाक़े में शान्ति क़ायम रखने की इच्छा प्रकट करें, क्योंकि भारत और पाकिस्तान का विकास महज़ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की स्थिति में ही हो सकता है। भारतीय गणतंत्र के साथ हमने बड़े ही मित्रतापूर्ण सम्बंध क़ायम कर लिये हैं। हमारे आपसी सम्बंध इस रूप में इसलिए क़ायम हैं कि वे सह-अस्तित्व के ५ प्रसिद्ध सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के बहुत से मसलों पर हमारे समान दृष्टिकोण हैं। हमने फ़ौजी संधियों और गुटबन्दियों के ख़िलाफ़ समान रुख़ लिया है और समान मत प्रकट किये हैं। हमारे देशों की सरकारें अन्तरराष्ट्रीय तनाव घटाने और नया युद्ध छिड़ने से रोकने की नीति पर चल रही हैं। भारत का स्वतंत्र और प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य एक नवोदित और बढ़ता हुआ राज्य है। हमें जो बात उसके नज़दीक लाती है वह यह है कि वह सारी दुनिया में शांति के लिए सक्रिय रूप से ल रहा है। जैसे कि हम लोग भारतीय गणतंत्र के अन्दरूनी मामलों में दख़ल नहीं देते, वैसे ही भारत भी हमारे अन्दरूनी मामलों में दख़ल नहीं देता। हर राज्य के मामले उस राज्य की जनता को ख़ुद तय करने हैं।

जबकि भारतीय गणतंत्र को हम शान्ति के संघर्ष में और विवादास्पद

समस्याओं को शांति के साथ हल करने के संघर्ष में, एक मित्र के रूप में पाते हैं, दुर्भाग्य से यही बात हम पाकिस्तान के लिए नहीं कह सकते हैं। पाकिस्तान भी एक नवोदित राज्य है। लेकिन इस राज्य के शासक गुटों की नीति से हमें परेशानी होती है। तथ्य यह दिखाते हैं कि उनकी नीति जनता और राज्य के सच्चे हितों पर आधारित नहीं है बल्कि दूसरे देशों के इजारेदार क्षेत्रों द्वारा नियंत्रित है।

पाकिस्तान की मौजूदा सरकार खुले आम अमरीकी इजारेदार क्षेत्रों के साथ अपने निकट सम्बंधों की घोषणा करती है। शरारत भरे बग़दाद-समझौते की पहलक़दमी में वह सबसे आगे थी। यह समझौता शांति के हित में नहीं हुआ है। उसने अपनी भूमि पर अमरीकी फ़ौजी अड्डे बनने दिये हैं। और ये सोवियत संघ के सीमा के बिलकुल पड़ोस में हैं।

हम खुले आम कहते हैं कि पाकिस्तान की भूमि पर अमरीकी फ़ौजी अड्डों का बनना निश्चय ही हमें परेशान करेगा। पाकिस्तान के सक्रिय सहयोग से इस बात की और भी कोशिश की जा रही है कि बग़दाद-समझौते में शामिल होने वाले राज्यों की संख्या बढ़ायी जाय। यह दुख की बात है कि साम्राजी शक्तियों ने ईरान की सरकार को इस समझौते में शामिल कर लिया। हम साफ़-साफ़ कहते हैं हमने बग़दाद समझौते या सोवियत संघ के खिलाफ़ किये गये किसी भी समझौते में शामिल होने वालों का कभी भी न समर्थन किया है और न करेंगे। अगर हम इसके विपरीत करेंगे तो हम राजनीतिक अंधे समझे जायंगे।

यह सभी के सामने साफ़ है कि बग़दाद-समझौता सोवियत संघ 'और दूसरे शांति-प्रिय देशों के खिलाफ़ किया गया है। इसलिए हमारा उद्देश्य है इस समझौते को, जिसकी वजह से दुर्घटनाएं हो सकती हैं, कमज़ोर किया जाय। हम हृदय से चाहते हैं कि शांति-प्रिय स्वतंत्र भारत का गणतंत्र समृद्धि प्राप्त करे और बराबर बलवान होता जाय।

पाकिस्तान सरकार के एक और अमैत्रीपूर्ण कार्य का हमें पता लगा है। पाकिस्तान सरकार के विदेश मंत्री के कार्यालय ने सोवियत राजदूत को बुलाकर उससे कहा कि मैं और मेरे मित्र श्री बुल्गानिन कश्मीर की यात्रा के लिए जाने से इन्कार कर दें और श्रीनगर तथा आपके राज्य के दूसरे भागों में आने के आपके राज्य के प्रधान के निमंत्रण को अस्वीकार कर दें। इसे दूसरे के मामलों में अभूतपूर्व हस्तक्षेप के अलावा और कुछ नहीं समझा जा सकता। इसके पहले लोग इस हद तक नहीं पहुंचे थे कि हमें बतायें कि हम कहां जायं,

कहाँ न जायं, हम क्या करें, क्या न करें, अपने लिए किस तरह के दोस्तों को चुनें :

हम बग़दाद-समझौते को क़तई पसन्द नहीं करते। पाकिस्तान इसका सबसे सक्रिय हिस्सेदार है। यद्यपि इसमें हिस्सा लेने से उसका या उसकी जनता का कोई फ़ायदा नहीं होगा। लेकिन हम धीरज रखे हैं और यह विश्वास करते हैं कि बग़दाद-सभझौता पानी के बुलबुले की तरह फूट जायगा और लोगों का इसकी सिर्फ़ कुछ अप्रिय याद ही बनी रहेगी।

पाकिस्तान के विदेश मंत्रालय के एक प्रमुख प्रतिनिधि ने उस देश में हमारे राजदूत से कहा कि पाकिस्तान सरकार इसे पसन्द न करेगी कि हम अफ़गानिस्तान जायं जो कि हमारा पड़ोसी देश है। यह ज़रा हद से बाहर जाने की बात है। जो ऐसी बात करते हैं वे अपने को बहुत कुछ समझ लेते हैं।

अफ़गानिस्तान हमारा एक अच्छा पड़ोसी है, जिसके साथ अरसे से हमारे मित्रतापूर्ण सम्बंध हैं। हम इन सम्बंधों को बढ़ाना और मज़बूत करना चाहते हैं। हमें उम्मीद है कि अफ़गानिस्तान की हमारी इस यात्रा से इसमें मदद मिलेगी।

हम बहुत चाहते हैं कि पाकिस्तान के साथ भी हमारे ऐसे ही मित्रतापूर्ण सम्बंध हों। अगर अबतक इस तरह के सम्बंध नहीं बन पाये हैं तो इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। फिर भी शान्ति के हित में हम बराबर इन सम्बंधों को सुधारने की कोशिश करते रहेंगे।

सोवियत संघ ने हमेशा ही सारी दुनिया में शान्ति और विभिन्न देशों की जनता और राज्यों में मित्रता का समर्थन किया है और हमेशा करते रहेंगे। महान लेनिन हमें यह रास्ता बता गये हैं और दूसरे राज्यों और उनकी जनता से मित्रता बढ़ाते और मजबूत करते हुए हम इस रास्ते पर बिना पीछे मुड़े बराबर चलते रहेंगे।

भारतीय गणतंत्र और सोवियत संघ की मित्रता और सहयोग ज़िन्दाबाद ! विश्व-शान्ति ज़िन्दाबाद !

श्री ख्रुश्चेव की इन घोषणाओं से साम्राजियों के खेमे में मातम छा गया। दूसरी तरफ़ काश्मीर की जनता को इनके भाषण से शांति और प्रेम का आश्वासन मिला। काश्मीर की जनता शांति चाहती है, अपनी स्थिरता चाहती है। वह मित्र चाहती है। आज यह देखकर कि उनका पड़ोसी सोवियत देश उन्हें अपनी मित्रता और समर्थन का आश्वासन दे रहा है, उन्हें बड़ी निश्चिन्तता और सन्तोष हुआ है।

सोवियत नेताओं ने काश्मीर के कलाकारों द्वारा आयोजित 'नादिम' का गीति-रूपक 'बम्बुर-यम्बरज़ल' भी देखा।

सोवियत नेताओं को बिदा करते समय हज़ारों की संख्या में काश्मीरी नर-नारी हवाई अड्डे तक गए। इतना विशाल समारोह काश्मीर के इतिहास में कभी नहीं हुआ।

सोवियत नेताओं को बिदा करने के बाद काश्मीर के प्रत्येक व्यक्ति के मुंह पर ये शब्द थे कि, "काश्मीर के भविष्य के बारे में अब कोई चिन्ता नहीं है। काश्मीर विदेशी साम्राजियों का फौजी अड्डा हरगिज़ न बनने पायेगा"।

नेशनल कान्फ्रेंस के अतिरिक्त काश्मीर में कुछ अन्य राजनीतिक पार्टियां, तथा ग्रुप भी हैं। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और प्रजा-परिषद की स्थापना, उनके कार्यक्रम और काम के विषय में पीछे लिखा जा चुका है। इनके अलावा एक संस्था 'पोलिटिकल कान्फ्रेंस' है, जो काश्मीर को पाकिस्तान में मिलाने के पक्ष में है। इस पार्टी के नेता 'महीउद्दीन कर्रा' हैं। शेख अब्दुल्ला के साथियों का भी एक ग्रुप है। उनके एक निकट के साथी और भूतपूर्व माल मन्त्री मिर्ज़ा अफ़ज़ल बेग ने 'जनमत-मोर्चा (Plebicite Front) स्थापित किया है।

काश्मीरी पंडितों की भी एक सभा है। इसका नाम है 'युवक सभा'। इस संस्था का "मार्तण्ड" नाम का एक दैनिक-पत्र भी चलता है। हाल ही में श्रीनगर में इनका एक अधिवेशन भी हुआ था। इस अधिवेशन के प्रस्तावों से पता चलता है कि युवक सभा अभी तक तंग नज़रिये से ही सोचती है।

टूरिस्टों के लिए जानकारी

काश्मीर में प्रवेश करने वाले टूरिस्टों को वैसे तो मेरी किताब के सभी अध्यायों को पढ़ना आवश्यक है। लेकिन फिर भी टूरिस्टों की सुविधा और जानकारी के लिए विशेष तौर पर यहां कुछ आवश्यक बातों से उन्हें अवगत कराना जरूरी है।

जम्मू व काश्मीर राज्य में प्रवेश करने से पहले टूरिस्टों को परमिट लेना पड़ता है। परमिट निम्नलिखित स्थानों से मिल सकता है।

१. केवल भारतीय नागरिकों के लिए

(क) टूरिस्ट के अपने राज्य की सरकार के होम सेक्रेटरी से (ख) भारत सरकार के रक्षा-मन्त्रालय से (ग) सभी ज़िला मजिस्ट्रेटों से तथा (घ) पुलिस कमिश्नर, कलकत्ता से।

२ जम्मू तथा काश्मीर के स्थायी निवासियों के लिए, जो रियासत को वापिस लौटना चाहते हों।

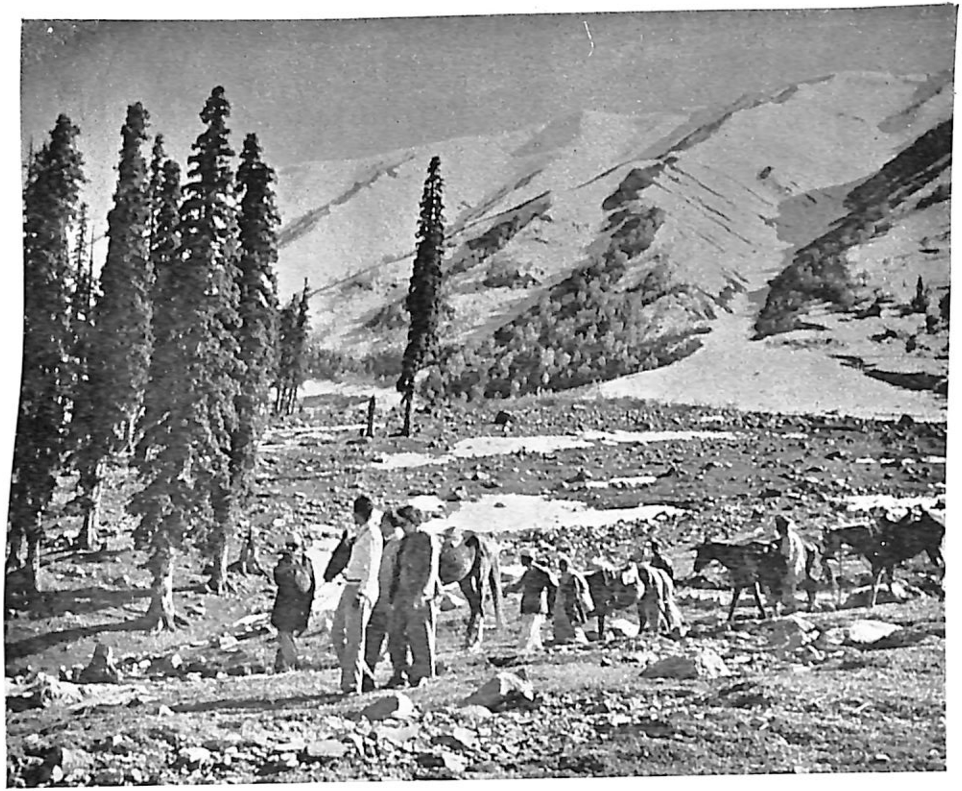
(क) ट्रेड कमिश्नर जम्मू तथा काश्मीर सरकार नयी दिल्ली से (ख) ट्रेड एजेन्ट जम्मू काश्मीर सरकार, पठान कोट, अमृतसर, बम्बई, मद्रास या कलकत्ता से।

३. विदेशियों के लिए जो भारत में अस्थायी या स्थायी रूप से बसे हुए हों

रक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली से।



सदरे रियासत युवराज कर्ण सिंह अपनी पत्नी के साथ अमरनाथ की यात्रा पर जाने से पहले पूजा-पाठ कर रहे हैं।



बर्फ से ढकी हुई गुलमर्ग की सुन्दरतम पहाड़ियां ।

४. 'टूरिस्ट विसा' रखने वाले विदेशियों के लिए

दिल्ली, बम्बई, मद्रास, या कलकत्ता में स्थित रीजनल टूरिस्ट आफ़ीसर से।

५. विमान सर्विस

दिल्ली और श्रीनगर के बीच नियम पूर्वक हवाई जहाज़ आते जाते हैं। विलिंगटन एयर पोर्ट, नयी दिल्ली से प्रातःकाल हवाई जहाज छूटता है। मार्ग में वह अमृतसर तथा जम्मू ठहरता हुआ उसी दिन तीसरे पहर श्रीनगर पहुंच जाता हैं और वहां से वापिस दिल्ली भी उसी दिन आ जाता है।

रेल सर्विस

दिल्ली से पठानकोट तथा अमृतसर से पठानकोट के लिए प्रति दिन गाड़ियां छूटती हैं। दिल्ली होकर आने वाली काश्मीर मेल प्रातः काल पठानकोट पहुंच जाती है। पठानकोट से आगे बस द्वारा यात्रा करनी पड़ती है।

बस सर्विस

पठानकोट से सीधे श्रीनगर तक प्रतिदिन बस सर्विस चलती है। पठान कोट से श्रीनगर की दूरी जम्मू के मार्ग से २६७ मील है। बसें बड़ी आरामदेह हैं, और उनमें १३ या २१ टूरिस्टों के बैठने की जगह, तथा सामान के लिए कैबिन होता है। किराया प्रति सीट रोड टैक्स को मिलाकर २० रुपया है। वापिसी टिकट का प्रति सीट किराया २७ रुपया है। टूरिस्टों को चाहिए कि वे वापिसी टिकट ही खरीदें। प्रत्येक टूरिस्ट ४४ पौंड सामान अपने साथ मुफ़्त ले जा सकता है। अतिरिक्त सामान के लिए प्रति मन ६ रुपये की दर से अलग किराया देना पड़ता है।

आठ सीटों वाली स्टेशन वैगन का पठानकोट से श्रीनगर तक का किराया २७० रुपये है, रोड टैक्स इससे अलग देना पड़ता है। मुफ़्त ले जाये जा सकने वाले सामान की मात्रा तथा अतिरिक्त सामान का किराया उपर्युक्त डी० लक्स बसों जैसा ही है। वे टूरिस्ट जो स्टेशन वैगन द्वारा भ्रमण करना चाहते हों या जिनकी पार्टी को पूरी बस की आवश्यकता हो, उन्हें चाहिए कि वे पठानकोट पहुंचने की तिथि से कम-से-कम दस दिन पहले अपने लिए गाड़ी बुक करालें। इसके लिए काश्मीर गवर्नमैंट टूरिस्ट-आफीसर, पठानकोट को लिखना चाहिए।

लिखते समय पठानकोट पहुंचने की तिथि और पार्टी के सदस्यों की संख्या का विवरण देना चाहिए तथा साथ ही आधा किराया अग्रिम भेज देना चाहिए।

पठानकोट से बस में सवार होकर जैसे ही आप खूबसूरत काश्मीर की तरफ प्रस्थान करेंगे तो १६ मील की दूरी पर आपको लखनपुर में सरकारी अधिकारियों को अपनी परमिट दिखानी पड़ेगी। सरकार ने टूरिस्टों की सुविधा के लिए इस परमिट और कस्टम पोस्ट पर काफी स्टाफ़ रख दिया है, ताकि टूरिस्टों का अधिक समय बरबाद न हो।

लखनपुर से ५६ मील की दूरी पर १००० फुट की ऊंचाई पर आप एक बड़े शहर जम्मू में पहुंच जाते हैं। इस शहर में सर्दियों के मौसम में जम्मू व काश्मीर सरकार की राजधानी रहती है। जम्मू शहर व पूरे जम्मू प्रान्त तथा उसके निवासियों के बारे में जानने के लिए टूरिस्ट मेरी किताब का 'जम्मू' का अध्याय पढ़ लें।

जम्मू से ४१ मील की दूरी पर और २,२४८ फुट की ऊंचाई पर उधमपुर आ जाता है जहां टूरिस्टों के आराम के लिए एक डाक बंगला है और एक अच्छा भोजनालय है।

उधमपुर से चलने के बाद २४ मील की दूरी पर ५,७०० फुट की ऊंचाई पर जब आप 'कुद' नाम के कस्बे में पहुंचते हैं तो आपको पहाड़ों का दृश्य बहुत ही शोभायमान लगेगा। कुद में टूरिस्टों के ठहरने के लिए एक डाक बंगला है और एक रैस्ट हाउस भी है। इसके अलावा एक डाक व तार घर तथा छोटा-सा अस्पताल है। गर्मियों में यहां मौसम बड़ा सुहावना रहता है। कुद में एक पानी का चश्मा है। अक्सर टूरिस्ट इस चश्मे का पानी पिए बिना बस को आगे नहीं चलने देते। पठानकोट से देर से चलने वाले टूरिस्ट रात कुद ही में व्यतीत करते हैं।

कुद से १२ मील के फासले पर और समुद्री सतह से ५,१७० फुट की ऊंचाई पर बटौत नाम का कस्बा आ जाता है जहां से चिनाब वैली का सुन्दर नज़ारा साफ दिखाई देता है। यहीं से बधरवा और किश्तवाड़ को सड़क भी जाती है। बटौत में भी एक डाक व तार-घर तथा अस्पताल है। टूरिस्टों के ठहरने के लिए एक डाक बंगला व होटल है। पठानकोट से बस में चलने वाले टूरिस्ट अक्सर बटौत में भी रात बिताते हैं।

बटौत से पहाड़ों, जंगलों तथा नदी-नालों के सुन्दर दृश्यों से गुजरते हुए आप सबसे ऊंचे पर्वत की श्रेणी बनिहाल पर पहुंच जाते हैं। बनिहाल में भी

एक डाक बंगला है और छोटे-बड़े होटल व रैस्टोरैन्ट हैं। यहां एक चैक पोस्ट भी है, और बनिहाल रोड के ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ने से पहले यहां मोटर बसों को कुछ देर के लिए रुकना पड़ता है।

बनिहाल से ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ते-चढ़ते बनिहाल पास रोड के सबसे ऊंचे रास्ते पर पहुंच जाते हैं। समुद्री सतह से ८,६८५ फुट ऊंचा यह बनिहाल पास रोड दुनिया में लगभग सबसे ऊंचा रास्ता है। इस पहाड़ की श्रेणी से बस से जब आप वैली का खूबसूरत दृश्य देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि वास्तव में आप 'स्वर्ग की घाटी' काश्मीर में पहुंच गये।

बनिहाल के इस खतरनाक रास्ते को पार करके नीचे ५,६६७ फुट की ऊंचाई पर वैली के एक कस्बे काजीकुंड में पहुंच जाते है। यहां आप अपनी थकान को दूर कर सकते हैं और साथ ही पेट-पूजा कर सकते हैं। यहां भी टूरिस्टों की सुविधा के लिए एक डाक बंगला है और डाक व तार घर भी हैं।

काजीकुंड से ११ मील की दूरी पर खन्नाबल नाम की एक जगह है जहां से एक मील की दूरी पर अनन्तनाग नामक एक बड़ा कस्बा है। यहां से ही पहलगाम, अच्छाबल, अनन्तनाग व कुकरनाग के मशहूर चश्मों तथा मारतंड के स्मारक-चिन्हों के लिए रास्ता अलग होता है।

खन्नाबल से आगे आप अवन्तीपुर मंदिरों के खंडहर तथा पांपोर के केसर के खेतों को देखते हुए काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में दाखिल हो जाते हैं।

श्रीनगर में बस से उतरते ही होटल वाले, हाउस बोट वाले तथा सामान ले जाने के लिए कुली आपको चारों ओर से घेर लेंगे। बस से उतरते ही टूरिस्टों को चाहिए कि वे धैर्य और शान्ति से काम लें। बस के अड्डे से सामान उठाने से पहले होटल वाले या हाउसबोट वाले से सब चीज़ों के बारे में तय कर लें, यहां तक कि कुलियों से भी उनकी मज़दूरी के बारे में पहले ही निश्चित कर लेना चाहिए। इस तरह से टूरिस्टों को अधिक सुभीता रहता है।

श्रीनगर समुद्री सतह से ५ २१४ फुट की ऊंचाई पर है और जम्मू व काश्मीर स्टेट की गर्मी के मौसम की राजधानी है। श्रीनगर के बारे में जानने के लिए टूरिस्टों को चाहिए कि वे इस किताब का 'श्रीनगर' का अध्याय पढ़लें। इससे उन्हें श्रीनगर में घूमने में भी आसानी होगी।

श्रीनगर से कुछ दूरी पर डल लेक के किनारे मुगलों के शानदार बाग हैं। टूरिस्टों को चाहिए कि रविवार को इन बागों की अवश्य सैर करें।

प्रत्येक रविवार को इन बागों में फव्वारे छूटते हैं और सरकार की ओर से प्रदर्शन का खास इन्तजाम होता है। मुगलों के बागों के बारे में खुलासा जानने के लिए टूरिस्ट इस किताब का 'मुगलों के बाग' नामक अध्याय अवश्य पढ़ें।

गुलमर्ग

टूरिस्टों के देखने तथा रहने के लिए श्रीनगर से लगभग ३४ मील की दूरी पर और समुद्री सतह से ६५०० फुट की ऊंचाई पर एक सुन्दर स्थान गुलमर्ग है। इसे हिन्दुस्तान के सभी हिल स्टेशनों की 'रानी' कहा जाता है। यहां के हरे-हरे मैदानों और इसके चारों तरफ पहाड़ों का दृश्य अति शोभायमान है। गुलमर्ग में बहुत से होटल हैं। एक क्लब है। यहां अक्सर यूरोपियन ही ठहरते हैं। हिन्दुस्तान के टूरिस्ट इस स्थान में बहुत कम रुकते हैं। सभी टूरिस्टों को मेरी सलाह है कि वे इस स्थान पर कम-से-कम १ हफ्ता अवश्य रहें और यहां के आसपास के सुन्दर स्थानों का लुत्फ़ हासिल करें।

गुलमर्ग से लगभग तीन मील की दूरी पर खिलनमर्ग है। खिलनमर्ग से आपको नागापर्वत की चोटियां, वुलरलेक आदि का नजारा दिखाई पड़ेगा। खिलनमर्ग से लगभग पांच मील की चढ़ाई के बाद अलपत्थर का स्थान आता है और यहीं पर्वत के नीचे पानी की एक झील है, जिसके आसपास अक्सर बर्फ़ जमी रहती है। यहां काफ़ी सर्दी है, अलपत्थर तक आने के लिए टूरिस्टों को काफ़ी गर्म कपड़े पहनकर चलना चाहिए।

गुलमर्ग से सात मील की दूरी पर निंगल नाला है। निंगल नाले तक पहुंचने के लिए जंगल के रास्ते से गुजरना पड़ता है। इसी नाले से तीन मील पहाड़ी चढ़ाई के बाद 'निंगल मर्ग' नाम का एक और सुन्दर स्थान है।

गुलमर्ग से तीन मील की दूरी पर 'बाबारिशी' नाम की जियारत है। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए इस ज़ियारत पर आते हैं। इसकी देखभाल करने वालों ने 'बाबारिशी' की इस जियारत को ५०० वर्ष पुरानी बताया।

टूरिस्टों को गुलमर्ग में कम-से-कम एक सप्ताह रहकर इन सभी स्थानों को देखना चाहिए।

पहलगाम

गुलमर्ग के बाद टूरिस्टों के रहने और देखने का सुन्दर स्थान पहलगाम है। हिन्दुस्तान से आने वाले अधिकतर टूरिस्ट अपना ज्यादातर समय यहीं

बिताते हैं। पहलगाम समुद्री सतह से ७,००० फुट की ऊंचाई पर है और इसके बीच में पानी के दो नाले बहते हैं। जिनके पानी की आवाज़ हर समय कानों में गूंजती रहती है। इन पानी के नालों के किनारों पर अक्सर टूरिस्ट टैन्ट लगाकर रहते हैं। यहां एक क्लब भी है।

ऊंचे पर्वतों पर चढ़ने के लिए पहलगाम लगभग सबसे अच्छी जगह है। यहीं से लोग अमरनाथ की यात्रा के लिए जाते हैं।

पहलगाम से आठ मील की दूरी पर और समुद्री सतह से ९,५०० फुट की ऊंचाई पर चन्दनवाड़ी नाम का एक सुन्दर स्थान है। यह अमरनाथ के रास्ते में है। चन्दनवाड़ी अपने बर्फ़ीले पुल के लिए मशहूर है। इससे आगे १२,७०० फुट की ऊंचाई पर शेषनाग की लेक और ग्लेसियर हैं। यह लेक जून के महीने तक बर्फ़ से ढकी रहती है। १४००० फुट की ऊंचाई पर कोलाहाई का मशहूर ग्लेसियर है और फिर इसी रास्ते पर हिन्दुओं का एक पवित्र स्थान अमरनाथ आ जाता है।

अमरनाथ

अमरनाथ की गणना भारत के महान् तीर्थों में की जाती है। रास्ते की भयंकरता तथा मुसीबतों की चिन्ता न करके प्रतिवर्ष हज़ारों नर-नारी देश के कोने कोने से वहां जाते हैं।

अमरनाथ की गुफा १,२७,२९ फुट की ऊँचाई पर स्थित है। गुफा की लम्बाई ५० फुट, चौड़ाई ५५ फुट और ऊंचाई ४५ फुट है। इतनी ऊंचाई पर यह विशाल गुफा देश-विदेश के यात्रियों का एक आकर्षण का केन्द्र बन गई है। कन्दरा की गोलाकार महराब को देखकर बड़े से बड़ा कारीगर भी चकित हो जाता है। कन्दरा का मुंह चौड़ा है, थोड़ी छत है, पीछे पत्थर की ऊबड़-खाबड़ दीवार सी है। अन्दर दाहिने कोने की दीवार में एक बड़ा गोल सा कोना है। कहते हैं कि इसी स्थान पर नीचे से उठकर शिवलिंग निर्मित होता है। उसके सामने एक ओर को पार्वती और उनके निकट गणेश की हिम मूर्तियां बनती हैं।

शिवपिंडी ही अमरनाथ महादेव कहलाती है और इसी की पूजा के लिये दूर-दूर से यात्री यहां आते हैं। कहा जाता है कि अषाढ़ का चन्द्रमा ज्यों ज्यों पूर्ण होता जाता है, शिवलिंग बढ़ता जाता है और श्रावणी पूर्णिमा को पूरा बन कर तैयार हो जाता है। ज्यों ज्यों चन्द्रमा की ज्योति क्षीण होती जाती है, शिवलिंग भी घटता जाता है और अमावस्या के दिन वह बर्फ का समतल ढेर मात्र रह जाता है।

अमरनाथ की गुफा बहुत बड़ी है। उसमें सैकड़ों व्यक्ति आसानी से ठहर सकते हैं। गुफा का ढाल डयोढ़ी की ओर है। उसके ऊपर बहुत ऊंचा पहाड़ है। काश्मीर सरकार ने यात्रियों की सुविधा के लिए थोड़े-थोड़े फासले पर लोहे की एक रेलिंग बनवा दी है, जिससे दर्शनार्थी अच्छी तरह बिना भय के यहां ठहर कर दर्शन कर सकें।

अमरनाथ की वार्षिक यात्रा श्रावण मास अर्थात् अगस्त में होती है। भारत के अलग-अलग भागों से लोग आ-आकर श्रीनगर के दशनामी अखाड़े पर इकट्ठे हो जाते हैं। श्रावण की अमावस्या के दिन यात्रा प्रारम्भ होती है। यात्रा के आगे-आगे भैंरोंजी का पुजारी छड़ी लेकर चलता है। छड़ी दशनामी आखाड़े में रखी रहती है और इस विशेष अवसर पर काम आती है। कहा जाता है कि इसकी पूजा काश्मीर सरकार की ओर से होती है।

रास्ते में कई स्थानों पर पड़ाव डालते हुए यात्रा पूर्णिमा को अमरनाथ पहुंचती है। वहां शिव पार्वती और गणेश के दर्शन करती है। यात्रियों में सभी मत-मतान्तरों और धर्मों के लोग होते हैं और जब वे मिलकर वहां की यात्रा करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे सब एक ही परिवार के सदस्य हों।

यात्रा के समय काश्मीर राज्य की ओर से ठहरने, सुरक्षा, दवा-दारू आदि की व्यवस्था हो जाती है। अमरनाथ का रास्ता वैसे अषाड़ से क्वार तक चार महीने खुला रहता है, लेकिन यात्रा का सबसे अच्छा समय श्रावण अर्थात् अगस्त का पहला सप्ताह माना जाता है। अमरनाथ की यात्रा करने वाले टूरिस्टों को चाहिए कि वे अपने साथ सर्दी से बचने के लिए पूरे कपड़े तथा भोजन की साम्रग्री लेकर चलें।

इस तीर्थ की खोज के बारे में अभी तक पूरी तरह से यह पता नहीं चल सका है कि सबसे पहले कब और किस व्यक्ति ने इस स्थान की खोज की थी। कहा जाता है कि एक मलिक नाम का मुसलमान सबसे पहले यहां आया था। यही कारण है कि चढ़ावे का एक हिस्सा मुसलमानों को जाता है। मलिक कब आया इसका पता नहीं। लेकिन कहा जाता है कि लगभग तीस वर्ष से यहां लोगों का आना-जाना है। श्रावणी पूर्णिमा को प्रति वर्ष यहां मेला लगता है, जिसमें हजारों नर-नारी हिस्सा लेते हैं। इसके अलावा अषाढ़ से लेकर क्वार तक यात्री यहां आते ही रहते हैं।

कुकरनाग

अनन्तनाग से १६ मील की दूरी पर कुकरनाग में एक पानी का चश्मा है। कहा जाता है कि इस चश्मे का पानी काश्मीर में लगभग सभी स्थानों से अच्छा है। यह भी कहा जाता है कि इस चश्मे के पानी से पेट की सभी बीमारियां दूर हो जाती हैं।

कुकरनाग के बारे में मेरा व्यक्तिगत अनुभव भी है। मैंने अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए लगभग तीन व चार महीने इसी जगह पर गुजारे हैं। जलवायु बहुत अच्छी है, और शान्तिमय वातावरण है।

सोनामर्ग

गुलमर्ग और पहलगाम के अलावा टूरिस्टों के देखने के लिए ९००० फुट की ऊंचाई पर सोनामर्ग का सुन्दर स्थान है। रास्ते में आप सिन्धवैली का खूबसूरत नज़ारा भी देखेंगे। श्रीनगर से सोनामर्ग तक सीधे बस जाती है। पहलगाम और गुलमर्ग की तरह यहां भी आप कुछ दिनों के लिए ठहर सकते हैं और ग्लेसियरों के दृश्य का लुत्फ़ हासिल कर सकते हैं।

सोनामर्ग से लगमग चार मील की दूरी पर नीलग्राड नामक एक गांव है जहां आपको बलतिस्तान के निवासियों के जीवन की झलक दिखाई देगी। प्रत्येक रविवार को बलतिस्तान निवासी यहां के एक चश्मे में स्नान करने के लिए आते हैं। उनका यह बिश्वास है कि इस चश्मे में नहाने से उनकी बीमारियां दूर हो जायंगी।

कौसरनाग

टूरिस्टों के पास यदि समय हो तो इन स्थानों के अलावा वैली के कुछ अन्य स्थानों का भी भ्रमण करें। श्रीनगर से शोपयान तक बस जाती है। शोपियान से ६ मील की पैदल यात्रा या घोड़े की सवारी के बाद एक बहुत सुन्दर स्थान 'अहराबल फाल' आता है। 'अहराबल फाल' की खूबसूरती भी आपको आकर्षित करेगी।

अहराबल फाल से लगभग १४ मील आगे घोड़े या पैदल की यात्रा के बाद १२००० फुट की ऊंचाई पर एक सबसे बड़ी पर्वतलेक दिखाई पड़ेगी। यह लेक पीर पंजाल की पर्वत श्रेणियों से घिरी हुई है। जून के महीने में यह लेक बर्फ से ढकी रहती है, परन्तु सितम्बर और अक्तूबर के महीने में इसके पानी का

रंग साफ और नीला होता है। कौसरनाग के रास्ते में ठहरने के लिए आपको रैस्ट-हाउस भी मिलेंगे।

कौसरनाग के अलावा लोलाबवैली काश्मीर के सबसे सुन्दर स्थानों में से एक है। यह वैली श्रीनगर से ६५ मील की दूरी पर है। टूरिस्टों के लिए यहां भी रैस्ट-हाउस मौजूद हैं। टूरिस्टों को चाहिए कि वे अपना कीमती समय निकालकर इस वैली को भी अवश्य देखें।

काश्मीर सरकार के टूरिस्ट दफ्तर

काश्मीर सरकार के टूरिस्ट आफ़ीसर टूरिस्टों को प्रत्येक सम्भव सहायता देने के लिए तैयार हैं।

उनके पते निम्नलिखित हैं।

(१) काश्मीर गवर्नमेंट टूरिस्ट आफ़ीसर, पठानकोट।
(२) ८८, क्वीन्सवे नयी दिल्ली।
(३) मानकेजी वाडिया बिल्डिंग, १२९- महात्मा गांधी रोड, बम्बई।
(४) १२, चौरंगी रोड, कलकत्ता १३।

ठहरने की जगहें

होटलों, हटों (Huts) तथा हाउसबोटों में ठहरने के लिए जगह मिल सकती है।

डायरेक्टर आफ टूरिज़्म से आप पत्र-व्यवहार द्वारा विस्तारपूर्वक पूछ-ताछ कर सकते हैं। यह पूछ-ताछ भोजन, रहन-सहन आदि सब प्रकार के विषयों के सम्बंध में हो सकती है। (जम्मू व काश्मीर सरकार के टूरिस्ट विभाग की सूचना के आधार पर)